अलौकिक जैन

गणित प्रबोध

प्रवाचक

उच्चारणाचार्य विनम्रसागर

अलौकिक जैन

गणित प्रबोध

प्रवाचक

प.पू. उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महाराज

कृति – अलौकिक जैन **गणित प्रबोध**

मंगल आशीर्वाद – प.पू. गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महामुनिराज
प.पू. चर्या शिरोमणि पट्टाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी महाराज

प्रवाचक – प.पू. उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी महाराज

संपादन – प.पू. निर्यापक श्रमण 108 श्री विज्ञसागर जी महाराज

सहयोग – पू. आर्यिकारत्न 105 विमलश्री माताजी

संकलन – पू. आर्यिका 105 विमुदश्री माताजी

प्रकाशक – धर्म प्रभावना (ट्रस्ट) न्यास, भिण्ड (म.प्र.)

प्रथमावृत्ति – 1100, वर्ष–2025

मूल्य – पुन: प्रकाशन सहयोग हेतु सहयोग राशि 350/

प्राप्ति स्थान
* धर्म प्रभावना (ट्रस्ट) न्यास, भिण्ड (म.प्र.) मो. 09826801542
* नंदीश्वर जिनालय, जैन नगर, लालघाटी, भोपाल मो. 9425374897
* देवेन्द्र जैन, बीना (म.प्र.) मो. 9425452825
* डॉ. हेमलता जैन–श्री संजय जैन, बांसवाड़ा मो. 9414365240
* आलोक जैन–न्यू इण्डिया ट्रांसपोर्ट ललितपुर मो. 9412261044

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलम्।

I bow to all Arihantas.
I bow to all Siddhas.
I bow to all Acharyas.
I bow to all Upadhyayas.
I bow to all Saints in the world.
This Namokar Mantra, about to distroy
all sins and the First is ausicious,
in the all auspicious.

चत्तारि मंगलं, अरिहन्त मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

The four auspicious are in the world.
All Arihantas are auspicious.
All Siddhas are auspicious.
All Saints are auspicious.
Said by god are auspicious.

The four are the best in the world.
All Arihantas are the best.
All Siddhas are the best.
All Saints are the best.
Said by god are the best.

The four shelter are in the world.
I go to shelter of all Arihantas
I go to shelter of all Siddhas.
I go to shelter of all Saints.
I go to shelter of said by God.

- Acharya Vinamra Sagar

मंगल भावना

परमात्मा को जो पाप पसन्द नहीं हैं उन पापों से इस जीवन को मुक्त कर देने में सदा सफलता मिले और गुरुदेव को जो प्रवृत्तियाँ पसन्द नहीं हैं उन प्रवृत्तियों से दूर रहे और उनकी आज्ञा का पालन करें।

(वर्ण का अन्त है गगन के सितारों का नहीं और न कोई कभी जान सकता) आत्मा की गणित को आज तक किसी ने नहीं जाना, विज्ञान भी फैल है, जिसने जाना उसने केवलज्ञान पाया, वही आत्मशुद्धि का प्रमाण है।

आचार्य पुष्पदन्तसागर

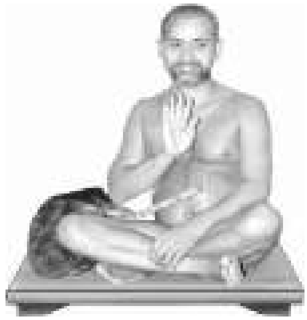

मंगल भावना

भारतीय तत्त्व मनीषा में श्रमण संस्कृति का आद्यस्थान है। साहित्य, पुरातत्त्व की विपुलता संस्कृति का अलंकार है, सम्पूर्ण विद्याओं पर जैनाचार्यों ने सद्-साहित्य का सृजन किया है। न्याय, दर्शन, व्याकरण, छन्द, अलंकार, सिद्धान्त, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, नीति, आयुर्वेद, गणित, काव्य, महाकाव्य, तंत्र-मंत्र, असि, मसि, विद्या, कृषि, वाणिज्य, शिल्प कला सामान्य से परमात्मा बनने तक की विद्या जैनागमों में वर्णित है।

गणित विद्या सिद्धान्तों को समझाने व समझने की विद्या है लौकिक गणित सामान्य गणित है जैनाचार्यों ने सागर, द्वीप, नदी, तालाब, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधो लोक लोकत्रय को विश्व-धी के सामने एक महान कल्याणप्रद उपहार प्रदान किया है।

गणितसार, तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, लोक विभाग, षट्खण्डागम, लब्धिसार, क्षपणासार जैसे महान ग्रन्थों को पूर्वाचार्यों ने सृजनकर सर्वलोक का बोध कराया है।

सम्पूर्ण विश्व को शून्य का सत्यार्थ-बोध कराने वाला भारत देश में जैन दर्शन है दिगम्बर जैनाचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ति में तथा श्री सर्वनन्दी स्वामी ने 'लोक विभाग' में विस्तार से शून्य का प्रयोग किया है।

सम्प्रति बहुत ही प्रसन्नता का विषय है कि-गणितीय सिद्धान्तों पर लेखनी चलाने वाले विद्वान गुरुवर आचार्य श्री विरागसागर जी के शिष्य भिण्ड नगर रत्न, गुरुदेव के चरणानुरागी, कुशल स्पष्ट वक्ता, आशुकवि, करणानुयोग चातक, भक्तामर शिविर वाहक, श्रुतानुरागी, हमारे प्रिय अनुज आचार्य श्री विनम्रसागर जी महाराज है।

आपने अलौकिक जैन गणित कृति का आगमों को आधार बनाकर सृजन किया है। इस कृति का कुशल सम्पादन श्रमण मुनि विज्ञसागर जी ने तथा संकलन श्रमणी आर्यिका विमुदश्री माताजी ने किया है यह श्लाघनीय है। यह विश्व-धरा पर दीर्घकाल तक वस्तु के वस्तुत्व का सम्यक्बोध कराएगी। श्रीजिनशासन का उद्योतन करेगी, यही मंगल भावना है।

दहीगाँव (नासिक) महाराष्ट्र
16 मार्च 2025

• **श्रमणाचार्य विशुद्धसागर**

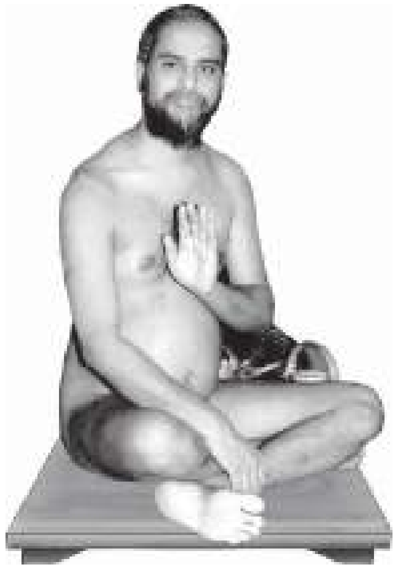

मंगल भावना

श्रुत सम्पदा दु:खों से परित्राण दिलाने में सर्वसमर्थ है। मोक्षमार्ग की मध्य देहरी पर रखा हुआ यह दीप पंथी को शुद्धदृष्टि प्रदान कर पवित्र आचरण के कदम बढ़ाने हेतु सुंदर प्रेरक आलोक प्रदान देता है। इस ज्ञान अथवा श्रुत सम्पदा का कोई सीमा चिह्न कहीं नहीं है, यह निस्सीय है। इसकी पर्त दर पर्तों को स्वत्व में पारदर्शिता करते जाना विज्ञों का सात्विक पराक्रम है।

असीम ज्ञानाकाश की करणानुयोगरत श्रेणी में गणित विषयक दुरुह ग्रन्थियों को सुलझाना, सतत अभ्यासी के लिए आनंद संतोष और यथार्थ आत्मबोधक उपयोग देता है। हृदयवत्सल, कविसम्राट, विनम्र स्वभावी, प्रिय गुरुभाई आचार्य विनम्रसागर जी महाराज ने तथा उनके सुयोग्य और सतत् ज्ञानोपयोगी शिष्य श्रमण निर्यापक मुनि श्री विज्ञसागर जी मुनिराज ने पूर्वाचार्यों की असीम प्रज्ञा से उद्भूत शास्त्र समुद्र का आलोड़न-विलोड़न करके जैन गणित की 'गणित प्रबोधिनी' जैसी श्रेष्ठ कृति को तैयार किया। आर्यिका विमुदश्री माताजी ने संकलन किया उनका यह अनुशंसेय कार्य उनकी भव्यत्ता और श्रुतात्मकता का द्योतक है, साथ ही विरलता साधुत्व का भी। प्रस्तुत कृति श्रुतात्मियों को सम्यक् पथ का पाथेय बने ऐसी शुभकामना।

श्रमणाचार्य विनिश्चयसागर

बड़गाँव, कटनी (म.प्र.)
31.3.2025

शिवराज सिंह चौहान
SHIVRAJ SINGH CHOUHAN

सत्यमेव जयते

कृषि एवं किसान कल्याण और
ग्रामीण विकास मंत्री
भारत सरकार
कृषि भवन, नई दिल्ली
Minister of Agriculture & Farmers
Welfare and Rural Development
Government of India
Krishi Bhawan, New Delhi

शुभकामना संदेश

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि, भारतीय प्राच्य विद्याओं के ज्ञाता दिगम्बर जैनाचार्य उच्चारणाचार्य श्री 108 विनम्रसागर जी महाराज ने अपनी असाधारण साधना से अनेक वर्षों तक संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के ग्रंथों तथा प्राचीन जैन और पांडुलिपियों का गहन अध्ययन कर हिन्दी भाषा में जैन गणित ग्रंथ का लेखन किया है। इस ग्रंथ में प्राचीन भारत के महान गणितज्ञ जैनाचार्यों की गणित संबंधी अवधारणा और गणितीय सिद्धांतों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है

इस अमूल्य मनीषा से युक्त ग्रंथ का संपादन मुनि श्री 108 विज्ञसागर जी महाराज ने अपने अद्वितीय समर्पण के साथ सम्पन्न किया है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन से वैश्विक स्तर पर प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के गौरवशाली अतीत से सभी सुपरिचित होंगे और नवीन पीढ़ी भी इस अनुपम धरोहर से लाभान्वित होगी। भव्यतम मेधा और उत्कृष्ट प्रतिभा पर गर्व का अनुभव होता है।

ग्रंथ के प्रकाशन पर मैं संतशरण में नमन करते हुए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ

(शिवराज सिंह चौहान)

शुभकामना संदेश

मुझे इस समाचार से अत्यंत हर्ष हुआ है कि प्रसिद्ध दिगम्बर उच्चारणाचार्य श्री 108 विनम्रसागर जी महाराज ने संस्कृत और प्राकृत भाषा के अनेक प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन करके गणित जैसे कठिन विषय पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना हिन्दी भाषा में की है। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का कुशल सम्पादन भी प्रतिभा सम्पन्न निर्यापक श्रमण मुनि श्री 108 विज्ञसागर जी महाराज ने बड़ी ही कुशलता से किया है। संकलन कार्य आर्यिका विमुदश्री माताजी ने किया।

इस ग्रंथ के अध्ययन से यह भली-भाँति ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन काल से ही जैनाचार्यों ने गणित के विकास में कितना अविस्मरणीय योगदान किया है। उन्होंने गणितीय सिद्धांतों का प्रयोग लौकिक व्यवहार के साथ-साथ धार्मिक सिद्धांतों को समझने में भी आश्चर्यजनक रूप से किया है।

मुझे विश्वास है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन से विश्व पटल पर भारतीय मनीषा को पुन: प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। जैन संतवृन्द के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए इस ग्रंथ के प्रकाशन पर मैं अपनी शुभकामनाऐं प्रकट करता हूँ।

जिनेश जैन
जिला उपाध्यक्ष
भा.ज.पा. जिला मुरैना
पूर्व अध्यक्ष
नगर पालिका परिषद, अम्बाह

निवास:
जयेश्वर रोड़, अम्बाह
जिला-मुरैना (म.प्र.)
मो. 9826279668

जो लखा सो लिखा
प्रवाचक की कलम से...

श्रुत ज्ञान की परम्परा अनादि काल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलती रहेगी, इसका कोई आदि-अन्त नहीं है। कोई वाद्य यंत्र बजाने से अक्षरों का प्रकटीकरण नहीं होता, क्योंकि अक्षरों के प्रकटीकरण के लिए, कंठ, जिह्वा, ओष्ठ आदि की आवश्यकता होती है। आचार्य शर्ववर्म ने कातंत्र रूप माला में अक्षरों के बोलने के स्थान बतलाये हैं, यदि ऐसा नहीं माना जाये तो जानवर भी अक्षरों को बोल सकते हैं अथवा किसी की भी ध्वनि अनक्षरी नहीं रहेगी जो भी वाद्ययंत्र बजेगा उसी में अक्षर निकल आयेगा लेकिन ऐसा नहीं होता। अक्षर किसी के बनाये हुए नहीं है न कभी उनका विनाश होता है। 'अक्षर' शब्द का अर्थ ही है जिसका क्षरण न हो ऐसा अर्थ भाषित होता है। आचार्य शर्ववर्म स्वामी लिखते हैं- **''सिद्धो वर्ण समाम्नाय''** अर्थात् वर्ण सिद्धों के समान अनादि अनंत हैं।

अनादिकाल से अनंत चौबीसियाँ हो चुकीं हैं और अनंत आगे भी होंगी, उन चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर ने जो उपदेश दिया वही उपदेश अन्तिम तीर्थंकर ने दिया। तीर्थंकर जितने भी होते हैं वे श्रुत के प्रवर्तक होते हैं, निर्माता नहीं अत: अनंत अर्थ को अवधारण करने वाली वाणी **दिव्यध्वनि स्वरूप** में खिरती है। जिसका अनंतवा भाग गणधर आदि विशिष्ट महानुभाव समझ पाते हैं उसके असंख्यातवें भाग का अंग स्वरूप व्याख्यान करते हैं। उस व्याख्यान का संख्यातवां भाग हमारे अर्वाचीन आचार्यों को प्राप्त हो पाया तथा उसका संख्यातवां भाग वे लिपिबद्ध कर पाये, जो लिपिबद्ध किया उसका भी संख्यातवां भाग हमें प्राप्त है जो संख्यातवां भाग प्राप्त है उससे भी संख्यातवां भाग हम पढ़ पाते हैं व समझ पाते हैं।

श्रुत का विस्तार – यदि एक से लेकर चौसठ संयोगी अक्षरों का प्रमाण देखा जाता है तो उन सम्पूर्ण अक्षरों की एक कम अट्टी प्रमाण संख्या होती है जिसे हम कई प्रकार से दर्शा सकते हैं। जैसे 2^{64} अर्थात् दो को चौसठ बार लिखकर आपस में गुणा करें तथा एक कम कर दें तो सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अक्षरों का प्रमाण प्राप्त होता है। द्विरूप वर्गधारा का छठवां स्थान सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अक्षरों का प्रमाण होता है इस प्रकार अतिदीर्घता को प्राप्त तीर्थंकरों की अनादि परम्परा से उनके सर्वांग से निकषित अनक्षरी ध्वनि को अक्षरात्मक भाषा में परिवर्तित करने वाले गणधरों के द्वारा उसका प्रतिपादन किया जाता है। उन अक्षरों का प्रमाण- 1,84,46,74,40,73,70,95,51,615 अर्थात् एक सौ चौरासी शंख, छ्यालीस पद्म, चौहत्तर नील, चालीस खरब, तेहत्तर अरब, सत्तर करोड़, पिंचानवें लाख, इक्यावन हजार, छह सौ पन्द्रह इस प्रकार सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अक्षर हैं इनका विशद व्याख्यान धवला पुस्तक नं. 13 के अन्तर्गत किया गया है यहाँ तो संकेत मात्र है।

अंग प्रवृष्टि की रचना–गणधरों के द्वारा उस श्रुत को महाअध्याय स्वरूप में विभाजन किया जाता है जिसके बारह भेद हो जाते हैं। उन बारह भेदों के नाम व उनमें विषय वस्तु का कथन निम्न प्रकार है।

पद–यहाँ प्रकरण का ज्ञान कराने के लिए प्रथमत: पद के स्वरूप को बतलाते हैं।

प्रश्न –पद किसे कहते हैं ?

उत्तर – किसी अर्थ विशेष को सूचित करने वाले अक्षरों के समूह को पद कहते हैं। पद तीन प्रकार का होता है अर्थ पद, प्रमाण पद, मध्यम पद।

अर्थ पद–दो–चार–पाँच या इससे अधिक अक्षरों का ज्ञान होता है उसे अर्थ पद कहते हैं।

मध्यम पद – 16,34,83,07,888 (सौलह सौ चौतीस करोड़ तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी) अक्षरों का एक मध्यम पद होता है यहाँ इसी पद से प्रयोजन है। इस मध्यम पद के अक्षरों का भाग सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अक्षरों में देने पर 1,12,83,58,005 (एक सौ बारह करोड़, तेरासी लाख, अट्ठावन हजार पाँच) पद बन जाते हैं इन्हीं को अंग प्रवृष्टि कहा जाता है, इसके बारह भेद होने से द्वादशांग भी कहते हैं।

प्रमाण पद – आठ अक्षरों से निष्पन्न हुआ पद प्रमाण पद कहलाता है।

ग्यारह अंग की व्याख्या अलग है बारहें दृष्टिवाद अंग के चौदह पूर्व हैं इस प्रकार पच्चीस भेद हो जाते हैं। अब हम ये देखते हैं कि अंग बाह्य की रचना किस प्रकार होती है– पहले हमको सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अक्षरों में मध्यम पद के अक्षरों का भाग देने पर 1,12,83,58,005 पद निष्पन्न हुए थे तथा 8,01,08,175 इतने अक्षर शेष बचे इतने अक्षरों से पद की रचना नहीं हो सकती क्योंकि पद के अक्षरों के आगे ये अक्षर बहुत कम हैं इसलिए ये पद से बाहर रह जाने के कारण इसका सार्थक नाम अंगबाह्य पड़ा। अत: अंगबाह्य स्वरूप चौदह प्रकीर्णकों की रचना हुई इस प्रकार सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अंगबाह्य व अंग प्रवृष्टि इस प्रकार दो भेद हुए अंग प्रवृष्टि के बारह भेद इस प्रकार हैं–

अंग का नाम	पद संख्या	विवेचन
आचारांग	18,000	कैसे चलना, कैसे बैठना, मुनिराजों की क्रिया का वर्णन करता है।
सूत्रकृतांग	36,000	ज्ञान विशेष छेदोपस्थापना स्व समय–पर समय का सूत्रों द्वारा विवेचन करता है।
स्थानांग	42,000	एक से लेकर उत्तरोत्तर एक एक बढ़ते स्थानों का वर्णन किया है।
समवायांग	1,64,000	सम्पूर्ण पदार्थों के समवाय का वर्णन है।
व्याख्याप्रज्ञप्ति	2,28,000	जीव नित्य है या अनित्य है आदि प्रश्नों के समाधान का वर्णन है।
ज्ञातृधर्मकथांग	5,56,000	तीर्थंकरों के धर्म की कथा तथा गणधर द्वारा किये गये प्रश्नों के समाधान का वर्णन है
उपासकाध्ययनांग	11,70,000	श्रावक की 11 प्रतिमा व्रत शील आदि का वर्णन है।
अन्त:कृतदशांग	23,28,000	अन्तकृत केवली का वर्णन है।
अनुत्तरोपपादिक दशांग	92,44,000	प्रत्येक तीर्थंकर केवली के काल में उपसर्ग सहन कर 10–10 जीवों के अनुत्तरों में उत्पन्न होने का वर्णन
प्रश्नव्याकरणांग	93,16,000	आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेगनी व निर्वेदनी चार कथाओं का वर्णन तथा तीन काल संबंधी, लाभ, अलाभ, जीवन–मरण संबंधी प्रश्नों के उत्तर।
विपाकसूत्रांग	1,84,0000	पुण्य–पाप रूप फलों का वर्णन है।
दृष्टिवाद	1,08,68,56,005	363 कुवादियों के मतों एवं उनके निराकरण का वर्णन है।

इस प्रकार द्वादशांग में बारह अंग होते हैं।

बारहवें दृष्टिवाद के भी पाँच भेद होते हैं उनके भेद निम्न प्रकार है-

1. परिकर्म - 5
2. सूत्र-1
3. प्रथमानुयोग - 1
4. पूर्वगत-14
5. चूलिका-5

परिकर्म के पाँच भेद व उनमें पदों की संख्या-

प्रज्ञप्तियाँ	पद	वर्णन
चन्द्र प्रज्ञप्ति	36,05,000	चन्द्रमा का विमान, आयु, परिवार, गति वृद्धि हानि आदि का वर्णन
सूर्य प्रज्ञप्ति	5,03,000	सूर्य का विमान, आयु, परिवार, गति वृद्धि हानि आदि का वर्णन
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	3,25,000	जम्बूद्वीप में स्थित मेरु कुलाचल तालाब आदि का वर्णन
द्वीप सागर प्रज्ञप्ति	52,36,000	असंख्यात द्वीप-समुद्रों संबंधी उनके स्वरूप का वर्णन
व्याख्या प्रज्ञप्ति	84,36,000	रूपी अरूपी जीव-अजीव द्रव्यों का भव्य-अभव्य भेद प्रमाण

पूर्वगत के भेद

पूर्व का नाम	पद	वस्तु संख्या	विशेष
1. उत्पाद पूर्व	1 करोड़	10	वस्तु के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आदि अनेक धर्मों का कथन
2. अग्रायणीय पूर्व	96 लाख	14	द्वादशांग में प्रधानभूत 700 सुनय और दुर्नय का तथा 7 तत्त्व, नव पदार्थ, 6 द्रव्य आदि का कथन
3. वीर्य प्रवाद पूर्व	70 लाख	8	आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, बलवीर्य, तपोवीर्य, गुणवीर्य, पर्यायवीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य का कथन
4. अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व	60 लाख	18	स्यादस्ति, स्याद्नास्ति आदि सप्तभंगी का कथन
5. ज्ञान प्रवाद पूर्व	एक कम एक करोड़ (9999999)	12	5 ज्ञान, 3 कुज्ञान के स्वरूप का संख्या विषय, फल आदि का कथन
6. सत्यप्रवाद	एक करोड़ छह (10000006)	12	वचनगुप्ति, वचन संस्कार के प्रयोग कारण 12 प्रकार की भाषा बोलने वाले जीवों के

			भेद, बहुत प्रकार के असत्य वचन, 10 प्रकार के सत्य वचन आदि का वर्णन
7. आत्म प्रवाद	26 करोड़	16	जीव वेत्ता, विष्णु, भोक्ता, बुद्ध आदि है, इस रूप से आत्मा का कथन करना
8. कर्म प्रवाद	1,80,00,000	20	कर्म का विवेचन
9. प्रत्याख्यान	84,00,000	30	पुरुष के संहनन, बल, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आदि की अपेक्षा से सदोष वस्तु का एक काल की मर्यादा रहित या यावज्जीवन त्याग उपवास विधि उसकी भावना, 5 समिति, 3 गुप्ति आदि का वर्णन
10. विद्यानुवाद	1,10,00,000	15	700 अल्प विद्या, 500 महा विद्या अष्टांग महानिमित्त का वर्णन
11. कल्याणवाद	26,00,00,000	10	63 शलाका पुरुषों के गर्भावतरण कल्याणक आदि महोत्सवों का, उनके कारणभूत 16 कारण भावनाओं का, तपश्चरण आदि, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, इनका गमन विशेष ग्रहण, शकुन, फल आदि का वर्णन
12. प्राणावाय	13,00,00,000	10	शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, विष, विद्या, प्राणायाम आदि के भेद प्रभेदों का वर्णन
13. क्रियाविशाल	9,00,00,000	10	लेखन आदि 72 कला, स्त्रियों के 64 गुण शिल्प आदि विज्ञान गर्भाधान आदि 84 क्रिया, नित्य–नैमित्तिक क्रिया का वर्णन
14. लोकबिन्दुसार	12,50,00,000	10	तीन लोक का स्वरूप, गणित, मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष ले जाने वाली क्रिया एवं मोक्ष सुख आदि का वर्णन
कुल	95,95,00,005	195	

प्रथमानुयोग – जिसमें त्रेशठ शलाका पुरुषों का वर्णन हैउसके 5,000 पद हैं।

सूत्र– अल्पक्षरों को लिए हुए तथा अर्थ की विशालता को धारण करने वाला सूत्र होता है।

चूलिका के भी क्रमश: पाँच भेद हैं।

1. जलगता 2. स्थलगता 3. मायागता 4. रूपगता 5. आकाशगता

अंग बाह्य के 14 भेद – सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिकमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प व्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुंडरीक, महापुंडरीक, निषिद्धिका।

इस प्रकार इतना विशाल द्रव्य श्रुतज्ञान जिसके एक पद में 16,34,83,07,888 (सोलह अरब चौतीस करोड़ तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी) अक्षर होते है, अगर इनको पढ़ा जाये तो कितना समय लगेगा ?

एक व्यक्ति 10 मिनिट में 2688 (भक्तामर) अक्षरों को पढ़ लेता है तो वह लगातार पढ़ता रहे तो लगभग 117 वर्ष से कुछ अधिक समय मात्र एक पद को पढ़ने में लगेगा। ऐसे 1,12,83,58,005 पद कितने समय में पढ़े जायेंगे ? यदि एक पद को लिपिबद्ध किया जाये तो ''टनो'' कागज लग जायेगा,ऐसे में कोई भी संप्रदाय एक छोटा सा शास्त्र लिखकर उसका नाम किसी अंग या पूर्व का दे देते हैं तो श्रुत बहुत ही अल्प ठहरता है। जैसे किसी शास्त्र का नाम दे दिया आचारांग अथवा सूत्र कृतांग अथवा पूर्व का नाम रख दिया विद्यानुवाद आदि तो निश्चित रूप से अल्पबुद्धि तो यही स्वीकार करेंगे कि आचारांग इतना ही है।

यह श्रुत का अवर्णवाद या अनादर ही होगा इसलिए दिगम्बर परम्परा में महान् आचार्यों ने किसी भी शास्त्र का अंग या पूर्व नाम नहीं दिया। उन्होंने उस अंग या पूर्व में जो अध्याय या उस अध्याय में जो विषय वस्तु हैं। उसके आधार पर उस शास्त्र का नाम दिया, जैसे–ज्ञान प्रवाद नामक पंचम पूर्व की दसवीं वस्तु में तृतीय अधिकार **पेज्जदोस नामक अधिकार से कषाय पाहुड ग्रंथ की रचना हुई अर्थात् पेज्ज=राग,** दोस= द्वेष जो कषायों के माध्यम से बनते हैं। इसी प्रकार अग्रायणीय पूर्व की पांचवीं वस्तु के चतुर्थ अधिकार के छ: खण्डों के द्वारा षट्खण्डागम की रचना हुई, इसी प्रकार आत्मप्रवाद नामक पूर्व से समयसार आदि ग्रंथों के नाम प्राप्त हुए जिससे कि विशाल अंगों और पूर्वों का एक अंश ग्रहण कर उक्त ग्रंथों का सृजन हुआ। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि ये अंग और पूर्व नहीं है बल्कि उनके एक अंश मात्र हैं।

इस दृष्टि से दिगम्बर जैनाचार्यों ने किसी भी अंग या पूर्व का नाम न देकर उसके अन्दर जो विषय वस्तु है उसके आधार से उस ग्रंथ का नाम रखा।

गणित शास्त्र– गणित का विशद् विवेचन दृष्टिवाद के पाँच भेदों में जो परिकर्म नामक भेद है उसमें है यदि किसी छोटे से शास्त्र का परिकर्म नाम दे दें तो परिकर्म तो बहुत छोटा हो जायेगा जबकि परिकर्म में तो करोड़ों मध्यम पद है।

इसके अलावा लोक बिन्दुसार में भी गणित का विशद व्याख्यान है जो कि 12,50,00,00,000 करोड़ पदों वाला है यदि हम कोई शास्त्र हजार–दो हजार पृष्ठ का भी बना दें और नाम दें दे लोक बिन्दुसार तो अल्पबुद्धि तो यही समझेंगे कि लोक बिन्दुसार इतना ही है, पंचम काल में अल्पबुद्धि वालों की ही बाहुल्यता है। इसलिए दिगम्बर परम्परा में किन्हीं आचार्यों ने अंग या पूर्व के नाम नहीं दिये बल्कि विषय वस्तु के अनुसार अपने ग्रंथों के नाम दिये हैं।

गणित की उपयोगिता – विश्व के समग्र दर्शनों में चाहे वह वैदिक दर्शन हो, बौद्ध दर्शन हो,चार्वाक हो, मीमांसक हो अथवा जैन दर्शन हो यदि उसके अन्दर गणितीय विचारधारा या पद्धति नहीं है तो वह दर्शन लूला लंगड़ा या पंगु है, क्योंकि गणितीय भाषा मानव का दर्पण है गणितीय भाषा सत्यता की कसौटी है। हर

भाषा में असत्यता कदाचित् हो सकती है लेकिन गणितीय भाषा में किंचित् मात्र भी असत्यता नहीं हो सकती।

दुनियाँ में हर चीज की गणना, गणित के द्वारा ही की जाती है हमें कितने दिन जीना है, कब क्या करना है, कितने जीव कहाँ-कहाँ पर हैं, कौन सी गति में कितने-कितने अलग-अलग पर्याय वाले जीव हैं, सूरज-चाँद और अन्य देवों की उम्र कितनी है और कब वह उम्र पूर्ण हो जायेगी, धरती के नीचे कितने नरक हैं, उनमें कितने बिल हैं और कितने नारकी हैं, जानवरों, पक्षियों, पशुओं छोटे-छोटे जीव जंतुओं की संख्या कितनी हैं? इन सभी प्रश्नों को सिर्फ गणित के माध्यम से सुलझाया जा सकता है अन्य किसी विषय के द्वारा नहीं। सभी व्यापार गणित से ही संचालित है।

गणित के बिना जीवन ही नहीं सब कुछ ही अपूर्ण है। गणित को अच्छी तरह समझे बिना किसी की भी बुद्धि Sharp नहीं हो सकती। विश्व का ज्ञान गणित के बिना असंभव है अत: गणित को जानना हर व्यक्ति के लिए परम आवश्यक है।

गणित के सूत्रों के कुछ लोग प्रवर्तक हो सकते है लेकिन निर्माणक नहीं, गणित विद्या और अक्षर विद्या के तीर्थंकर भगवान भी निर्माणक नहीं हैं तो आज के अल्पज्ञ व्यक्ति इसके निर्माता कैसे हो सकते हैं जैन दर्शन में गणित का विस्तार बहुत विस्तृत ढंग से किया गया है। जिसमें लौकिक पारलौकिक दोनों संख्याओं को दर्शाया गया है। जहाँ लौकिक गणित की संख्या को शंख तक विद्यालयों में विद्यार्थी को बताया जाता है लेकिन इसके आगे की संख्याओं को जैन गणित बताता है और जिन संख्याओं को पढ़ा नहीं जा सकता, लिखा भी नहीं जा सकता उनको भी असंख्यात के रूप में दर्शाता है लेकिन एक वो संख्या भी है जिसको पढ़ा भी नहीं जा सकता, लिखा नहीं जा सकता और जिसका अंत भी नहीं हो सकता उस संख्या को जैन दर्शन में (Infinite) अनंत कहा गया है। जैन गणित को जानने वाले ही Countable, Uncountable and Infinite (संख्यात-असंख्यात और अनंत) को जान सकते हैं अन्य दर्शनों में ऐसे पारलौकिक गणित की गणना कहीं भी नहीं दर्शाई गई है और यह जैनगणित सभी के संज्ञान में आये, सभी लोग इससे परिचित होकर केवलज्ञान के स्वरूप को समझ सकें और अनंत चतुष्टय की सत्ता को स्वयं के आत्मस्वरूप में स्वीकार कर सकें और अपने जीवन का उद्धार कर सकें इसलिए इस ग्रन्थ में जैन गणित को विशद रूप में दर्शाया गया है।

एक वो संख्या होती है जिसे लिखा भी जा सकता है पढ़ा और समझा भी जा सकता है उसे संख्यात (Countable) कहते हैं, एक वो संख्या होती है जिसे लिखा भी नहीं जा सकता, पढ़ा भी नहीं जा सकता लेकिन समझा जा सकता है और इस संख्या का अंत भी होता है उसे असंख्यात (Uncountable) कहते हैं और अंत में एक वो संख्या है जिसे न लिखा जा सकता है न पढ़ा जा सकता और जिसका कभी अंत भी नहीं होता लेकिन मापक के द्वारा सिर्फ समझा जा सकता है इसे अनंत (Infinite) कहते हैं इसी से अनंतानंत बन जाता है ऐसा अनंतानंत ज्ञान ही तीर्थंकर भगवान को होता है तभी उन्हें संसार के अनंतानंत प्राणियों का ज्ञान होता है। जिसने गणित की सम्पूर्ण इकाइयों को नहीं जाना है वह भगवान के स्वरूप को उनके ज्ञान को, उनकी शक्ति को कभी भी नहीं जान सकता, ईश्वर को जाने बिना सत्य को भी नहीं जान

सकता इसलिये यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होती कि गणित और जैन गणित जाने बिना हर व्यक्ति अधूरा है, अधूरा था और अपूर्ण ही रहेगा। अंग्रेजी, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू एवं अन्य भाषाओं के बिना जीवन आराम से निकल सकता है लेकिन गणित के बिना असंभव ही है।

वैदिक शास्त्रों में तो लिखा है-

यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो यथा।
तद्वेदांग शास्त्राणां, गणितं मूर्ध्नि वर्तते।।

अर्थात् जिस प्रकार मयुरों की शिखायें एवं नागों की मणियाँ ऊँचे स्थानों पर होती हैं ठीक उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का सबसे ऊँचा स्थान है।

इसी प्रकार 850 ई. के महान् विख्यात गणितज्ञ दिगम्बर जैन आचार्य श्री महावीराचार्य गणित सार संग्रह में लिखते हैं-

बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये स चराचरे।
यत्किंचितद्वस्तुतत्सर्वं गणितेन बिना नहि।।

अर्थात् और अधिक प्रलाप करने से क्या लाभ जो कुछ भी चराचर वस्तुऐं हैं उनका अस्तित्व गणित के बिना संभव नहीं है। उनके शब्दों में प्राचीन ग्रन्थों में भी गणित की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति प्रतिबिम्बित होती है।

यदि कहा जाए कि धार्मिक जीवन में तो गणित का महत्वपूर्ण स्थान है ही साथ ही हमारा दैनिक जीवन भी बिना गणित के संभव नहीं है। छोटे से छोटा व्यक्ति ही क्यों न हो बिना गणित के उसका काम नहीं चल सकता। ज्ञान, विज्ञान, कृषि, व्यापार आदि सम्पूर्ण लौकिक-पारलौकिक प्रक्रिया गणित पर निर्भर है।

भारत के विविध अंचलों में/परम्पराओं में/धर्मों में विकसित गणित को भारतीय गणित की संज्ञा दी गई है। गणित का अध्ययन मुख्यतः तीन भागों में किया गया है- 1. शुद्ध गणित 2. प्रयुक्त गणित 3. गणित इतिहास। गणित की परिभाषा आगे की प्रस्तावना में वृहद् रूप से प्रस्तुत है।

गणित का इतिहास

यह सृष्टि अनादि काल से है और अनंतकाल तक रहेगी इसका कोई कर्ता-धर्ता-हर्ता नहीं है, समयानुसार परिवर्तन अवश्य होता है। भरत क्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र में काल परिवर्तन होता है किंतु विदेह क्षेत्र में सदैव एक सा काल वर्तता है। बीस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है जिसमें दो विभाग हो जाते हैं एक उत्सर्पिणी दूसरा अवसर्पिणी।

कोड़ा-कोड़ी सागर – करोड़ से करोड़ का गुणा अर्थात् – बीस करोड़ का गुणा एक करोड़ से करने पर 20 कोड़ा कोड़ी कहलाता है।

सागर – दस कोड़ा कोड़ी अद्धा पल्यों का एक सागर होता है।

पल्य – असंख्यात वर्षों का पल्य होता है।

उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी – जिसमें मनुष्यों तिर्यंचों की तथा अन्य भी चराचर वस्तुओं की लम्बाई, शक्ति सुख आदि क्रमश:बढ़ते क्रम में हो उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। किन्तु जहाँ घटते क्रम में हो उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं उनके छ: छ: भेद होते हैं।

उनके नाम इस प्रकार हैं–

अवसर्पिणी – सुषमा सुषमा – प्रथम काल जिसमें भोगभूमि की रचना होती है। उसमें सुख ही सुख है। **दूसरा सुषमा** यहाँ पर सुख है। **तीसरा सुषमा दुषमा** – पहले तो सुख है पश्चात् किंचित् दु:ख होता है जिसमें मानव को परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं होती, कल्पवृक्षों से ही उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है। **चौथा दु:षमा सुषमा** – यहाँ पर अवसर्पिणी का चतुर्थ काल होता है जहाँ से कर्मभूमि का काल प्रारम्भ होता है, यहाँ व्यक्ति को पहले दु:ख होता है पश्चात् सुख का अनुभव करता है अर्थात् पहले उसे परिश्रम करना पड़ता है पश्चात् उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। परिश्रम करने पर दु:ख होता है और उसके पश्चात् किंचित सुख होता है। यहाँ तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुष होते हैं।

पाँचवां दुषमा जहाँ परिश्रम में भी दु:ख है और भोग भोगने में भी दु:ख हो वह दुषमा है किंतु जहाँ अतिदु:ख हो उसे **दुषमा–दुषमा** कहते हैं। यह छठवां काल है। अवसर्पिणी का प्रथम काल 4 कोड़ा–कोड़ी सागर, दूसरा तीन कोड़ा–कोड़ी सागर का, तीसरा दो कोड़ा–कोड़ी सागर का तथा चौथा 42,000 वर्ष कम एक कोड़ा–कोड़ी सागर का तथा पंचम काल 21000 वर्ष तथा छठा काल 21000 वर्ष का होता है। इस प्रकार 10 कोड़ा कोड़ी सागर का अवसर्पिणी काल होता है।

उत्सर्पिणी – जिस काल में मनुष्य तिर्यंचों की आयु शरीर की ऊँचाई, विभूति सुख आदि क्रमश: बढ़ते क्रम में हो उसे उत्सर्पिणी कहते हैं।

प्रथम काल – प्रथम अति दु:खमा जहाँ मात्र दु:ख ही दु:ख हैं वह इक्कीस हजार वर्ष का है। यह अवसर्पिणी के छटवें काल जैसा है।

द्वितीय काल दु:षमा – यहाँ दु:ख है यह भी अवसर्पिणी के पंचम काल जैसा 21000 वर्ष प्रमाण है इसमें 1000 वर्ष प्रमाण शेष रहने पर 14 मनुओं (कुलकरों) की उत्पत्ति होती है।

तृतीय काल–दु:षमा सुषमा– यह अवसर्पिणी के चतुर्थ काल जैसा होता है यहाँ पर लोग असि, मसि, कृषि, वाणिज्य के द्वारा आजीविका चलाते हैं यह काल 42 हजार वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का होता है। यहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण आदि महापुरुष होते है

चतुर्थ काल सुषमा–दुषमा– यह अवसर्पिणी के तृतीय काल के समान होता है भोगभूमि की रचना हो जाती है सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों से ही होती है यह काल दो कोड़ा–कोड़ी सागर का होता है।

पंचम काल सुषमा – यह अवसर्पिणी के द्वितीय काल के समान होता है यह तीन कोड़ा–कोड़ी सागर का मध्यम भोगभूमि की रचना से सहित होता है।

छठवां काल सुषमा सुषमा– यह काल चार कोड़ा–कोड़ी सागर स्थिति वाला उत्तम भोगभूमि से सहित अवसर्पिणी के प्रथम काल के समान होता है।

इस प्रकार दस कोड़ा-कोड़ी सागर का उत्सर्पिणी व दस कोड़ा-कोड़ी सागर का अवसर्पिणी इस प्रकार बीस कोड़ा कोड़ी सागर का एक कल्प काल होता है। अभी अवसर्पिणी काल का पंचम काल प्रवाहमान है, जिसमें लगभग 2500 वर्ष से भी कुछ अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

इससे पहले चतुर्थ काल वर्तता था चतुर्थकाल प्रारम्भ होने के पहले अर्थात् तृतीय काल में पल्य के आठवें भाग काल शेष रहने पर क्रमश: 14 मनु अर्थात् कुलकर हुए जिन्होंने अवधिज्ञान से विदेह क्षेत्र की व्यवस्था को जानकर कर्मभूमि की व्यवस्था लोगों को बतलाई वे मनु इस प्रकार हैं-

ति.प.गा.नं. 428 से - प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमन्धर, सीमङ्कर, सीमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित, नाभिराय, इस प्रकार इन चौदह कुलकरों ने कर्मभूमि की व्यवस्था बतलाई। इन कुलकरों में अन्तिम कुलकर के पुत्र ऋषभ (आदिनाथ) नामक पुत्र हुए जो इस अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर हुए जिनके भरतादि एक सौ एक पुत्र तथा ब्राह्मी, सुन्दरी नामक दो कन्याऐं उत्पन्न हुई।

सम्पूर्ण विश्व के इतिहासकारों ने एक मत के साथ स्वीकार किया है कि इन्हीं ऋषभदेव के पुत्र भरत से इस देश का नाम भारत पड़ा है। इन्हीं तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी दोनों पुत्रियों को अंक विद्या व शब्द विद्या सिखलाई जो आज भी ब्राह्मी लिपि के नाम से प्रसिद्ध है।

जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा धारण कर कठोर तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त किया और जैन धर्म का प्रवर्तन किया। आज कई लोग भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं किंतु उन्हें ज्ञान नहीं है जैन धर्म अनादि कालीन है जिसके इस युग के प्रथम प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव थे। संस्थापक नहीं थे क्योंकि ऐसे करोड़ों-अरबों-खरबों तीर्थंकर हो चुके हैं इसलिए वे प्रवर्तक थे संस्थापक नहीं। उनकी वाणी (देशना) में सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुतज्ञान प्रकट होता है जिसमें परिकर्म, लोक बिन्दुसार आदि गणितीय पद्धति का सब कुछ प्रकटीकरण हो जाता है।

भगवान ऋषभदेव के पश्चात् क्रमश: चौबीस तीर्थंकरों की शृंखला में भगवान महावीर अन्तिम तीर्थंकर हुए इनकी देशना में भी वह श्रुतज्ञान प्रकट हुआ जो भगवान आदिनाथ ने प्रकट किया अर्थात् सभी तीर्थंकरों की देशना समान होती है और उनकी देशना में सभी प्रकार की भाषाएँ आ जाती हैं।

भगवान महावीर के पश्चात् तीन अनुबद्ध केवली हुए उनकी भी देशना हुई पश्चात् पाँच श्रुत केवली हुए, श्रुतज्ञान धीरे-धीरे ह्रास हो रहा था क्योंकि पहले ग्रंथ लेखन का प्रचलन नहीं था मात्र गुरु मुख से अध्ययन, अध्यापन चलता था यह क्रम ईशा की प्रथम द्वितीय शताब्दी तक चलता रहा यानि भगवान महावीर के निर्वाण के 683 वर्ष तक मतान्तर से 633 वर्ष तक कोई ग्रंथ लेखन नहीं हुआ।

उसके पश्चात् पुष्पदन्त, भूतबलि आचार्य ने षट्खण्डागम तथा गुणधर आचार्य ने कषाय पाहुड़ नामक ग्रंथों की रचना की जिसमें गणितीय विषय अत्यंत प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ई. की द्वितीय शताब्दी में लगभग (176 ई.) यतिवृषभाचार्य नाम के प्रसिद्ध जैनाचार्य हुए जिन्होंने तिलोय पण्णत्ति नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें गणित सूत्रों का बृहद विवेचन है।

शून्य के आविष्कारक आर्यभट को कहा जाता है आर्यभट भारत के प्रथम गणितज्ञ थे उन्होंने शून्य

का आविष्कार (खोज) किया, उन्होंने खगोलीय विज्ञान (ज्योर्तिलोक) आदि की खोज की। उन्होंने शून्य के विचार को समझा और 10 तक की बड़ी संख्याओं का इस्तेमाल किया। उन्होंने चौथे दशमलव बिंदु तक पाई के मान की सटीक गणना की। उन्होंने त्रिभुजों और वृत्तों के क्षेत्रफलों की गणना करने का सूत्र बनाया।

उनके नाम पर ही भारत के प्रथम उपग्रह का नाम रखा गया। गणित और खगोल विज्ञान का नाम आर्य भटीय आर्य सिद्धांत पड़ा था उनका जन्म 5वीं शताब्दी में 476 ई. कुशुमपुरा (पटना) में और मृत्यु 550 ई. में हुई थी। इन्हें भारत का सबसे बड़ा गणितज्ञ स्वीकार किया गया है। किन्तु..

आचार्य यतिवृषभ – आर्यभट से 300 वर्ष पूर्व लगभग हुए जिन्होंने शून्य का प्रयोग एक सामान्य से किया तथा 150 अंक तक की संख्या का प्रयोग सहजता में किया। तिलोयपण्णत्ति भाग दो सन् 2008 अतिशय क्षेत्र तिजारा से प्रकाशित ग्रंथ की गाथा में कहा है–

हत्थ पहेलिद णामं गुणिदं चउसीदि लक्ख वासेहिं।
अचलप्प णामधेओ कालं कालाणु वेदि णिदिट्ठं।।

अर्थ– चौरासी लाख वर्षों से गुणित हस्त प्रहेलित प्रमाण एक अचलात्मक नाम काल का प्रमाण होता है ऐसे काल द्रव्य को जानने वाले अर्थात् जिनेन्द्र देव ने कहा है।

विशेषार्थ– एक हस्त प्रहेलित x 8400000 =

अथवा

44,94,25,66,31,49,38,5461975295566818875162–75,16,065,26,72,45,16, 96,02,72,384 x 90 शून्य = 150 अंक की संख्या

अथवा

एक्कत्तीसट्ठाणे चउसीदिं पुह पुह ट्ठवे इणं।
अण्णोण्ण हदे लद्धं अचलप्पं होदि णउदि सुण्णंगं।।312।।

अर्थ– पृथक् पृथक् 31 स्थानों में (84) को रखकर और उनका परस्पर में गुणा करके आगे नव्वे शून्य लगाना अचलात्म प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् 84^{31}x90 शून्य

इससे स्पष्ट है कि ''शून्य'' प्रकृति में कोई नया नहीं आया जिनेन्द्र देव की दिव्य ध्वनि में खिरा था अत: अनादिकाल से है। जिनदेव की वाणी में कोई वस्तु नवीन उत्पन्न नहीं होती अपितु जो प्रकृति में है वही उनकी दिव्य ध्वनि में प्रकट होती है अर्थात् खिरती है। आर्यभट से कई वर्षों पूर्व हमारे जैनाचार्यों ने शून्य का प्रयोग कई स्थलों पर किया है जैसे षट्खण्डागम, कषाय पाहुड़ आदि तो तिलोयपण्णत्ति से भी बहुत प्राचीन है। प्रवचनसार के लेखक कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभाचार्य के समकक्ष रहे है अत: कुन्दकुन्द स्वामी ने भी शून्य का प्रयोग किया है। अत: सिद्ध है शून्य अनादिकाल से प्रकृति में था और जैनाचार्यों ने उसका सबसे पहले प्रयोग किया है अत: सिद्ध है कि आर्यभट अविष्कारक नहीं लोक में प्रचारक तो कह सकते हैं निर्माता नहीं।

इसी प्रकार ''पाई'' का प्रयोग ''पाई'' रूप में न करके जैनाचार्य यतिवृषभ महाराज ने $\sqrt{10}$ इस रूप में किया है। क्योंकि जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि जो कि 316227 योजन 3 कोस 128 धनुष 1 वितस्ति 1 अंगुल 5 जौ 1 जूं 1 लीक 6 कर्म भूमि के बाल 2 सन्नासन्न 2 अवसन्नासन्न से कुछ अधिक है इस प्रकार का माप अत्यंत सूक्ष्म है जो कि ''पाई'' के स्थान पर $\sqrt{10}$ का प्रयोग करके प्राप्त होता है तथा वर्गमूल भी जैन आचार्यों के लिए एक सामान्य पद्धति या बोलचाल की भाषा सी प्रतीत होती है।

गुणकार, भागहार, संकलन, व्यकलन आदि अनेक शब्द जैन शास्त्रों में अत्यंत सामान्य से लगते हैं वृत्त, त्रिभुज, चतुर्भुज निकालने के करण सूत्र भी जैन ग्रंथों में कई स्थलों पर प्रयोग किये गये हैं। जैसे लोक का घनफल क्षेत्रफल निकालना, द्वीप, सागर, वेदी, वृक्ष, गोपुर, नगर, भवन आदि का प्रमाण निकालने के लिए कई करण सूत्रों का प्रयोग जैनाचार्यों ने किये हैं अत: वे नवीन नहीं हैं वे अनादि से हैं, थे और आगे भी रहेंगे। अन्तर इतना है कि प्रयोग विधि अलग अलग हो सकती है, भाषा अलग-अलग हो सकती है, लेकिन गणितीय भाषा अनादि कालीन है और अनंतकाल तक रहेगी। इसके प्रस्तोता भिन्न-भिन्न हो सकते हैं निर्माता नहीं। इसलिए हमें समझना चाहिए कि जैनाचार्य प्राचीन काल से ही गणितज्ञ रहे हैं। आगे जैन गणितज्ञ आचार्य व अन्य गणितज्ञों का विस्तार से विवेचन प्रस्तावना में व ग्रंथ के अन्तर्गत किया जायेगा।

प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य डॉ. नेमिचन्द्र जैन ने ति.प. की प्रस्तावना में लिखा है।

ज्योर्तिलोक – तिलोयपण्णत्ति जो कि ईसा की दूसरी शताब्दी में तथा धवला, षट्खण्डागम ग्रंथ जो कि ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी का ग्रंथ है उनमें ज्योर्तिलोक का विशद विवेचन पाया जाता है। तिलोयपण्णत्ति के आधार पर त्रिलोकसार ग्रंथ की रचना दसवीं शताब्दी में हुई जो कि महान आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने की थी।

ज्योतिर्लोक में जैन आचार्यों के द्वारा खोज–

1. पंच वर्षात्मक युग का सर्वप्रथम उल्लेख जैन ज्योतिष ग्रंथों में उपलब्ध होता है। यद्यपि वेदांग ज्योतिष में भी पंच वर्षात्मक युग का पंचांग बनता है पर जो विस्तृत गगनखण्डों, वीथियों एवं योजनों में गमन संबंधी सामग्री जैन करणानुयोग के ग्रंथों में उपलब्ध है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।
2. तिथि क्षय संबंधी प्रक्रिया का विकास जैनाचार्यों के द्वारा स्वतंत्र रूप से किया है।
3. जैन मान्यता की नक्षत्रात्मक ध्रुव राशि का वेदांग ज्योतिष वर्णित दिवसात्मक ध्रुव राशि से सूक्ष्म होना तथा उसका उत्तर कालीन राशि के विकास में सहायक होना।
4. पर्व और तिथियों में नक्षत्र लाने की विकसित जैन प्रक्रिया जैनेत्तर ग्रंथों में छठवीं शती के बाद दृष्टिगत होती है।
5. जैन ज्योतिष में संवत्सर संबंधी प्रक्रिया में मौलिकता होना।
6. दिन मान प्रमाण संबंधी प्रक्रिया में पैतामह सिद्धांत का जैन प्रक्रिया से प्रभावित प्रतीत होना।
7. छाया माप द्वारा समय निरूपण का विकसित रूप इष्ट काल मयाति आदि होना।

संप्रति ति.प.भा.। प्रस्तावना

नोट– इसके अलावा सूर्य चन्द्र ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि की लम्बाई चौड़ाई व्यय आदि का माप, उनके भ्रमण का क्षेत्र, समय में भ्रमण की गति आदि मानव जीवन में उनका प्रभाव नक्षत्र राशि भुक्ति काल आदि पर भी यतिवृषभाचार्य वीरसेन तथा नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती आदि अनेक आचार्यों ने विस्तार से वर्णन किया है। इन्हें तीर्थंकर भगवान महावीर के पश्चात गुरु परम्परा से ज्ञान प्राप्त था। अत: गणितीय पद्धति से उन्होंने ज्योतिर्लोक पर भी कार्य किया है अत: सिद्ध है कि भारतीय प्रथम गणितज्ञ आर्यभट से कई वर्ष पूर्व जैनाचार्यों के द्वारा गणित सूत्रों का निरूपण किया जा चुका था

अत: इस पुस्तक के लिखे जाने का मूल उद्देश्य सम्यग्ज्ञान का प्रकाश सम्पूर्ण लोकालोक का सम्पूर्ण ज्ञान हो, आत्म स्वरूप का ज्ञान हो तथा उसका ही श्रद्धान हो और जैन ग्रंथों में वर्णित गणित प्रक्रिया को समझें एवं जैनाचार्यों के योगदान को समझें इसलिए यह कृति स्वाध्याय प्रेमियों को सादर समर्पित है। इस कृति को पढ़ने समझने से जैन ग्रंथों का रहस्य समझा जा सकता है। क्योंकि चाहे प्रथमानुयोग हो, चाहे करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग हो बिना गणितीय पद्धति के समझें इन्हें नहीं समझा जा सकता है क्योंकि गणित का समावेश चारों अनुयोगों में है विशेष रूप से करणानुयोग तो गणितपरक ही है1

बिना करणानुयोग के आत्मकल्याण संभव नहीं है इसलिए इसका अध्ययन करना अनिवार्य ही नहीं परम आवश्यक है। इस कृति का संपादन हमारे संघ के गौरव निर्यापक मुनि विज्ञसागर जी महाराज ने बड़ी कुशलता और मेहनत से किया है तथा संकलन आर्यिका विमुदश्री माताजी ने दिन रात एक करके बड़े ही परिश्रम के साथ किया है। मेरा उनके लिए तथा जिन महाराजों ने, माताजियों ने, श्रेष्ठियों ने इस कृति में जो भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग किया है उन सभी महाराजों को, माताजियों को, श्रेष्ठियों को आशीर्वाद है कि वे इसी प्रकार ज्ञान यज्ञ में, श्रुत सेवा में लगे रहें और उत्कृष्ट श्रुतज्ञान को प्राप्त कर एक दिन केवलज्ञान को प्राप्त करें।

।। ॐ नम: ।।

उच्चारणाचार्य विनम्रसागर

सम्पादकीय

तीर्थंकरों की अक्षुण्ण परम्परा में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर अन्तिम तीर्थेश भगवान महावीर हुए। उनकी दिव्य देशना में श्रुत ज्ञान का अवतरण हुआ तथा गणधरों के द्वारा द्वादशांग रूप अंग व पूर्व रूप में निरूपण हुआ। पश्चात् क्रम प्राप्त अर्वाचीन आचार्यों को गुरु परम्परा से प्राप्त होते हुए क्रमशः ह्रास रूप से ई. पूर्व की प्रथम सदी के महान आचार्य धरसेन स्वामी जिन्हें अग्रायणी पूर्व की पंचम वस्तु के चतुर्थ अधिकार का ज्ञान था जिन्होंने पुष्पदंत भूतबली इन दो आचार्यों को प्रदान किया उन्हीं के समकक्ष गुणधर नामक आचार्य हुए जिन्हें ज्ञान प्रवाद नामक पंचम पूर्व की दसवीं वस्तु के तृतीय अधिकार पेज्जदोस नामक अधिकार का ज्ञान था।

हम ऋणी है इन महान आचार्यों के जिन्होंने सर्वप्रथम षट्खण्डागम व कषाय पाहुड़ नामक ग्रंथों की रचना की जो आज हमें सिद्धांत का ज्ञान प्रदान कर रहे हैं हम ऋणी है आचार्य यतिवृषभ के जिन्होंने दृष्टिवाद अधिकार से तिलोय पण्णत्ति जैसे ग्रंथों की रचना कर हमें लोक अलोक का ज्ञान प्रदान किया। हम ऋणी है आचार्य वीरसेन, नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती, कुन्दकुन्दाचार्य आदि अनेक आचार्यों के जिनकी असीम अनुकम्पा से आज हमें जिनेन्द्र भगवान की वाणी जिनवाणी प्राप्त है। इस लघु काय अलौकिक 'गणित प्रबोध' पुस्तक में जिन ग्रंथों का आधार लिया गया है हम उन आचार्यों मुनिराजों, विद्वानों के ऋणी हैं। सबसे अधिक ऋणी हैं परम पूज्य गुरुणां गुरु आचार्य भगवन् विरागसागर जी गुरुदेव के जिन्होंने हमें आचार्य विनम्रसागर जी जैसे गुरु दिये उन्होंने सम्पूर्ण सिद्धांत, गणित का अध्ययन कराया व इस कृति का सृजन किया। उनका उपकार हम जन्म जन्मान्तरों तक नहीं चुका सकते।

आज मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि ऐसी कृति जिसका कार्य अत्यंत दुरुह है उसका सम्पादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ये सब गुरु आशीष का ही फल है।

हम आभारी हैं मुनि विनतसागर, विनयसागर, विनंदसागर, विनुतसागर, विनिवेशसागर, विश्वकुंदसागर, विश्वधीरसागर, विश्वमितसागर आदि के जिन्होंने इस कृति के सृजन में सम्पादन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है। आर्यिकारत्न बिमलश्री माताजी, बिनेहश्री माताजी, जिन्होंने कदम-कदम पर बड़ी बहन बनकर अपना मार्गदर्शन दिया, आर्यिका वितपश्री, विशमश्री, विपुलश्री माताजी जिन्होंने समय-समय पर साहस बढ़ाया इनके लिए मंगल भावना के साथ शुभाशीष। सबसे अधिक जिन्होंने दिन-रात एक कर जो मेहनत की है, जब ग्रंथ संकलन की बात चली तो मैंने एक मुनिराज से कहा लेकिन कार्य इतना दुरुह व नीरस था कि वे तैयार नहीं हुए, तब ये पाया कि रत्नाकर में रत्नों की कोई कमी नहीं होती। अपनी अद्भुत प्रतिभा को लिए आर्यिका बिमुदश्री माताजी ने बड़े हर्षपूर्वक कहा कि इस कार्य का सौभाग्य मुझे प्रदान किया जाए मेरी उम्मीद जगी और संकलन का कार्य माताजी को सौंपा गया। पहले उन्हें अध्ययन कराया और उन्होंने यह कार्य बड़ी लगन मेहनत के साथ सम्पन्न किया निश्चित रूप से उनकी

इस प्रतिभा से महसूस होता है कि आगामी काल में एक महान आर्यिकारत्न के रूप में उनका नाम लिया जायेगा उनके इस साहसपूर्ण कार्य को युगों-युगों तक स्मरण किया जायेगा। मेरी उनके प्रति मंगल भावना है वे इसी प्रकार अपने अध्ययन, अध्यापन कार्य में आत्मसाधना में संलग्न रहें उनके प्रति इस कार्य के लिए बहुत बहुत शुभाशीर्वाद साथ ही आर्यिका विभव्यश्री, क्षुल्लक-क्षुल्लिका, बा.ब्र. प्राची दीदी, बा.ब्र. कुशाल भैया आदि ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी सभी संघस्थ लोगों ने जो सहयोग प्रदान किया है सबसे अधिक सहयोग हमें प्राप्त हुआ है तो डॉ. अनुपम जैन का जो जैन गणित के मर्मज्ञ, निष्पक्ष विद्वान हैं आज भारत के कौने-कौने में जैन गणित के विद्वानों में सर्वप्रथम नाम लिया जाता है तो डॉ. अनुपम जैन का लिया जाता है इन सभी के लिए मेरा बहुत-बहुत आशीर्वाद है ये इसी प्रकार से श्रुत सेवा व श्रुत संवर्धन में लगे रहें व अपना आत्मकल्याण कर सकें। समाज श्रेष्ठी जनों ने जो सहयोग प्रदान किया है उनके लिए आशीर्वाद हैं। जिन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का प्रयोग इस ज्ञानयज्ञ में कर इस कृति को मूर्तरूप प्रदान किया है उनके प्रति बहुत बहुत आशीर्वाद। यह कृति सभी के लिए ज्ञानवर्धक हो, पुण्यवर्धक हो, सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान के साथ अनंतज्ञान को प्रदान करने वाली हो ऐसी मंगलभावना के साथ।

॥ ॐ नमः ॥

निर्यापक श्रमण मुनि विज्ञसागर

प्रस्तावना

गणित एवं गणितीय प्रक्रियाओं को सम्यक् रूप से समझे बिना मूल ग्रंथों एवं आगमों की विषयवस्तु को ठीक प्रकार से नहीं जाना जा सकता। जैन शास्त्रों में जिन 72 कलाओं का उल्लेख मिलता है उनमें सर्वप्रथम स्थान लेखन का एवं दूसरा गणित का है, तथापि आगम में प्राय: इन कलाओं को ''लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ'' अर्थात् लेखादिक किन्तु गणित प्रधान कहा गया है।

विषय परिचय

भूमिका

गणित की परिभाषा – भारतीय परम्परा में गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रंथ बुद्धिविलासिनी में गणित की परिभाषा निम्नवत् की है –

''गण्यते संख्यायते तद गणितम् ।
तत्प्रतिपादकत्वेन तत्संज्ञं शास्त्रं उच्यते।।

जो परिकलन करता है और गिनता है वह गणित है तथा वह विज्ञान जो इसका आधार है वह भी गणित कहलाता है।

गणित ऐसी विद्याओं का समूह है जो संख्याओं, मात्राओं, परिमाणों, रूपों और उनके आपसी रिश्तों, गुणों, स्वभावों इत्यादि का अध्ययन करती है। गणित अमूर्त या निराकार [abstract] और निगमनात्मक प्रणाली है। गणित की कई शाखाएँ हैं – अंकगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, सांख्यिकी, बीजगणित इत्यादि। गणित में अभ्यस्त व्यक्ति या खोज करने वाले वैज्ञानिक को ''**गणितज्ञ**'' कहते हैं।

गणित दो प्रकार का है – (1) व्यक्त गणित या पाटीगणित – इसमें व्यक्त राशियों का उपयोग किया जाता है।

(2) अव्यक्त गणित या बीजगणित – इसमें अव्यक्त या अज्ञात राशियों का उपयोग किया जाता है। अव्यक्त संख्याओं को 'वर्ण' भी कहते हैं। इन्हें 'या', 'का', 'नी' आदि से निरूपित किया जाता है। जैसे – आजकल रोमन अक्षरों x, y, z का प्रयोग किया जाता है। [का – कालक, नी – नीलक, या-यावत्, ता – तावत्]

गणित शब्द का इतिहास

द्वादशांग यद्यपि अनादिकाल से स्थित है और रहेगा, न तो इसे किसी ने उत्पन्न किया है और न कोई इसे समाप्त कर सकेगा। कहा भी है "सिद्धो वर्ण समाम्नाय" अर्थात् वर्ण कहो या अंक कहो यह अनादिकाल से है अनंतकाल तक रहेंगे। जैसे कि सिद्ध अनादिकाल से हैं अनंतकाल तक रहेंगे। परन्तु भरत और ऐरावत क्षेत्र में कालचक्र चलता रहता है जिसमें एक कल्पकाल 20 कोड़ा कोड़ी सागर का होता है। 10 कोड़ा कोड़ी सागर का अवसर्पिणी काल और 10 कोड़ाकोड़ी सागर का उत्सर्पिणी काल होता है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल प्रवाहमान है जिसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय काल में भोग भूमि का निर्माण होता है पश्चात् कर्मभूमि प्रारम्भ होती है। उसमें सर्वप्रथम 14 मनु होते हैं, उसके पश्चात् प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव हुए उन्होंने षट् कर्त्तव्य का उपदेश दिया। उसमें लेखन कला का प्रारम्भ उनकी पुत्री ब्राह्मी, सुन्दरी के माध्यम से हुआ। उन्होंने ब्राह्मी को वर्ण एवं सुन्दरी को अंक विद्या प्रदान की। वहीं से यह गणितीय पद्धति प्रारम्भ हुई। यद्यपि चतुर्थ काल में शास्त्र लिपि का कार्य नहीं होता था केवल गुरु मुख से ही शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य होता था किन्तु वर्तमान पंचम काल में क्षयोपशम का ह्रास होने के कारण शास्त्र लिपिबद्ध किए जाने लगे।

जैन शास्त्रों में गणित का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिना गणित के जैन आगम को पढ़ना और समझना मुश्किल ही नहीं असंभव है, हमारे अर्वाचीन आचार्यों ने गणित शास्त्र पर विशेष जोर दिया। भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् (633 वर्ष पश्चात्) षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना हुई जिसमें गणित सूत्रों का विशद् विवेचन मिलता है। लगभग 1800 वर्ष पूर्व यतिवृषभाचार्य नामक आचार्य हुए जिन्होंने तिलोय पण्णति के माध्यम से गणित सूत्रों का विस्तृत वर्णन किया। पश्चात् विभिन्न देशों में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अनेकानेक गणितज्ञों ने अपनी-अपनी शैलियों में गणित सूत्रों को प्रस्तुत किया, यदि मूलतः देखते हैं तो गणित प्रणाली अनादिकाल से है, अनंतकाल तक रहेगी, इसके प्रवर्तक हमारे तीर्थंकर व पूर्वाचार्य हैं।

गणित शास्त्र के लिए अनेक नाम विकसित होते हैं। सर्वप्रथम 'ब्रह्मगुप्त' ने पाट या पाटी का प्रयोग किया। बाद में श्रीधराचार्य ने 'पाटी गणित' (पाटीगणित सार या त्रिशतिका) नाम से महनीय ग्रंथ लिखा, तब से यह नाम लोकप्रिय हो गया। पाटी या तख्ती पर खड़िया द्वारा संक्रियाएँ करने से यह नाम समाज में चलने लगा। अरब में भी इस पद्धति को अपनाने से इस नाम के वजन पर 'इल्म हिसाब अल तख्त' नाम प्रचलित हुआ।

मानव ज्ञान की कुछ प्राथमिक विधाओं में संभवतया गणित भी आता है और यह गणित मानव सभ्यता जितना ही पुराना है। मानव जीवन के विस्तार और इसमें जटिलताओं में वृद्धि के साथ गणित का भी विस्तार हुआ है और उसकी जटिलताएँ भी बढ़ी है। सभ्यता के इतिहास के पूरे दौर में गुफा में रहने वाले मानव के सरल जीवन से लेकर आधुनिक काल के घोर जटिल एवं बहुआयामी मनुष्य तक आते-आते

मानव जीवन में धीरे-धीरे परिवर्तन आया है। इसके साथ ही मानव ज्ञान-विज्ञान की एक व्यापक एवं समृद्ध शाखा के रूप में गणित का विकास भी हुआ है। आजकल गणित दैनिक जीवन के साथ सर्वव्यापी रूप में समाया हुआ दिखता है। गणित की उत्पत्ति कैसे हुई, यह आज इतिहास के पन्नों में ही विस्मृत है। मगर हमें मालूम है कि आज से 4000 वर्ष पहले बेबीलोन तथा मिस्र सभ्यताएँ गणित का इस्तेमाल पंचांग (कैलेंडर) बनाने के लिए किया करती थीं जिससे उन्हें पूर्व जानकारी रहती थी कि कब फसल की बुआई की जानी चाहिए या कब नील नदी में बाढ़ आएगी या फिर इसका प्रयोग वे वर्ग समीकरणों को हल करने के लिए किया करती थीं। उन्हें तो उस प्रमेय (थ्योरम) तक के बारे में जानकारी थी जिसका कि गलत श्रेय पाइथागोरस को दिया जाता है। उनकी संस्कृतियाँ कृषि पर आधारित थी और उन्हें सितारों और ग्रहों के पथों के शुद्ध आलेखन और सर्वेक्षण के लिए सही तरीकों के ज्ञान की जरूरत थी। अंकगणित का प्रयोग व्यापार के रूप में - पैसों और वस्तुओं के विनिमय या हिसाब-किताब रखने के लिए किया जाता था। ज्यॉमिति का इस्तेमाल खेतों के चारों तरफ की सीमाओं के निर्धारण तथा पिरामिड जैसे स्मारकों के निर्माण में होता था।

मिलेरस निवासी थेल्स (645-546 ई. पूर्व) को ही सबसे पहला सैद्धांतिक गणितज्ञ माना जाता है। उसने बताया कि किसी भी वस्तु की ऊँचाई का मापन छड़ी द्वारा निक्षेपित परछाई से तुलना करके मापा जा सकता है। ऐसा मानते हैं कि उसने एक सूर्यग्रहण होने के बारे में भी भविष्यवाणी की थी। उसके शिष्य पाइथागोरस ने ज्यामिति को यूनानियों के बीच एक मान्य विज्ञान का स्वरूप दिलाकर यूक्लिड और आर्किमिडीज के लिए आगे का मार्ग प्रशस्त किया। बेबीलोन निवासियों के विरासित में मिले ज्ञान में यूनानियों ने काफी वृद्धि की। इसके अलावा गणित को एक तर्कसंगत पद्धति के रूप में उन्होंने स्थापित भी किया - एक ऐसी पद्धति जिसमें कुछ मूल तथ्यों या धारणाओं को सत्य मानकर (जिन्हें प्रमेय कहते हैं) निष्कर्षों (जिन्हें उत्पत्ति या प्रमाण कहते हैं) तक पहुँचा जाता है। भारत के लिए यह गौरव की बात है कि बारहवीं सदी तक गणित की संपूर्ण विकास यात्रा में उसके उन्नयन के लिए किए गए सारे महत्त्वपूर्ण प्रयास अधिकांशतया भारतीय गणितज्ञों की खोजों पर ही आधारित थे।

गणित का महत्त्व

महान् गणितज्ञ गाउस ने कहा था कि गणित सभी विज्ञानों की रानी है। गणित, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण (टूल) है। भौतिकी, रसायन, विज्ञान, खगोल विज्ञान आदि गणित के बिना नहीं समझे जा सकते। ऐतिहासिक रूप से देखा जाय तो वास्तव में गणित की अनेक शाखाओं का विकास ही इसलिए किया गया कि प्राकृतिक विज्ञान में इसकी आवश्यकता आ पड़ी थी। कुछ हद तक हम सब के सब गणितज्ञ हैं। अपने दैनिक जीवन में रोजाना ही हम गणित का इस्तेमाल करते हैं। उस वक्त जब समय जानने के लिए हम घड़ी देखते हैं, अपने खरीदे गए सामान या खरीददारी के बाद बचने वाली रोजगारी का हिसाब जोड़ते हैं या फिर फुटबाल, टेनिस या क्रिकेट खेलते समय बनने वाले स्कोर का लेखा-जोखा रखते हैं।

व्यवसाय और उद्योगों से जुड़ी लेखा संबंधी संक्रियाएँ गणित पर ही आधारित है। बीमा (इंश्योरेंस)

संबंधी गणनाएँ तो अधिकांशतया ब्याज की चक्रवृद्धि दर पर निर्भर है। जलयान या विमान का चालक मार्ग के दिशा-निर्धारण के लिए ज्यामिति का प्रयोग करता है। भौगोलिक सर्वेक्षण का तो अधिकांश कार्य ही त्रिकोणमिति पर आधारित होता है। यहाँ तक कि किसी चित्रकार के आरेखण कार्य में भी गणित मददगार होता है, जैसे कि संदर्भ (पर्सपेक्टिव) में जिसमें कि चित्रकार को त्रिविमीय दुनिया में जिस तरह से इंसान और वस्तुएँ असल में दिखाई पड़ते हैं, उन्हीं का तद्नुरूप चित्रण वह समतल धरातल पर करता है।

गणित की महत्ता का प्रकाशन

वेदांग ज्योतिष में गणित का स्थान सर्वोपरि (मूर्धन्य) बताया गया है -

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम् ।। (वेदांग ज्योतिष-4)

अर्थ-जिस प्रकार मोरों के सिर पर शिखा और नागों के सिर में मणि सर्वोच्च स्थान में होते हैं उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सबसे ऊपर (मूर्धन्य) है।

महावीराचार्य गणित सार संग्रह में लिखा है-

बहुभिर्वि प्रलापैः किं, त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिद्वस्तु ते तं गणितेन बिना नहि।। (ग.सा.सं.-1/16)

बहुत प्रलाप करने से क्या लाभ है ? इस चराचर जगत में जो कोई भी वस्तु है वह गणित के बिना नहीं है अर्थात् उसको गणित के बिना नहीं समझा जा सकता।

भारतीय गणित का इतिहास

सभी प्राचीन सभ्यताओं में गणित विद्या की पहली अभिव्यक्ति गणना प्रणाली के रूप में प्रकट होती है। अति प्रारंभिक समाजों में संख्याएँ रेखाओं के समूह द्वारा प्रदर्शित की जाती थी। यद्यपि बाद में विभिन्न संख्याओं को विशिष्ट संख्यात्मक नामों और चिन्हों द्वारा प्रदर्शित किया जाने लगा, उदाहरण स्वरूप भारत में ऐसा किया गया। रोम जैसे स्थानों में उन्हें वर्णमाला के अक्षरों द्वारा प्रदर्शित किया गया। यद्यपि आज हम अपनी दशमलव प्रणाली के अभ्यस्त हो चुके हैं, किन्तु सभी प्राचीन सभ्यताओं में संख्याएँ दशमलव आधार प्रणाली (decimal system) पर आधारित नहीं थी।

भारत के गणित के इतिहास को मुख्यता 5 कालखण्डों में बाँटा गया है -
(1) आदिकाल प्रारम्भ से (प्रारम्भ से 500 ईस्वी पूर्व तक)
(क) वैदिक काल (1000 ई. पूर्व तक)

(ख) उत्तर वैदिक काल (1000 से 500 ई. पूर्व तक) - इस युग में गणित का भारत में अधिक विकास हुआ। इसी युग में बौधायन शुल्व सूत्र की रचना हुई, इसमें दिये गये प्रमेय को ही हम आज पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जानते हैं।

(2) मध्य काल – (500 ई.–1200 ई.) ये भारतीय गणित का स्वर्णकाल है। आर्यभट (499 ई.), श्रीधराचार्य, (750 ई.) महावीराचार्य (850 ई.) आदि श्रेष्ठ गणितज्ञ हुए।

(3) उत्तर मध्य काल (1200 ई. से 1800 ई. तक) – नीलकंठ ने 1500 ई. में sin का मान निकालने का सूत्र दिया जिसे हम ग्रेगरी श्रेणी के नाम से जानते हैं।

(4) वर्तमान काल – रामानुजन आदि महान् गणितज्ञ हुए।

ऋग्वेद की ऋचाओं में एवं उनकी संख्याओं 10 पर आधारित विविध घातों की संख्याओं को अलग–अलग संज्ञा दी गई है, यथा एक $(10)^0$, दस $(10)^1$, शत $(10)^2$, सहस्र $(10)^3$ आयुत $(10)^4$, लक्ष $(10)^5$, प्रयुत $(10)^6$, कोटि $(10)^7$, अर्बुद $(10)^8$, अब्ज $(10)^9$, खर्ब $(10)^{10}$, विखर्ण $(10)^{11}$, महापद्म $(10)^{12}$, शंकु $(10)^{13}$, जलधि $(10)^{14}$, अन्त्य $(10)^{15}$, मध्य $(10)^{16}$ और परार्ध $(10)^{17}$।

अन्य शास्त्रों में गणित की विवेचना

भारत में अन्य शास्त्रों के विद्वान भी गणित की भावना से ओत–प्रोत रहे प्रतीत होते हैं। इन शास्त्रों में प्रसंगवश गणित विषयक जानकारियाँ बिखरी पड़ी हैं। महान् वैयाकरण पाणिनी ने गणित के अनेक शब्दों की सूक्ष्म विवेचना की है। उन्होंने उस समय की आवश्यकतानुसार प्रतिशत के स्थान पर मास के देय ब्याज के लिए एक 'प्रतिशत' अनुपात का उल्लेख किया है। चक्रवृद्धि ब्याज द्वारा सर्वाधिक बढ़ी हुई रकम को 'महाप्रवृद्ध' बताया है। तोल माप सिक्के पण्य द्रव्य के सैकड़ों शब्दों के वर्णन के अन्तर्गत त्रैराशिक नियम की सूचना दी है। दर्शनशास्त्र के वेदान्त में अध्यारोप अपवाद के सिद्धान्त बीजगणितीय समीकरण या अंकगणित के 'इष्टकर्म' के समकक्ष हैं। न्याय शास्त्र की अनुमान या तर्कविद्या सर्वथा गणितीय नियमों से संचालित है।

खगोल–विज्ञान के साथ तो गणित का अन्योन्य सम्बन्ध माना गया है। भास्कराचार्य का कहना है कि खगोल तथा गणित में एक दूसरे से अनभिज्ञ पुरुष उसी प्रकार महत्त्वहीन है जैसे घृत के बिना व्यंजन, राजा के बिना राज्य, तथा अच्छे वक्ता के बिना सभा होती है।

भोज्यं यता सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च ।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र ।।
(सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय श्लोक 4)

जैन महापुरुषों की गणित में भी रुचि थी। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ – 'सूर्य प्रज्ञप्ति', 'धरसेन, यतिवृषभ सर्वनन्दि, 'स्थानांग सूत्र', 'अनुयोगद्वार सूत्र' 'षट्खण्डागम', लोए विभाग, धवला, गोम्मटसार आदि हैं। भद्रबाहु एवं उमास्वामी प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ थे।

वैदिक परंपरा में गुरु अपना ज्ञान मौखिक रूप से अपने योग्य शिष्य को प्रदान करता था पर ईसा पूर्व

5वीं शताब्दी में ब्राह्मी लिपि का आविष्कार हुआ। गणित की पुस्तकों की पांडुलिपियाँ ब्राह्मी लिपि में तैयार हुईं। 'बख्शाली पाण्डुलिपि' पहली पुस्तक थी जिसके कुछ अंश पेशावर के एक गाँव बख्शाली में प्राप्त हुए। ईसा पूर्व शताब्दी की लिखी यह पुस्तक एक प्रमाणिक ग्रंथ है। इसमें गणितीय संक्रियाओं – दशमलव प्रणाली, भिन्न, वर्ग, घन, ब्याज, क्रय एवं विक्रय आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा हुई है।

तिलोय-पण्णत्ती का गणित

परम्परा के आधार पर त्रिकालवर्ती विश्व रचना का सार रूप से परिचय कराने वाला यह [तिलोय पण्णत्ती नामक] ग्रंथ मुख्यत: गणित ग्रंथ नहीं है। इस ग्रंथ में कहीं कहीं गणित की झलक होने से गणना की शैली का कुछ वर्णन सम्भव हो सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। अन्य समकालीन अथवा कुछ पूर्वोक्त ग्रंथों की तुलना में, इस ग्रंथ में कुछ ऐसे प्रकरण तथा निरूपण दिए गए हैं जिनके आधार पर तिलोयपण्णत्ती की रचना से शताब्दियों पूर्व प्रचलित ज्ञान के विषय में आभास मिल जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु असंख्यात विषयक संख्याओं की प्रतीकों के आधार पर प्ररूपण है। इन प्रतीकों के आधार पर भाषा विज्ञान शास्त्री उनके उपयोग में लाये जाने वाले काल को निश्चित कर सकता है।

संख्या सिद्धान्त

आधुनिक गणितज्ञ के लिए संख्या शब्द की स्पष्ट परिभाषा की आवश्यकता नहीं रहती। उस पर भी व्यापक रूप से सर्व प्रकार की संख्याओं, वास्तविक और काल्पनिक, परिमेय और अपरिमेय, पूर्णांक और भिन्न आदि का निरूपण करने के लिए यह कहा जा सकता है कि संख्या केवल समान राशियों (ढेरों) की राशि है, और कुछ नहीं। गणित के इतिहास से प्रतीत होता है कि सबसे पहले महावीराचार्य ने काल्पनिक संख्याओं को पहचान कर उनको उपयोग में न लाने का कथन किया था। तथापि जैसे ½ आदमी का अर्थ आदमी की आधी ऊँचाई लेकर उसका उपयोग किया जा सकता है, उसी प्रकार काल्पनिक संख्याओं का आधुनिक युगीन विभिन्न विद्वानों में विस्तृत और महत्त्वपूर्ण उपयोग हो चुका है। पायथागोरियन युग में भी अनन्त के विषय में वार्ताएँ चल पड़ी थी, परन्तु जैनों के तर्कों ने बाद के गणितज्ञों को उस ओर आगे जाने में भय उत्पन्न कर दिया था। जब गेलिलियों के पश्चात् 19वीं सदी में जार्ज केंटर ने अनन्त विषयक गणित की संरचना प्रारम्भ की, उस समय गणितज्ञों ने कहा था कि यह विषय 100 वर्ष अति पूर्व लाया गया है। किन्तु भारतवर्ष में यह विषय ईसा से कुछ शताब्दियों पूर्व प्रतिपादित हो चुका था। पुष्पदंत और भूतबलि के ग्रंथ षट्खंडागम तथा उनके पश्चात् के प्राय: सभी ग्रंथों में असंख्यात और अनन्त शब्द बिल्कुल साधारण शैली में उपयोग में लाये जाते हैं, मानों ये हमसे अपरिचित ही नहीं है। तिलोयपण्णति में असंख्यात और अनंत के वास्तविक दर्शन को क्रमश: अवधिज्ञान तथा केवलज्ञानी का विषय बताया है। वीरसेन स्वामी ने अनंत संज्ञा उस राशि को दी है, जो व्यय के होते रहने पर भी अनंत काल में समाप्त न हो। संख्यात अथवा

असंख्यात प्रमाण राशि, अनंत में से व्यय कर दी जाने पर भी अनंत का प्रमाण अनंत रहता है, अर्थात् उसकी अनंत संज्ञा नष्ट नहीं हो सकती है। यद्यपि संख्या के 21 भेदों का वास्तविक अर्थ समझना वांछनीय है। संख्यात से उत्कृष्ट संख्यात की प्राप्ति होने पर इसमें केवल 1 जोड़ने पर जघन्य परितासंख्यात प्राप्त हो जावे, पर उस संख्या में यह असंख्यात संज्ञा उपचार रूप में दी गई है। वास्तविक असंख्यात संज्ञाधारी धर्म द्रव्यादि राशियों को क्रमबद्ध गणना से प्राप्त संख्यात में जोड़ा जाता है। इसी प्रकार, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में 1 जोड़ने पर जघन्य परितानन्त की जो उत्पत्ति है वह अनंत संज्ञा की धारी इसलिए है कि वह संख्या अब अवधिज्ञानी का विषय नहीं रही इसलिए औपचारिक रूप से अनंत शब्द द्वारा बोधित है, वास्तविक अनंत नहीं है। अनंत की प्राप्ति के लिए इस संख्या से क्रमबद्ध गणना के पश्चात् जो असंख्यात से ऊपर प्रमाण राशि उत्पन्न होती है, उसमें उपधारित अनंत राशियाँ जब मिलाई जाती हैं तभी वह वास्तविक अनंत संज्ञा की अधिकारिणी होती है। इसके आधार पर द्रव्य, क्षेत्र और काल के आधार पर कहे गये प्रमाण तथा उनका अल्प बहुत्व मौलिक है, मनोरंजक है। वह यह कि किसी अनन्त से अपेक्षाकृत बड़ा अनंत भी होता है। उदाहरणत: यह बात मन में साधारणत: नहीं बैठती है कि क्या अनंत काल के एक–एक करके बीतने वाले समयों में संसारी जीव राशि कभी समाप्त नहीं होती।

संख्याओं के विभाजन का यह विषय लौकिक गणित का नहीं है, वरन् अलौकिक अथवा लोकोत्तर गणित का है, जैसा कि श्री अकलंक देव के तत्त्वार्थवार्तिक में उल्लेख है। समान्तर श्रेणियों और गुणोत्तर श्रेणियों का उपयोग तिलोय पण्णत्ति में तो आया ही है, साथ ही कर्म ग्रंथों में तो आत्मा के परिणाम और कर्म पुद्गलों के समूह के यथोचित प्रतिपादन में इन श्रेणियों का विशाल रूप में उपयोग हुआ है। तिलोयपण्णत्ति में बीज रूप प्रतीकों का कहीं–कहीं उपयोग हुआ है। रिण के लिए उसके संक्षेप रूप को कहीं–कहीं लिया गया दृष्टिगत होता है, जैसे रिण के लिए 'रि'। मूल के लिए 'मू'। रिण के लिए '। जगच्छ्रेणी के लिए आड़ी लकीर '–'। जगत्प्रतर के लिए दो आड़ी क्षैतिज लकीरें "=" घनलोक के लिए तीन आड़ी लकीरें "≡"। रज्जु के लिए 'र', पल्य के लिए 'प', सूच्यंगुल के लिए '2', आवलि के लिए भी '2' लिखा गया। नेमिचन्द्राचार्य के ग्रंथों की टीकाओं में विशेष रूप से संदृष्टियों को विकसित किया गया जो उनके बाद ही माधवचन्द्र त्रविद्याचार्य एवं चामुण्डाराय के प्रयासों से फलीभूत हुआ होगा, ऐसा अनुमान है। जहाँ तक मापिकी एवं ज्यामिति विधियों का प्रश्न है, इन्हें करणानुयोग ग्रंथों में जम्बूद्वीपादि के वृत्त रूप क्षेत्रों के क्षेत्रफल, धनुष, जीवा, बाण, पार्श्वभुजा तथा उनके अल्पबहुत्व निकालने के लिए प्रयुक्त किया गया। तिलोयपण्णत्ती में उपर्युक्त के सिवाय लोक को वेष्टित करने वाले विभिन्न स्थलों पर स्थित वातवलयों के आयतन भी निकाले गये हैं जो समान सदृश आकृतियों, क्षेत्रों एवं आयतनों से युक्त है। इनमें आकृतियों का टापालाजिकल डिफार्मेशन कर घनादिरूप में लाकर घनफल आदि निकाला गया है, अतएव विधि के इतिहास की दृष्टि से यह प्रयास महत्त्वपूर्ण है। व्यास द्वारा वृत्त की परिधि निकालने की विधियाँ भी विश्व में कई सभ्यता वाले देशों में पाई जाती है। तिलोयपण्णत्ती जैसे करणानुयोग के ग्रंथों में परिधि/व्यास का मान स्थूल रूप से 3 तथा सूक्ष्म रूप $\sqrt{10}$ दिया गया है। वास्तव में वीरसेनाचार्य ने धवला ग्रंथ में एक और मान दिया है जिसे उन्होंने सूक्ष्म में भी सूक्ष्म कहा गया है और यह वास्तव में ठीक भी है। वह चीन में

भी प्रयुक्त होता था : वह है= $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{355}{113} = 3.141593$

जो कुछ हो यह तथ्य चीन और भारत के गणितीय संबंध की परम्परा को जोड़ता हुआ प्रतीत होता है। प्रदेश और परमाणु की धारणाएँ यूनान से संबंध जोड़ती है तथा गणित के आधार पर अहिंसा का प्रचार यूनान के पिथेगोरस की स्मृति ताजी करती है। ज्यामिति के अनुपात सिद्धान्त का तिलोयपण्णत्ती में विशेष प्रयोग हुआ है। लोकाकाश का घनफल निकालने की प्रक्रिया को विस्तृत किया गया है और भिन्न-भिन्न रूप की आकृतियाँ लोक के घनफल के समान लेकर छोटी आकृतियों में उन्हें पूरित कर घनफल की उनमें समानता दिखलाई गई है। इस प्रकार लोक को प्रदेशों से पूरित कर, छोटी आकृतियों से पूरित कर जो विधियाँ जैनाचार्यों ने प्रयुक्त की हैं, वे गणितीय इतिहास में अपना विशेष ध्यान रखेगीं। जहाँ तक ज्योर्तिलोक विज्ञान की विधियाँ हैं, वे तिलोयपण्णत्ती अथवा अन्य करणानुयोग ग्रंथों में एक सी है। समस्त आकाश को गगनखण्डों में विभाजित कर मुहूर्तों में ज्योतिर्बिम्बों की स्थिति, गति, साक्षेप गति, वीथियाँ आदि निर्धारित की गयी है। पूज्य आर्यिका विशुद्धमती जी ने असीम परिश्रम कर चित्र सहित अनेक गणतीय प्रकरणों का निरूपण ग्रंथ की टीका करते हुए कर दिया है। अनंत अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में स्थित जीवादि पाँच द्रव्यों में व्याप्त और जगत्श्रेणी के घन प्रमाण यह लोकाकाश है। 16 ख ख ख उपर्युक्त निरूपण में जगत्श्रेणी के घन का प्रतीक है जो लोकाकाश है। 16 जीवराशि की प्रचलित संदृष्टि है। इसी प्रकार 16 से अनंत गुनी 16 ख पुद्गल परमाणु राशि की संदृष्टि है और इससे अनंतगुनी 16 ख ख भूत वर्तमान भविष्य त्रिकालगत समय राशि है। इस समय राशि से अनंतगुनी 16 ख ख ख अनंत आकाशगत प्रदेश राशि की संदृष्टि मानी गयी है जो अनंत है। अयन के कारण विषुवांश में अंतर आता है जिससे ऋतुएँ अपना समय धीरे-धीरे बदलती जाती है। अयन के कारण होने वाले परिवर्तन को जैनाचार्यों ने संभवतः देखा होगा और अपना नया पंचांग विकसित किया होगा। वेदांग ज्योतिष में माघ शुक्ल प्रथम को सूर्य नक्षत्र घनिष्ठा और चन्द्र नक्षत्र को भी घनिष्ठा लिया गया है। जबकि सूर्य उत्तरापथ पर रहता है किन्तु जैन पंचांग (तिलोयपण्णत्ती आदि) में जब सूर्य उत्तरापथ पर होता है तब माघ कृष्णा सप्तमी को सूर्य अभिजित नक्षत्र में और चन्दमा हस्त नक्षत्र में रहता था। अयन का 360° का परिवर्तन प्राय: 26000 वर्षों में होता दृष्टिगत हुआ है। आठ उपमा प्रमाणों की संदृष्टियाँ प., सा., सू., प्र., घ., ज., ज. प्र., लो. दी गई है जो पल्य सागरादि के प्रथम अक्षर रूप है।

अंगुल का माप

अनन्तानन्त परमाणु द्रव्य राशि	= 1 उवसन्नासन्न स्कन्ध
8 उवसन्नासन्न स्कन्ध	= 1 सन्नासन्न स्कन्ध
8 सन्नासन्न स्कन्ध	= 1 त्रुटिरेणु स्कन्ध (यहाँ तक के स्कंध हमें आंखों से दिखाई नहीं देते)
8 त्रुटिरेणु स्कन्ध	= 1 त्रसरेणु स्कन्ध (त्रस जीवों के चलने से उड़ने वाली धूली का कण)

8 त्रसरेणु स्कन्ध	= 1 रथरेणु स्कन्ध (रथ के पहिए के चलने पर उड़ने वाली धूली का कण)
8 रथरेणु स्कन्ध	= 1 उत्तम भोग भूमि बालाग्र
8 उत्तम भोगभूमि बालाग्र	= 1 मध्यम भोग भूमि बालाग्र
8 मध्यम भोगभूमि बालाग्र	= 1 जघन्य भोग भूमि बालाग्र
8 जघन्य भोगभूमि बालाग्र	= 1 कर्मभूमि बालाग्र
8 कर्मभूमि बालाग्र	= 1 लीक
8 लीक	= 1 जूँ
8 जूँ	= 1 जौ
8 जौ	= 1 अंगुल

उपर्युक्त परिभाषा में प्राप्त अंगुल, सूच्यंगुल कहलाता है जिसकी संदृष्टि 2 का अंक मानी गयी है।

छः अंगुल = 1 पाद; 2 पाद = 1 वितस्ति; 2 वितस्ति = 1 हाथ; 2 हाथ = 1 रिक्कू

2 रिक्कू = 1 दण्ड; 1 दण्ड या 4 हाथ = 1 धनुष = 1 मूसल = 2 नाली;

2000 धनुष या 2000 नाली = 1 कोस; 4 कोस = 1 योजन।

सूच्यंगुल में जो प्रदेश राशि होती है उसकी संख्या निकालने के लिए पहले अद्धापल्य के अर्द्धच्छेद निकालते हैं और उन्हें शलाका रूप स्थापित कर एक-एक शलाका के प्रति पल्य को रखकर आपस में गुणित करते हैं। जो राशि इस प्रकार उत्पन्न होती है, वह सूच्यंगुल की प्रदेश राशि है –

$$\text{सूच्यंगुल} = \left[\frac{\text{पल्य के अर्द्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}}\right]^{\text{पल्य}}$$

जगत्श्रेणी = (घनांगुल)

यहाँ सूच्यंगुल राशि की संदृष्टि "2" और जगच्छ्रेणी की संदृष्टि "–" है।

इसी प्रकार

प्रतरांगुल	= $(\text{सूच्यंगुल राशि})^2$	, संदृष्टि ४	एक प्रतरांगुल में सूच्यंगुल प्रमाण सूच्यंगुल होते हैं।
घनांगुल	= $(\text{सूच्यंगुल राशि})^3$	, संदृष्टि ६	एक सूच्यंगुल प्रमाण प्रतरांगुल
जगत्प्रतर	= $(\text{जगत्श्रेणी राशि})^2$	, संदृष्टि '='	एक जगत् प्रतर में जगत्श्रेणी प्रमाण ही जगत् श्रेणी होता है।

घनलोक = $(\text{जगत्श्रेणी राशि})^3$, संदृष्टि '≡' जगत्श्रेणी प्रमाण जगत्प्रतर होते हैं।

राजू = (जगश्रेणी ÷ ७), संदृष्टि '७' असंख्यात योजन का राजू होता है।

संदृष्टि '–' एक जगत्श्रेणी में असंख्यात घनांगुल होते हैं।

अर्थात् घनांगुलों का असंख्यात शलाका रूप में स्थिापित कर उन पर घनांगुल देय देकर आपस में गुणा करें जो राशि उत्पन्न हो वह जगत्श्रेणी कहलाती है अथवा जगत्श्रेणी में असंख्यात घनांगुल होते हैं अथवा पल्योपम के अर्द्धच्छेदों में असंख्यात का भाग देकर जो राशि उत्पन्न होती है उसका विरलन कर उसी पर घनांगुल देय देकर आपस में गुणा करने पर जो संख्या उत्पन्न होती है, उतनी प्रदेशों वाली जगत्श्रेणी होती है।

अंक गणना

अनुयोगद्वार सूत्र तथा षट्खण्डागम में पर्याप्त मनुष्य में मिथ्यादृष्टि मनुष्य द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा से कोड़ाकोड़ाकोड़ी से ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी से नीचे अथवा छठवें और सातवें वर्गों के बीच की संख्या बतलाई गई है। यहाँ शून्य का स्थानार्हा पद्धति में प्रयोग किया गया है। भारतीय गणित में ऐसा निरूपण पूर्व के ग्रंथों में अभी अन्यत्र कहीं नहीं दिखा है। बख्शाली हस्तलिपि में 0 प्रतीक का प्रयोग शून्य अथवा अग्राह्यता के लिए हुआ प्रतीत होता है। वीरसेनाचार्य के पूर्व के सूत्रों में कई शैलियों से संख्या का कथन किया गया है। तिलोयपण्णत्ति में प्राय: सभी स्थानों में स्थनार्हा पद्धति का उपयोग है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इसकी संरचना के समय तक दसार्हा संकेतना पूरी तरह उपयोग में आ चुकी थी। तिलोयपण्णत्ति के चतुर्थ अधिकार में अचलात्मक नामक काल की संकेतना दी गई है जो $(84)^{31} \times 10^{90}$ प्रमाण वर्षों के तुल्य होता है।

यह नहीं कहा जा सकता है कि आर्यभट्ट से भी पूर्व वर्गमूल या घनमूल निकालने की रीतियाँ भारतवर्ष में प्रचलित थी परन्तु तिलोय पण्णत्ति तथा षट्खण्डागम में आये हुए उल्लेखों से प्रतीत होता है कि यहाँ ऐसे कथन भी थे – ''जगत्श्रेणी को जगत्श्रेणी के बारहवें वर्गमूल से भाजित करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह वंशा पृथ्वी के नारकियों का प्रमाण होता है।''

यद्यपि यूनान में दशमलव पद्धति का प्रचलन ऐतिहासिक काल में सबसे पूर्व हुआ प्रतीत होता है तथापि मिश्र में उनसे भी पूर्व दसार्हा पद्धति के आधार पर 1,10,100,1000...आदि के लिए चिह्न थे। इसी प्रकार बेबीलोन में भी दशमलव और षाष्ठिक पद्धतियों पर संख्याओं के निरूपण के लिए चिह्न थे।

इन सबकी तुलना में उत्कृष्ट संख्यात गणना द्वारा उत्पन्न करने की रीति जो तिलोय पण्णत्ति में वर्णित है, वह दूसरे ग्रंथों के आधार पर पायथागोरियन युग की प्रतीत होती है। एक और नवीन रीति का वर्णन अत्यंत रोचक है, वह है वर्गण-संवर्गण विधि। इस विधि को शलाका निष्ठापन विधि भी कहते हैं। यदि 2 को तीसरी बार वर्गित-संवर्गित किया जावे तो 256^{256} राशि प्राप्त होती है।

पुन: अर्द्धच्छेदों तथा वर्गशलाकाओं के द्वारा इन संख्या प्रभावों द्वारा प्ररूपित राशियों के अल्पबहुत्व का विश्लेषण किया जाता था। अर्द्धच्छेद आधुनिक $\log_2$ है तथा वर्ग शलाका आधुनिक $\log_2 \log_2$ है।

सपरिवार चन्द्रों के बिम्बों का प्रमाण निकालने में आचार्य वीरसेन स्वामी ने और यतिवृषभाचार्य ने जो प्ररूपण दिया है वह जिस प्रकार हम सरल विधि से आधुनिकता लाकर प्रदर्शित करने में प्रयत्न कर सके हैं वह अति मनोरंजक और ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु है।

आगे श्रेणियों में समान्तर और गुणोत्तर श्रेणियों के योग, विभिन्न रूप से श्रेणियों की संरचना कर, उनके योग निकालकर तथा विभिन्न रूप में अल्पबहुत्व का निरूपण जैनाचार्यों की मौलिक वस्तु प्रतीत होती है।

श्रेढियों को इतने विस्तृत रूप में वर्णन करने का श्रेय जैनाचार्यों को है। यदि तिलोय पण्णत्ती का यह विवरण पूर्वाचार्यों से लिया गया है तो आर्यभट्ट से पूर्व श्रेढि संकलन सूत्रों का होना सिद्ध होता है।

बीज गणित

आचार्य यतिवृषभ के द्वारा जगत्श्रेणी का प्रतीक एक आड़ी रेखा होना तथा उसके घन का रूप में प्ररूपित होना, नानाघाट शिलालेख काल से लेकर कुशन काल अथवा उससे भी बाद के क्षत्रप और आन्ध्र शिलालेख कालीन प्रतीत होता है। बख्शाली हस्तलिपि में रिण के + उपयोग में लाया गया है। + प्रतीक की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मतों को हम प्रस्तुत करते हैं,

तिलोयपण्णत्ती में उपयोग में आये हुए प्राकृत शब्द 'रिण' के आधार पर हम भी अपना सुझाव रख सकते हैं + चिह्न रिण शब्द के रि अक्षर से ब्राह्मी लिपि के अनुसार (I) लिया गया है। इस रिण शब्द को केवल परम्परागत आचार्यों द्वारा प्राप्त काय मार्गणाओं में स्थित जीवों की संख्या प्ररूपण करने तथा उनमें अल्पबहुत्व दिखलाने के लिए प्रतीक निरूपण रूप में लिया गया है। हम यह कह सकते हैं कि रिण शब्द का उपयोग यतिवृषभ कालीन नहीं वरन् उनके पूर्वकाल का है।

रिण शब्द का प्रयोग उस काल का निरूपण करता है जबकि + उपयोग में लाया गया होगा। और इस प्रकार रिण शब्द के उपयोग से, उपयोग में आये हुए अन्य प्रतीकों का काल निर्धारण हो सकता है। स्पष्ट है कि रिण शब्द से + धीरे-धीरे किस प्रकार उपयोग में आने लगा होगा और यदि ऐसा हुआ है तो प्रतीकत्व का उपयोग बख्शाली काल से बहुत पूर्व का होना चाहिए। यह निर्णय करना भाषा विज्ञान शास्त्रियों के लिये हैं।

धवलाकार वीरसेनाचार्य ने भी ऋण के लिए + प्रतीक का उपयोग किया है। बख्शाली हस्तलिपि में भी 0 का उपयोग खाली स्थान अथवा अग्राह्यता के लिये हुआ है। तथापि, शून्य का यह उपयोग खाली स्थान के लिए ही हुआ होगा, यह सम्भव प्रतीत होता है। भिन्न-भिन्न असंख्यात संख्याओं के निरूपण के लिए भिन्न-भिन्न प्रतीक लिए गए हैं।

जैसे – असंख्यात के लिए a, असंख्यात लोक प्रमाण राशि के लिए §

'असंख्यात लोक ऋण एक' के लिए ८ को उपयोग में लाया गया है इत्यादि।

संख्यात के लिए .... प्रतीक उपयोग में आया है।

बख्शाली हस्तलिपि में मू. प्रतीक का उपयोग मूल के लिए हुआ है।

इस प्रकार 6, ∩, ≡ के उपयोग के आधार पर रिण का उपयोग भी तिलोय पण्णत्ती की संरचना से पूर्व का प्रतीत होता है।

रज्जु के लिए र, पल्य के लिए प आदि प्रतीक ग्रहण करना स्वाभाविक है। द्वीन्द्रिय के लिए बीइंदिय शब्द का उपयोग प्राकृत में होता रहा है। सूच्यंगुल के लिए और कहीं कहीं आवली के लिए 2 प्रतीक चुना है – इसका कारण तथा उपयोग में लाये जाने के काल का निर्धारण करना अभीशक्य नहीं है। भिन्नों के लिखने की शैली बख्शाली हस्तलिपि के समान ही है। मिश्र में भी यही शैली प्रचलित थी।

जैसे – $\frac{1}{23}$ को ∩∩||| और $\frac{1}{324}$ को ९९९ ∩∩ ||||

लिखा जाता था। बेबीलोन में भी खड़ी और आड़ी खूँटियों के द्वारा निरूपण होता था। जिस प्रकार द्वि के लिए प्राकृत में बी है, उसी प्रकार यूनानी अक्षर β दो का प्रतीक है। अन्य चिह्न प्राप्त नहीं हुए हैं।

मापिकी या ज्यामिती विधियाँ

तिलोयपण्णत्ती के विवरण से स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने जो भी खोजें की वे परम्परागत ज्ञान को सुलझाने, स्पष्ट करने के लिए ही की है। जम्बूद्वीप आदि द्वीप–समुद्रों के वृत्त रूप क्षेत्रों के क्षेत्रफल, धनुष, जीवा, बाण पार्श्वभुजा तथा उनके अल्पबहुत्वों का प्रमाण निकालने के लिए उन्होंने वृत्त और सरल रेखा पर बहुत कार्य किया। यूनानियों ने भी वृत्त और सरल रेखा पर आधारित अंशदान दिया है। पुन: लोक के चतुरस्र आकार के कारण उन्होंने वेत्रासन के आकार के सांद्रों का छेद विधि से विभिन्न प्रकार के ज्ञात क्षेत्रों में प्राप्त कर घनफल निकाला है, जिनमें वातवलयों से वेष्टित आकाश का घनफल निकालना उनकी पटुता का द्योतक है। क्षेत्रावगाहना के वर्णन के आधार पर उन्होंने बेलनाकार, शंखाकार क्षेत्रों के घनफल भी निकाले हैं। ये विधियाँ भारतीय शैली के आधार पर सूत्रबद्ध निरूपित है। यह सब होते हुए, गोल क्षेत्र के घनफल का निरूपण न होना एक आश्चर्यपूर्ण बात प्रतीत होती है, क्योंकि गोलार्द्ध बिम्बों की अवगाहना तथा चंद्रादि की कलाओं के क्षेत्रफल आदि विषयों की चर्चाओं को भी गणितीय निरूपण प्राप्त होना था। यूनान में गोल के सम्बन्ध में (पायथागोरियन युग से अथवा उसके बाद के सूत्र की) प्ररूपण है, तथा जैनाचार्यों द्वारा उसका उपयोग न करना इस बात का सूचक है कि उन्होंने जो कुछ किया वह उनकी स्वत: की मौलिक प्रतिभा का अंशदान था जिसके बहुत से उदाहरण धवला टीका तथा तिलोय पण्णत्ति में बिखरे पड़े हैं। दृष्टिवाद अंग के आधार पर जम्बूद्वीप की परिधि का उल्लेखित रूप में कथन ही इस बात का सूचक है कि तिलोय पण्णत्ति की संरचना के पूर्व ही, $\sqrt{10}$ का उपयोग π के लिए हो चुका था। वास्तव में यह अत्यंत सूक्ष्म प्रमाण है जहाँ $\pi = \frac{355}{113} = 3.141593$ आदि प्राप्त होता है।

धवला का गणितशास्त्र

1. यह विदित हो चुका है कि भारतवर्ष में गणित, अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदि का अध्ययन अति प्राचीनकाल में किया जाता था। इस बात का भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञों ने गणित शास्त्र में ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थत: अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणित के जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचने का अभ्यास हो गया है कि भारतवर्ष की विशाल जनसंख्या में से केवल हिन्दुओं ने ही गणित का अध्ययन किया और उन्हें ही इस विषय में रुचि थी और भारतवर्षीय जनसंख्या के अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनों ने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानों के इस मत का कारण यह है कि अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञों द्वारा लिखे गये कोई गणित शास्त्र के ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियों के आगम ग्रन्थों के अध्ययन से प्रकट होता है कि गणित शास्त्र का जैनियों में भी खूब आदर था। यथार्थत: गणित और ज्योतिष विद्या का ज्ञान जैन मुनियों की एक मुख्य साधना समझी जाती थी।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियों की गतिणशास्त्र की एक शाखा दक्षिण भारत में थी और इस शाखा का कम से कम एक ग्रंथ महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह उस समय की अन्य उपलब्ध कृतियों की अपेक्षा अनेक बातों में श्रेष्ठ है। महावीराचार्य की रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रंथ सामान्य रूपरेखा में ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और हिन्दू गणितज्ञों के ग्रंथों के समान होते हुए भी विशेष बातों में उनसे पूर्णत: भिन्न है। उदाहरणार्थ - गणितसार संग्रह के प्रश्न प्राय: सभी दूसरे ग्रंथों के प्रश्नों से भिन्न है।

वर्तमान में उपलब्ध गणितशास्त्र संबंधी साहित्य के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि गणित शास्त्र की महत्त्वपूर्ण शाखाएँ पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलवार और संभवत: बनारस, तक्षशिला और कुछ स्थानों में उन्नतिशील थी। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इन शाखाओं में परस्पर क्या संबंध था? फिर भी पता चलता है कि भिन्न-भिन्न शाखाओं से आये हुए ग्रंथों की सामान्य रूपरेखा तो एक सी है, किन्तु विस्तार संबंधी विशेष बातों में उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न-भिन्न शाखाओं में आदान-प्रदान का संबंध था, छात्रगण और विद्वान एक शाखा से दूसरी शाखा में गमन करते थे और एक स्थान में किए गए आविष्कार शीघ्र ही भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रचार ने विविध विज्ञानों और कलाओं के अध्ययन को उत्तेजना दी। सामान्यत: सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य और मुख्यतया बौद्ध व जैन साहित्य बड़ी-बड़ी संख्याओं के उल्लेखों से परिपूर्ण है। बड़ी संख्याओं के प्रयोग ने उन संख्याओं को लिखने के लिए सरल संकेतों की आवश्यकता उत्पन्न की और उसी से दाशमिक क्रम का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशय रूप से सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रम का आविष्कार भारत में ईसवी सन् के प्रारम्भ काल के लगभग हुआ था जब बौद्ध धर्म और जैन धर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया अंक क्रम बड़ा शक्तिशाली सिद्ध हुआ और इसी से गणित शास्त्र की गति प्रदान कर सुल्व सूत्रों में प्राप्त वेदकालीन प्रारंभिक गणित को विकास की ओर बढ़ाया और वराहमिहिर के ग्रंथों में प्राप्त पाँचवीं शताब्दी के सुसम्पन्न गणित शास्त्र में परिवर्तित कर दिया।

धवलान्तर्गत गणित शास्त्र

संख्याएँ और संकेत – धवलाकार दाशमिक क्रम से पूर्णत: परिचित है। इसके प्रमाण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। यहाँ संख्याओं को व्यक्त करने की कुछ पद्धतियों को उपस्थित करते हैं –

(1) 79999998 को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदि में 7, अन्त में 8 और मध्य में छह बार 9 की पुनरावृत्ति है। इसमें जिस पद्धति का उपयोग किया है वह जैन साहित्य में अन्य स्थानों में भी पायी जाती है और गणित सार संग्रह में भी कुछ स्थानों में है। उससे दाशमिक क्रम का सुपरिचय सिद्ध होता है।

(2) 46666664 व्यक्त किया गया है – चौसठ, छह सौ, छ्यासठ हजार, छ्यासठ लाख, चार करोड़। इसमें छोटी संख्या पहले व्यक्त की गई है। (यह संस्कृत साहित्य में प्रचलित साधारण रीति के अनुसार नहीं है। उसी प्रकार यहाँ संकेत क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणत: संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। किन्तु पालि और प्राकृत में सौ का क्रम ही प्राय: प्रयोग में लाया जाता है।)

(3) 22799498 व्यक्त किया गया है – दो करोड़, सत्ताइस लाख, निन्यानबे हजार, चार सौ और अन्ठानवे। इसमें सबसे बड़ी संख्या पहले व्यक्त की गई है।

यहाँ दूसरी व तीसरी पद्धति स्पष्टत: भिन्न-भिन्न स्थानों से लिए गए हैं।

बड़ी संख्याएँ – यह सुविदित है कि जैन साहित्य में बड़ी संख्याएँ बहुतायत से उपयोग में आई है। धवला में भी अनेक तरह की जीव राशियों (द्रव्य प्रमाण) आदि पर तर्क-वितर्क है। निश्चित रूप से लिखी हुई सबसे बड़ी संख्या पर्याप्त मनुष्यों की है। यह संख्या धवला में दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्ग के बीच की अथवा और भी निश्चित कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटि के बीच की कही गई है। यथा –

$(2^2)^6$ और $(2^2)^7$ के बीच की। अथवा और अधिक नियत – $(1,0000000)^5$ और $(10000000)^4$ के बीच की। अथवा सर्वथा निश्चित – $(2^2)^5 \times (2^2)^6$। इन जीवों की संख्या अन्य मतानुसार 79228162514264337593543950336 है।

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है। इसमें भी उतने ही स्थान है जितने कि $(10000000)^4$ में परन्तु है वह उससे बड़ी संख्या। यह संख्या धवलाकार को ज्ञात है और उन्होंने मनुष्य क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि उक्त संख्या के मनुष्य, मनुष्य क्षेत्र में नहीं समा सकते इसलिए उस संख्यावाला मत ठीक नहीं है।

मौलिक प्रक्रियाएँ

धवला में जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना तथा संख्याओं का घात निकालना आदि मौलिक प्रक्रियाओं का कथन उपलब्ध है। ये क्रियाएँ पूर्णांक और भिन्न दोनों के संबंध में कही गई है। धवला में वर्णित घातांक का सिद्धान्त दूसरे गणित ग्रंथों से कुछ कुछ भिन्न है। निश्चयत: यह सिद्धान्त प्राथमिक है और सन् 500 से पूर्व का है। इस सिद्धान्त संबंधी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओं के आधार पर प्रतीत होते हैं – (1) वर्ग, (2) घन, (3) उत्तरोत्तर वर्ग, (4) उत्तरोत्तर घन, (5) किसी संख्या का संख्यातुल्य घात निकालना, (6) वर्गमूल, (7) घनमूल, (8) उत्तरोत्तर वर्गमूल, (9)

उत्तरोत्तर घनमूल आदि। अन्य सब घातांक इन्हीं रूपों में प्रगट किये गये हैं।

उदाहरण : $अ^{3/2}$ को अ के घन का प्रथम वर्गमूल कहा है। $अ^{9}$ को अ का घन का घन कहा है। $(अ^{3})^{3} = अ^{3\times3} = अ^{9}$।

$अ^{6}$ को अ के घन का वर्ग x या वर्ग का घन कहा है। $(अ^{2})^{3} = अ^{2\times3} = अ^{6}$।

अ का प्रथम वर्ग याने $(अ)^{2} = अ^{2}$

अ का द्वितीय वर्ग याने $[(अ)^{2}]^{2} = अ^{2\times2} = अ^{4}$

अ का तृतीय वर्ग याने $(अ^{2})^{3} = अ^{2\times3} = अ^{6}$

अ का न वर्ग याने $= [अ^{2}]^{n}$

उसी प्रकार - अ का प्रथम वर्गमूल याने $= (अ)^{1/2}$

अ का द्वितीय वर्गमूल याने $= [(अ)^{1/2}]^{2}$

अ का तृतीय वर्गमूल याने $= [(अ)^{1/2}]^{3}$

अ का न वाँ वर्गमूल याने $= [(अ)^{1/2}]^{n}$

दुनिया में कोई इतना अमीर नहीं है
कि पुराना वक्त खरीद ले और इतना गरीब भी नहीं
कि बने हुए वक्त को अच्छा ना बना सके।

वर्गित संवर्गित

परिभाषिक शब्द वर्गित-संवर्गित का प्रयोग किसी संख्या का संख्यातुल्य बात करने के अर्थ में किया गया है।

उदाहरण – $न^{न}$ न का वर्गित संवर्गित रूप है।

इस संबंध में धवला में विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रिया का उल्लेख आया है। किसी संख्या का 'विरलन' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्या को एक-एक में अलग करना है।

जैसे – न के विरलन का अर्थ है – 1111 ..... न बार।

'देय' का अर्थ है उपर्युक्त अंकों में प्रत्येक स्थान पर एक की जगह न को रख देना। फिर उस विरलन देय से उपलब्ध संख्याओं को परस्पर गुणा कर देने से उस संख्या का वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्या का प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है।

जैसे – न का प्रथम वर्गित-संवर्गित $न^{न}$

विरलन देय की एक बार पुनः प्रक्रिया करने से अर्थात् $न^{न}$ को लेकर वही विधान फिर करने से द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^{न})^{न^{न}}$ प्राप्त होता है। इसी विधान को पुनः एक बार करने से न का तृतीय वर्गित-संवर्गित

$$\left[\left[(न^{न})^{न^{न}}\right]^{(न^{न})^{न^{न}}} \right]$$ प्राप्त होता है।

धवला में उक्त प्रक्रिया का प्रयोग तीन बार से अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु तृतीय वर्गित-संवर्गित का उल्लेख अनेक बार बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनंत के संबंध में किया गया है। इस प्रक्रिया से कितनी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बात से हो सकता है कि 2 का तृतीय बार वर्गित-संवर्गित रूप 256^{256} हो जाता है।

घातांक सिद्धान्त

वर्गित-संवर्गित के कथन से स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्त से पूर्णतः परिचित थे।

जैसे – (1) $अ^{म} अ^{न} = अ^{म+न}$

(2) $अ^{म}/अ^{न} = अ^{म-न}$

(3) $(अ^{म})^{न} = अ^{मन}$

इन सिद्धान्तों का धवला में अनेक बार प्रयोग किया गया है। एक रोचक उदाहरण है – 2 के 7वें वर्ग में 2 के छठवें वर्ग का भाग देने से 2 का छठवाँ वर्ग प्राप्त होता है।

अर्थात् – $2^{2^7}/2^{2^6} = 2^{2^6}$

मात्र इतना ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को 4 अनुयोगों में निम्न प्रकार विभाजित किया गयाहै–

दिगम्बर परम्परा के अनुसार –

1. प्रथमानुयोग – तीर्थंकरों एवं अन्य महापुरुषों के जीवनचरित्र, पूर्वभवों का विवरण एवं कथा साहित्य।
2. करणानुयोग – लोक का स्वरूप, आकार–प्रकार, कर्म सिद्धान्त एवं गणित विषयक साहित्य।
3. चरणानुयोग – मुनियों एवं श्रावकों की चर्या तथा आचार एवं अन्य साहित्य।
4. द्रव्यानुयोग – आत्मा एवं परमात्मा विषयक दार्शनिक साहित्य, न्याय एवं अध्यात्म ग्रंथ।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार –

1. धर्मकथानुयोग – तीर्थंकरों का जीवन, पूर्व भव एवं धार्मिक कथाओं से संबद्ध साहित्य।
2. चरण–करणानुयोग – आचार एवं गणित विषयक साहित्य।
3. गणितानुयोग – भूगोल–खगोल विषयक साहित्य।
4. द्रव्यानुयोग – न्याय, कर्म एवं दर्शन संबंधी साहित्य।

उक्त विभाजन से स्पष्ट है कि जैन धर्म की दोनों परम्पराओं में गणित को अतिविशिष्ट स्थान दिया गया है। दिगम्बर परम्परा में जहाँ करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग के ग्रंथ गणितज्ञों के लिए रुचिकर है। वहीं श्वेताम्बर परम्परा के विभाजन के अन्तर्गत गणितानुयोग के ग्रंथ उपयोगी हैं।

जैन गणित की जड़ें बहुत गहरी हैं। पौराणिक आख्यानों के अनुसार भगवान ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों ब्राह्मी एवं सुन्दरी को क्रमश: लिपि एवं अंक विद्या की शिक्षा दी। सुन्दरी को दिया गया ज्ञान अंक लिपि (1,2,3...) ही थी। द्वादशांग जिनवाणी के विवेचनों से भी स्पष्ट है कि 11 अंगों तथा 12वें दृष्टिवाद अंग के परिकर्म एवं पूर्व शीर्षक भेदों में विपुल गणितीय ज्ञान निहित था। इस संदर्भ में गणितसार संग्रह का अध्याय प्रथम, शत्रुंजय काव्य आचार्य जिनसेनकृत ''आदिपुराण'' और आचार्य पुष्पदंत कृत ''अपभ्रंश भाषा का महापुराण'' भी दृष्टव्य हैं।

गणित के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 18वीं शताब्दी के अंत में गणित इतिहास का लेखन प्रारम्भ हो गया था, किन्तु जैन धर्म ग्रंथों में निहित गणितीय ज्ञान की ओर किसी गणितज्ञ का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीधर (750 ई. लगभग) द्वारा प्रणीत त्रिशतिका (पाटी गणितसार अथवा गणितसार) का प्रकाशन सुधाकर द्विवेदी द्वारा 1899 में अवश्य किया गया था किन्तु उस समय इसको जैनेत्तर कृति के रूप में प्रकाशित किया गया था।

20वीं सदी के प्रारम्भ में Madras Oriental Manuscript Library से सम्बद्ध एम. रंगाचार्य को इस भंडार से प्राप्त आचार्य महावीर द्वारा रचित गणितीय पाण्डुलिपि गणितसार संग्रह से भारतीय गणित का एक स्वर्णिम पृष्ठ अनावृत हुआ। विश्व समुदाय को इस महत्त्वपूर्ण जैन गणितीय कृति की जानकारी सर्वप्रथम 1908 में डेविड यूजेन स्मिथ के Bibleotheca Mathematica में प्रकाशित आलेख के

माध्यम से हुई तथा 1912 में मद्रास सरकार द्वारा गणितसार संग्रह का एम. रंगाचार्य द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद एवं प्रस्तावना सहित का प्रकाशन किया गया। वस्तुत: इस कृति के प्रकाशन के साथ ही विश्व समुदाय का ध्यान भारतीय गणित की उस परम्परा की ओर आकृष्ट हुआ जिसे सम्प्रति जैन गणित या Jaina School of Mathematics की संज्ञा दी जाती है और इस प्रकार विश्व क्षितिज पर जैन गणित की पुनर्स्थापना हुई।

कर्म प्रकृतियों के आस्रव, बंध, संवर एवं निर्जरा को सम्यक् रूप से समझने, अध्यात्म के गूढ़ विषयों के स्पष्टीकरण, लोक के स्वरुप, उसके आकार-प्रकार, विभिन्न प्रकार की जीव-राशियों की गणना, उनमें परस्पर संबंध आदि को स्पष्ट करने के लिए गणित को एक साधन के रूप में प्रयोग में लाया गया है। यह सत्य है कि 'दीक्षा', 'पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' आदि अनेक धार्मिक अनुष्ठानों की पूर्ति हेतु शुभ मुहूर्त का चयन किया जाता है एवं एतदर्थ ज्योतिषीय गणित का ज्ञान आवश्यक है किन्तु यह केवल एक पक्ष है। दार्शनिक विषयों की व्याख्या में समाहित गणितीय ज्ञान विशेषत: कर्म सिद्धान्त का गणित अधिक परिष्कृत एवं उपयोगी है। जैन आगम में निहित गणितीय सामग्री को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. लौकिक गणित, 2. लोकोत्तर गणित

लौकिक गणित के अंतर्गत स्थानमान पद्धति, अंकों के प्रकार, अंकों के लेखन, विभिन्न प्रकार की मापन पद्धतियाँ, शून्य एवं अंकों पर विभिन्न प्रकार के परिकर्म संकलन, व्यकलन, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, पाटी गणित के विभिन्न व्यवहार, यथा-श्रेणी व्यवहार, मिश्रक व्यवहार, ब्याज आदि के सूत्र, छाया व्यवहार, खात व्यवहार, क्रकचिका व्यवहार, मिश्रक व्यवहार, भिन्नों पर परिकर्म, रेखा गणित, ज्यामिति से संबंद्ध गणित विभिन्न प्रकार की आकृतियों के क्षेत्रफल, पृष्ठ आदि ज्ञात करना, बीज गणित के अंतर्गत सरल, वर्ग, घन एवं उच्चघातीय समीकरणों का सृजन एवं उनका हल, क्रमचय संचय, घातांको के सिद्धान्त, लघु गुणकीय सिद्धांत आदि से संबंद्ध गणित आता है और एतद् विषय सामग्री जैन साहित्य में विपुल परिमाण में अत्यन्त मौलिक रूप से उपलब्ध है।

लोकोत्तर गणित के अंतर्गत राशि (समुच्चय) सिद्धांत, एकैकी संगति, असंख्यात एवं अनंत विषयक गणित, कर्म एवं निकाय सिद्धांत विषयक गणित आता है। इस पक्ष पर अभी कम काम हुआ है किन्तु इस वर्ग की सामग्री अधिक सामायिक एवं गौरवपूर्ण है।

20वीं सदी के अंत तक निरंतर अप्रकाशित जैन साहित्य प्रकाश में आ रहा है और उसके साथ जैन गणित के क्षेत्र में योगदान करने वाले जैनाचार्यों की सूची भी विस्तृत होती जा रही है। यद्यपि विश्व गणित के इतिहास में आज भी आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, श्रीधर, महावीर एवं भास्कर-II ही स्थान पा सकें है किन्तु भारतीय गणित के इतिहास की नवीन प्रकाशित पुस्तकों में आचार्य उमास्वामी, आचार्य वीरसेन एवं आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी को भी स्थान मिलने लगा हैं। निम्नांकित सारणी में उन प्रमुख जैनाचार्यों को

सूचीबद्ध किया जा रहा है। जिनकी कृतियों में गणितीय सामग्री प्रचुरता से उपलब्ध होती है। अंग व उपांग साहित्य के अंतर्गत समवायांग, सूत्र कृतांग, स्थानांग (ठाणं), भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति), अनुयोगद्वार सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, सूर्य प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि में बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध है।

यहाँ सारणी रूप में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों को लेकर 18वीं शताब्दी तक के भारतीय गणितज्ञों को सूचीबद्ध कर रहे हैं। यह सूची जैन गणित पुस्तक से ली गई है जिसके लेखक डॉ. अनुपम जैन है। इसमें भारतीय गणित में जैन गणित के महत्व को समझने में मदद मिलेगी। सुविधा की दृष्टि से जैन परम्परा से सम्बद्ध को चिह्नित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि जैन परम्परा से सम्बद्ध गणितज्ञ/दार्शनिक गणितज्ञों की संख्या 65% से बहुत अधिक है।

क्र.सं.	गणितज्ञ का नाम	काल	ग्रंथ का नाम	ग्रंथ में उपलब्ध विषय वस्तु प्रमुख उपलब्धियाँ एवं टिप्पणी
1.	बौधायन, आपस्तम्ब, मानव आदि (शुल्वसूत्रकार)	800–740 ई.पू. 600–540 ई.पू. 200–140 ई.पू.	शुल्बसूत्र	पाइथागोरस (?) प्रमेय का कथन, अनेक ज्यामितीय आकृतियों की रचना एवं सूत्र π के अनेक मान, $\sqrt{2}$ का दशमलव के 4 स्थान तक शुद्धमान, बौधायन आपस्तम्भ एवं मानव शुल्वसूत्र में $\pi = 3\frac{1}{8}$
2.	पाणिनी	520–460 ई.पू.	अष्टाध्याय या अष्टक	संस्कृत व्याकरण के सूत्रों का निर्माण एवं भावी गणितज्ञों हेतु सूत्रात्मक शैली का विकास
	पिंगल	520–460 ई.पू.	छंद सूत्रम	छंद शास्त्र का विकास एवं उसमें अभाव अर्थ में शून्य का प्रयोग
3.	भद्रबाहु (श्रुतकेवली)*	367 से 290 ई.पू.	सूर्य प्रज्ञप्ति की टीका	अनुपलब्ध
4.	कात्यायन	200–140 ई.पू.	पाणिनी के सूत्रों के वार्तिककार, शुल्बसूत्र की रचना	वेदिकाओं के निर्माण हेतु ज्यामितीय आकृतियों की रचना
5.	आचार्य गुणधर*	प्रथम श.ई.	कषायपाहुड (कषायप्राभृत)	अनेक अधिकारों में विभक्त 233 गाथा सूत्रों से युक्त इसका कषायप्राभृत ग्रन्थ में क्रोध आदि कषायों की राग-द्वेषमयी परिणतियों का विस्तार से वर्णन है। इनके आधार पर सुविकसित कर्म सिद्धान्त के मॉडल बनाये गये है।

6.	आ. धरसेन, पुष्पदंत एवं भूतबलि*	प्रथम श.ई.	षट्खण्डागम एवं जोणिपाहुड़ (धरसेन)	षट्खण्डागम के छः खंड क्रमशः जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध बन्ध सामित्त-विचय, वेयणा, वग्गणा एवं आ. भूतबलि द्वारा रचित महाबन्ध में विभक्त है। इनमें विभिन्न प्रकार की जीव राशियों के समुच्चय के रूप में राशि सिद्धान्त तथा बड़ी संख्याओं के उल्लेख के साथ ही सीमित क्षेत्र में 12वाँ वर्गमूल निकालने का एवं राशि तथा ओघ के नाम से समुच्चय का उल्लेख है। जोणिपाहुड़ (योनिप्राभृत) मंत्र शास्त्र एवं आयुर्वेद का ग्रंथ है।
7.	आ. कुन्दकुन्द*	1 श.ई.	प्रवचनसार, समयसार नियमसार, पंचास्तिकाय, रयणसार, अष्टपाहुड़ आदि	इनके साहित्य में गणितीय न्याय के सर्वप्रथम दर्शन होते हैं। पंचास्तिकाय में काल की सूक्ष्मतम इकाई **समय** एवं क्षेत्र की इकाई **प्रदेश** को परिभाषित किया गया है। पंचास्तिकाय में सप्तभंगी, संख्यात, असंख्यात, अनन्त एवं अनंतानंत की चर्चा है तथा प्रायिकता के सिद्धान्त का मूल भाव निहित है।
8.	स्थविर आर्यरक्षित*	1 श.ई.	अनुयोगद्वार	घातांक के सिद्धांत, $\sqrt{10}$ का दशमलव के 10 स्थान तक सूक्ष्ममान, अनुयोग विभाजन, संख्या सिद्धान्त, शून्य का प्रयोग आदि गणितीय दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।
9.	यवनेश्वर	120–180 ई.	यवनजातक	ज्योतिष विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रीक कृति का संस्कृत अनुवाद
10.	आ. उमास्वामी* (गृद्धपिच्छ)	2 श.ई.	तत्त्वार्थ सूत्र	संस्कृत के सूत्रों में लिखा जैन दर्शन का सूत्र ग्रंथ। इसमें सूत्र रूप में अनेक ऐसे तथ्य हैं जिनको बिना गणितीय (ज्यामितीय) ज्ञान के नहीं लिखा जा सकता है। यह परम्परा में उपलब्ध गणितीय ज्ञान का प्रतीक है।
11.	आ. यतिवृषभ*	176 ई.	कसायपाहुड़ पर चूर्णिसूत्र, तिलोयपण्णत्ती, करण सूत्र (अनुपलब्ध) आदि।	कषायपाहुड़ के चूर्णिसूत्रों के 15 अध्यायों में उपशम एवं क्षपणा का गणितीय पक्ष है। तिलोयपण्णत्ती

				मूलत: गणितीय ग्रंथ न होकर परम्परा के आधार पर त्रिकालवर्ती विश्व रचना को व्यक्त करने वाला 9 अध्यायों में विभक्त ग्रंथ है। इसमें लघुरिक्थ गणित, अर्द्धच्छेद एवं वर्गशलाका के रूप में बहुत सा गणितीय ज्ञान निहित है। वर्गित-संवर्गित की रीति का प्रयोग, श्रेणी व्यवहार एवं संख्याओं के भेद एवं शून्य का गणितीय रूप में सफल प्रयोग दृष्टव्य है।
12.	आ. समन्तभद्र*	2 सरी श.ई.	आप्तमीमांसा टीका, रत्नकरंड श्रावकाचार गंधहस्ति महाभाष्य अप्राप्य	प्रायिकता के सिद्धान्त के मूल तत्त्व, अवक्तव्यता, अनुयोग विभाजन आदि।
13.	आ. शिवशर्म*	2 सरी श.ई.	कर्मप्रकृति	कर्म सिद्धांत के गणित के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण।
14.	-	3-4 थी श.ई.	वक्षाली हस्तलिपि	पाटीगणित विषयक अपूर्ण कृति। लेखक अज्ञात
15.	वाचक उमास्वाति*	4-5वीं. श.ई.	तत्वार्थधिगमसूत्रभाष्य तथा जम्बूद्वीपसमास	इसमें क्षेत्र गणित के महत्त्वपूर्ण सूत्रों की जानकारी एवं उद्धरणों को समाहित किया गया है। भाष्य के अध्याय 2 में भिन्नों के अपवर्तन, गुणा, भाग, जोड़ आदि की चर्चा है। इस ग्रंथ में गणित की 6 विविध मापों-मान, उन्मान, अवमान,गणितमान, प्रतिमान तथा तत्प्रतिमान का विवरण अंक स्थानों की आगम ग्रंथों से भिन्न 9 पदों की सूची उपलब्ध है। वर्गमूल निकालने का नियम भी दिया गया है।
16.	आ. सर्वनन्दि*	458 ई.	लोयविभाग (प्राकृत)	वर्तमान में अनुपलब्ध किन्तु संस्कृत भाषा में आ. सिंहसूरि द्वारा भाषान्तरित लोकविभाग उपलब्ध है। लोयविभाग में शून्य का गणितीय संदर्भ में प्रयोग George Ifrah द्वारा उद्धृत।
17.	आर्यभट्ट	476-550 ई.	आर्यभट्टीय (499 ई.) एवं महाआर्य सिद्धान्त (आर्यभट सिद्धान्त) (अनुपलब्ध)	प्राचीन भारत में π का सर्वाधिक सन्निकट मान 3.1416 प्राप्त करना अक्षर संख्या पद्धति का विकास प्राकृतिक संख्याओं के योग का

				सामान्य सूत्र $\sum n=\frac{n(n+1)}{2}$ प्राप्त करना। सरल समीकरण by=ax+c, जहाँ a,b,c पूर्णांक है, का हल ज्ञात करना।
18.	निर्युक्तिकार भद्रबाहु या भद्रबाहु–II*	5–6 ठी श.ई.	सूर्यप्रज्ञप्ति पर निर्युक्ति एवं आवश्यक निर्युक्ति भद्रबाहुसंहिता आदि	जिनभद्रगणि श्रमाश्रमण द्वारा बृहत् संग्रहणी भाष्य में आवश्यक निर्युक्ति से शून्य की द्योतक 'थिन्नुगा हार.......' गाथा उद्धृत।
19.	आ. पादलिप्त सूरि*	5 वीं. श.ई.	ज्योतिषकरण्डक पर टीका	ज्योतिर्विज्ञान की कृति, कालमान की सबसे बड़ी सूची ज्योतिषकरण्डक में।
20.	आ. पूज्यपाद (देवनन्दि)*	539 ई. अथवा इससे पूर्व	सर्वार्थसिद्धि टीका आदि	यह कृति आ. उमास्वामी कृत तत्त्वार्थ सूत्र की प्रथम टीका है। जिसमें लोक रचना, पुद्गल आदि के विवेचन के सन्दर्भ में व्यापक रूप से गणितीय सामग्री पल्लवित हुई है। इसमें कालमान, क्षेत्रमान आदि की सारणियाँ भी उपलब्ध हैं।
21.	आ. मस्करि, पूरण, पुतन एवं पुद्गल	600 ई. से पूर्व	गणितीय ग्रंथ (अनुपलब्ध)	भास्कर–I द्वारा उक्त गणितज्ञों द्वारा रचित विशाल ग्रंथों (ज्यामितीय) का उल्लेख, वर्तमान में अनुपलब्ध।
22.	वराहमिहिर	505–587 ई.	पंचसिद्धान्तिका	ज्या, कोज्या, वयुज्या में परस्पर संबंध स्थापित करना एवं मान ज्ञात करना। आधुनिक शब्दावली में $Sin^2x=1-cos^2-1\ \frac{1-cos2x}{2}\ -sin^2x$ एवं $sinx-cos\left(\frac{n}{2}-x\right)$ के आविष्कार का प्रयास।
22B.	विरहांक	6–8वी. श.ई.	पिंगल के छंदशास्त्र पर आधारित वृत्तजात समुच्चय	फिबोनाची अनुक्रम का प्रस्ताव करने वाले गोपाल (12वी. श.ई.) ने वृत्तजात समुच्च्य पर टीका लिखी।
23.	भास्कर–I	600–680 ई.	आर्यभट्टीय भाष्य महाभास्करीय एवं लघुभास्करीय	प्रथम घात के अनिर्धार्य समीकरण का हल ज्ञात करना। जैन परम्परा के ग्रंथों के अनेक उद्धरण। Sin के फल का 99% शुद्धता से मान ज्ञात करना।
24.	भाष्यकार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण*	609 ई.	विशेषावश्यक भाष्य, बृहत्क्षेत्रसमास, बृहत्संग्रहणी,	बृहत्क्षेत्र समास में ज्यामिति के अनेक सूत्र एवं शून्य का प्रयोग उपलब्ध है। इसमें संख्याओं को सूचित करने के

			बृहत्कल्पभाष्य विशेषणवती, अनुयोग चूर्णि आदि	लिये बांए ओर से दांए और का क्रम लिया गया है। जबकि उस काल में सामान्यतः दाहिनी ओर से बांई ओर के क्रम में शब्दांकों का प्रयोग होता था। विशेषावश्यक भाष्य में ध्वनि तथा ज्यामिति के सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक चर्चा है। इसमें भी 2 प्राचीन गाथायें उद्धृत है।
25.	ब्रह्मगुप्त	628 ई. (598–665 ई.)	ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, 628 ई. एवं खण्डखाद्यक (655 ई.)	4 अध्यायों की कृति ब्रह्मस्फुट सिद्धांत में 2 अध्याय गणिताध्य एवं कुट्टकाध्याय महत्त्वपूर्ण हैं। चक्रीय त्रिभुज, चतुर्भुज से सम्बद्ध नियम, शून्य एवं ऋणात्मक संख्याओं पर संक्रिया, ज्यासारिणी का निर्माण, प्रथम एवं द्वितीय घात के अनिर्धार्य समीकरणों $ax^2 \pm c = y^2$ का हल एवं $\sum n^2 = \frac{n(n+1)(2n+1)}{6}$ एवं $\sum n^3 = \frac{n(n+1)^2}{2}$
26.	आ. अकलंक*	620–680 ई.	तत्त्वार्थराजवार्तिक एवं न्याय के अन्य ग्रंथ	इनकी कृतियों में से मात्र तत्त्वार्थ राजवार्तिक गणितीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इनमें विभिन्न प्रकार की सूचियाँ एवं मापन की इकाईयों का मान उपलब्ध है तथा इसके चतुर्थ अध्ययन में देवों की गतियों का वर्णन है।
27.	जिनदासगणि*	7वीं श.ई.	नन्दि, निशीथ, अनुयोगद्वार एवं सूत्रकृतांग की चूर्णियाँ	चूर्णियों में मूल ग्रंथ की विस्तृत विवेचना।
28.	चन्द्रासी (चन्द्रर्षि) महत्तर*	8वीं श.ई.	पंचसंग्रह	कर्म सिद्धांत का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ किन्तु अध्ययन शेष है।
29.	पद्मनाभ	8वीं श.	बीजगणित (अनुपलब्ध)	भास्कर–II द्वारा उद्धृत
30.	हरिभद्र (याकिनी–महत्तरा सुनु)*	8वीं श.ई. (757–827 ई.)	जम्बूदीवसंगाहणी, अनुयोगद्वार, जीवाभिगम एवं प्रज्ञापना की टीका	विश्लेषण शेष

31.	आचार्य जिनसेन-I*	783 ई.	हरिवंशपुराण एवं लोकानुयोग (अप्रकाशित)	व्रतों के विवरण में भंग का प्रयोग, ज्यामितीय ज्ञान, कालमान की सूची आदि, लोकानुयोग में निहित ज्यामितीय ज्ञान।
32.	आचार्य विद्यानन्द*	775-840 ई.	तत्त्वार्थ सूत्र पर तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक टीका	तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्रों की व्याख्या की गई है।
33.	लल्ल	720-768 ई.	शिष्याधिवृद्धि पाटीगणित (अनु.) सिद्धांत दीपक (अनु.) ज्योतिषरत्नकोश	गणित का ज्योतिर्विज्ञान में उपयोग बताने वाली।
34.	आचार्य श्रीधर*	8वीं.श.(750ई.)	पाटीगणित, पाटीगणितसार, (त्रिशतिका), ज्योतिर्ज्ञानविधि, बीजगणित (अनुपलब्ध) आदि	वृत्तखंड का क्षेत्रफल एवं गोले का आयतन, ब्याज की मासिक किश्त की विधि एवं गति संबंधी प्रश्न, हरसादृशीकरण, संचय का सामान्य सूत्र, अद्यतन उपेक्षित ज्योतिर्ज्ञानविधि (केवल मूलपाठ प्रकाशित)
35.	गोविन्दस्वामिन	800-850 ई.	महाभास्करीय का भाष्य एवं गोविन्द कृति (अनु.)	तालिका को दर्शाने वाले उदाहरण
36.	आ. वीरसेन*	816 ई.	धवला टीका, जयधवला टीका का प्रारम्भिक भाग, सिद्धभूपद्धति टीका	धवला (72000 श्लोकों में) षट्खंडागम की एकमात्र उपलब्ध टीका है। वितत भिन्न, लघुरिक्त गणित, खण्डित विधि, अनन्त, समुच्चय सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन करने वाली अनेक मौलिकताओं से परिपूर्ण विशाल टीका है। गणितीय दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
37.	आ. जिनसेन-II*	837 ई.	जयधवला टीका एवं महापुराण (आदिपुराण) का एक भाग	कषायपाहुड की 40000 श्लोकों वाली वीरसेन द्वारा प्रारम्भ जयधवला टीका को पूर्ण किया। महापुराण के प्रथम खण्ड आदिपुराण के भी अधिकांश भाग को लिखा।
38.	महावीराचार्य या महावीर*	850 ई.	गणितसार संग्रह	गणितसार संग्रह के विभिन्न 9 (मूल में 8) अध्यायों के अंतर्गत उस काल के लौकिक गणित को व्यवस्थित किया गया है। असमान हर वाली भिन्नों को जोड़ने हेतु निरुद्ध का नियम, भंग का

				सामान्य सूत्र, अनेक विशिष्ट आकृतियों के क्षेत्रफल निकालने के नियमों जन्य व्यवहार का गणितसार संग्रह में उल्लेख किया गया। 24 पदों की दशगुणोत्तर संख्याओं की सूची।
39.	स्कन्दसेन	9 वीं. ई.पू.	केवल सन्दर्भ, कोई कृति उपलब्ध नहीं	–
40.	पृथुदक स्वामी	830–890 ई.	ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की टीका	–
41.	शंकर नारायन	840–900 ई.	लघु भास्करीय विवरण	भास्कर-1 कृत लघु भास्करीय की टीका
42.	आ. कुमुदेन्दु*	860–880 ई.	सिरि भूवलय	यह अंकों में लिखा गया 9 खण्डों का एकमात्र कन्नड़ काव्य ग्रंथ है। क्रमचय एवं संचय के सिद्धान्तों द्वारा ग्रंथ में 18 भाषाओं को 27x27 आकार की आव्यूहों में व्यवस्थित किया गया है। प्रथम खण्ड मंगल प्राभृत (उपलब्ध) के 59 अध्याय डिकोड हो चुके हैं किन्तु उनका गणितीय विश्लेषण शेष। शेष खण्ड अद्यतन अप्राप्त।
43.	आ. शीलांक*	9वीं श.ई.	सूत्रकृतांग आदि 11 अंगों की विस्तृत टीकायें	सूत्रकृतांग की टीका के निर्माण में भंग के विषय को स्पष्ट करते हुए किसी प्राचीन संस्कृत एवं अर्द्धमागधी भाषा के गणितीय ग्रंथों से 3 गाथाओं को उद्धृत किया है। ये ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।
44.	आर्यभट-II	920ई.-1000ई.	महासिद्धान्त	गणित की तीन तत्कालीन शाखाओं पाटी, कुट्टक एवं बीज का स्पष्ट एवं सर्वप्रथम उल्लेख।
45.	विजयनन्दि*	940–1110 ई.	करणतिलक	ज्योतिर्विज्ञान पर लिखी मूल पुस्तक अनुपलब्ध किन्तु अरबी अनुवाद का अल-बिरूनी द्वारा उल्लेख।
46.	आ. नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती*	981 ई.	त्रिलोकसार, गोम्मटसार (जीवकाण्ड), गोम्मटसार (कर्मकाण्ड), लब्धिसार एवं क्षपणासार	धवला के द्रव्यप्रमाणानुगम एवं क्षेत्र प्रमाणानुगम सहित षट्खण्डागम के समस्त 6 खण्डों का अध्ययन कर इन ग्रन्थों में निहित सामग्री तथा उसके

				गणितीय पक्ष को सरलता से समझने हेतु संक्षेप में वर्णन करने के लिये इन ग्रंथों की रचना की गई। गोम्मटसार में क्रमचय-संचय तथा त्रिलोकसार में सर्वप्रथम शंख के आकार की आकृति का आयतन निकालने का प्रयास किया गया है। कर्म सिद्धांत के गणित हेतु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। त्रिलोकसार में 14 धाराओं (Sequences) में अनन्त का प्रयोग।
47.	भट्टोत्पल (उत्पल)	10वीं श.ई.	ब्रह्मगुप्त के खण्ड खाद्यक तथा वराहमिहिर की वृहत्संहिता एवं वृहज्जातक पर टीका	-
48.	आ. पद्मनंदि-I*	977-1043 ई.	जम्बूदीवपण्णत्ति संगहो, (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति संग्रह) आदि	खगोलीय ग्रन्थ होने की वजह से इसमें मुख्यत: ज्यामिति का विषय है।
49.	आ. अमितगति-II*	10-11 वीं.श.ई.	सुभाषितरत्नसंदोह, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सार्द्धद्वयप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति	भूगोल विषयक सामग्री के साथ ज्यामितीय ज्ञान।
50.	श्रीपति	1039 ई. (1019-1066ई.)	पाटीगणित (इस पर सिंहतिलकसूरि ने गणित तिलक टीका लिखी), बीजगणित (अनु.), सिद्धांत शेखर, धिकोटिकरण, ज्योतिष एवं 5 अन्य कृतियां।	पाटीगणित अंकगणित को एवं सिद्धांत शेखर ज्योतिर्विज्ञान को समर्पित।
51.	आ श्रीधर*	1049 ई.	जातक तिलक	गणितज्ञ श्रीधर से भिन्न, ज्योतिष पर प्रथम जैन कृति के रचयिता, जैन ब्राह्मण।
52.	पावलूरिमल्लिकार्जुन (मल्लन)	11 वीं श.ई.	सार संग्रह गणितामु (पावलूरि गणितमु)	महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह का तेलुगू अनुवाद एवं टीका
53.	आ. अभयदेव सूरि*	1015-1078 ई.	आचारांग एवं सूत्रकृतांग को छोड़कर शेष 9 अंगों पर टीकायें	भगवती सूत्र की टीका में गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत को बताया गया है।

54.	माधवचन्द्र त्रैविद्य*	10–11वीं श.ई.	त्रिलोकसार, लब्धिसार एवं क्षपणासार की टीका, षट्‌त्रिंशतिका (षट्‌त्रिंशिका) (अप्रकाशित)	षट्‌त्रिंशतिका (षट्‌त्रिंशिका) की रचना महावीराचार्य कृत गणितसार-संग्रह में वर्गसंकलितानयन सूत्र आदि 13 सूत्रों के साथ अतिरिक्त अध्याय में अन्य सामग्री को जोड़कर की गई है।
55.	ब्रह्मदेव	1060–1130 ई.	करणप्रकाश	आर्यभटीय पर टीका
56.	आ. सिंहसूरि*	11 वीं श.ई.	लोक विभाग (संस्कृत)	प्राचीन प्राकृत लोयविभाग (458 ई.) का संस्कृत भाषान्तर कर तैयार इस कृति में अनेक पारम्परिक ज्यामितीय सूत्र है।
57.	आ. हेमचन्द्रसूरि* (मलधारी)	1107 ई.	आवश्यक टिप्पण, शतक विवरण, अनुयोगद्वारवृत्ति विशेषावश्यकभाष्य बृहद्‌वृत्ति	अनुयोगद्वार सूत्र में उपलब्ध घातांकों के सिद्धान्तों, संख्या विभाजन, संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त के भेदोपभेद, शून्य के संबंध में विस्तृत चर्चा की गई है।
58.	आ. मलयगिरि*	1080–1172 ई.	सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरण्डक बृहत्‌क्षेत्रसमास एवं कर्म प्रकृति आदि 24 ग्रंथों पर टीकायें।	महत्त्वपूर्ण गणितीय सामग्री। सूर्यप्रज्ञप्ति आपकी टीका के माध्यम से ही उपलब्ध है।
59.	आ. हेमचन्द्र* (कलिकालसर्वज्ञ)	1088–1173 ई.	सिद्धहेम व्याकरण त्रिषष्ठिशलाका पुरुष अभिधानचिन्तामणि कोश, छंदोनुशासन, योगशास्त्र आदि	छंदोनुशासन में विरहांक (600–800 ई.) के अनुक्रम में Fibonacci (1202 ई.) से पूर्व तथाकथित Fibonacci Sequence का सूत्र $F_n = F_{(n-1)} + F_{(n-2)}$ दिया। छंदोनुशासन क्रमचय-संचय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण।
60.	भास्कर-II	1150 ई.	सिद्धान्तशिरोमणि में लीलावती, बीजगणित, गोलाध्याय, ग्रहगणित ये चार भाग हैं। वासनाभाष्य एवं करणकुतूहल अन्य कृतियां	समीकरण $ax^2+bx+c=y^2$ का समान्य हल, ज्या, कोज्या के विभिन्न संबंध एवं उनके मान, ज्यासारणी का विकास, अवकलन के विचार को व्यवस्थित करना, समाकलन के विकास की पृष्ठभूमि, लीलावती देश की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक फलत: अनेक टीकाओं का सृजन।

61.	राजादित्य*	1190-1215 ई.	1. व्यवहारगणित (प्रकाशित) 2. क्षेत्रगणित (कन्नड़ में प्रकाशित) 3. व्यवहाररत्न (अप्रकाशित) 4. लीलावती (प्रकाशित) 5. चित्रसहुगे, (अप्रकाशित) 6. जैन गणित सूत्रोदाहरण, (जैन गणित सूत्र अथवा जैन गणित टीकोदाहरण) (अप्रकाशित) 7. मुत्तिन चिप्पिन सूत्रगलु आदि (अप्रकाशित)	1. व्यवहारगणित में सूत्रों एवं उद्धरणों की अत्यंत ललित पद्यों में अभिव्यक्ति की गई है। व्याख्या गद्य में है। ग्रंथ में कुल आठ अधिकार है। इसी ग्रंथ में स्थानमान की सर्वाधिक लम्बी 40 पदों की नामावली दी गई है। 2. क्षेत्रगणित ग्रंथ में खेती की माप एवं रेखागणित का विषय प्रमुख है। 3. व्यवहार रत्न में कुल 5 अधिकार है। 4. यह लीलावती ग्रंथ पद्य में हैं। 5. चित्रसहुगे में प्रश्न उत्तर रूप में मनोरंजक प्रश्नों का विवेचन है। 6. जैन गणित सूत्रोदाहरण वस्तुत: महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह के एक अंश का कन्नड़ अनुवाद है। 7. मुत्तिन चिप्पिन सूत्रगलु में रत्न एवं मोतियों से संबंध प्रश्न हैं।
62.	चन्द्रसूरि*	12वीं. श.ई.	वृहत्संग्रहणी, अंगुलसप्तति (प्राकृत)	अंगुलसप्तति में प्राकृत की 700 गाथायें, अद्यतन अप्रकाशित।
63.	देवानन्दा*	12वीं. श.ई.	क्षेत्रसमास	-
64.	श्रीचन्द्रसूरि*	12वीं. श.ई.	खेत्त समास, श्री चन्द्रीय संग्रहणी संखित्त संग्रहणी	शीलभद्रसूरि के शिष्य।
65.	हरिभद्र*	12वीं. श.ई.	क्षेत्रसमास पर टीकायें, बंधसामित्त विचय संदृष्टि	जिनपति के शिष्य।
66.	पद्मप्रभसूरि*	1237 ई.	भुवनदीपक	170 श्लोकों की महत्त्वपूर्ण ज्योतिर्विज्ञान विषयक कृति।
67.	अनन्तपाल*	13वीं. श.ई. (1261 ई.)	पाटीगणित एवं करणभावना	दोनों कृतियाँ अनुपलब्ध किन्तु सृजन के पुष्ट प्रमाण।
68.	सिंहतिलकसूरि*	13वीं. श.ई.	श्रीपति कृत पाटीगणित पर गणिततिलक टीका भुवन दीपक वृत्ति	गणिततिलक पर श्रीधर का व्यापक प्रभाव है। पाटीगणित (या गणित तिलक) (श्रीपति कृत) पर प्रथम की एकमात्र कृति।

69.	ठक्कुर फेरू*	1265-1330 ई.	गणितसार कौमुदी (अपभ्रंश)	इसमें गणित की 311 गाथायें एवं चौपाई हैं। अपभ्रंश में लिखित गणित की एकमात्र कृति।
70.	देवेन्द्रसूरि*	13वीं. श.ई.	नव्य कर्मग्रंथ सटीक	-
71.	नरचन्द्र सूरि*	13वीं. श.ई.	ज्योतिषसार	-
72.	पं. वामदेव*	14वीं. श.ई.	त्रैलोक्यदीपक (अप्रकाशित)	परम्परा का ज्यामितीय ज्ञान।
73.	नारायण पण्डित	1356 ई. (1340-1400 ई.)	गणित कौमुदी, बीजगणितावतंस	परिमेय संख्याओं के वर्गमूल निकालने की रीति, समाकलन श्रेणियों का विकास, गोलीय त्रिकोणमिति के क्षेत्र में विशेष योगदान।
74.	महेन्द्रसूरि*	1370 ई.	यंत्रराज	192 गाथाओं की कृति का आधार फारसी में रचित ग्रंथ।
75.	मलयेन्दुसूरि*	1378 ई.	यंत्रराज की टीका एवं एक स्वतंत्र कृति	-
76.	केशववर्णी*	14वीं. श.ई.	गोम्मटसार की कर्नाटक वृत्ति	कर्म सिद्धान्त के गणित की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि अर्थसंदृष्टि एवं बीजीय संकेतों का प्रारम्भ आपने ही किया है।
77.	सोमतिलक सूरि*	14वीं. श.ई.	बृहत्क्षेत्रसमास	-
78.	रत्नशेखर सूरि*	14वीं. श.ई. (1440 ई.)	लघुक्षेत्रसमास	-
79.	माधव	1350-1425 ई.	वेण्वारोह	प्रमुख केरलीय गणितज्ञ, अनन्त श्रेणियों का अध्ययन, π का शुद्धमान।
80.	परमेश्वर	1370-1460 ई.	प्रमुख गणितीय एवं ज्योतिर्विज्ञान की कृतियों पर टीका	प्रमुख केरलीय गणितज्ञ
81.	गंगाधर	1434 ई.	वेण्वारोह की टीका	-
82.	वल्लाचार्य (वल्ल)*	1475 ई.	गणित संग्रह (कन्नड़)	अप्रकाशित
83.	नीलकण्ठ सोमायाजी	1444-1544 ई.	आर्यभटीय भाष्यम्, तंत्र संग्रह, गोलासार, चन्द्रछाया, गणित, चन्द्रछाया, गणित टीका	केरलीय ब्राह्मण विद्वान अपने काल के बहुश्रुत गणितज्ञ।
84.	चित्रभानु	1475-1550 ई.	करणामृत	4 अध्यायों की कृति।

85.	ज्ञानराज	1503 ई.	सिद्धान्त सुन्दर, सिद्धान्त सुन्दर बीज	भास्कराचार्य-II के बीजगणित के अनुक्रम में सिद्धांत सुंदरबीज का लेखन।
86.	शंकर वारियार	1500-1560 ई.	लघुविवृत्ति (तंत्रसंग्रह की टीका) क्रिया कर्मकारी	मलयालम कृति, नारायण कृत कर्म दीपक से अधिक विस्तृत।
87.	हर्षकुलगणि*	16 वीं. श.ई.	सूत्रकृतांग पर टीका	-
88.	मेघरत्नमुनि*	16 वीं. श.ई.	उस्तरलाव यंत्र स्वयं की टीका सहित	-
89.	प्रभाचन्द्र मुनि*	16 वीं. श.ई.	पंचसंग्रह पर टीका	-
90.	ज्येष्ठदेव	1500-1575 ई.	युक्तिभाष (मलयालम कृति)	तंत्र संग्रह पर मलयालम टीका
91.	-	-	करण पद्धति	कृति का काल एवं लेखक अज्ञात
92.	अच्युत पिषारति	1550-1621 ई.	उपराग क्रियाकर्म	-
93.	नारायण	1588 ई.	खण्डित बीजगणित	-
94.	भट्टारक नेमिचन्द्र ज्ञानभूषण*	16वीं श.ई.	गोम्मटसारादि ग्रंथों पर जीवतत्त्व प्रदीपिका भाषा टीका।	-
95.	मुनीश्वर (विश्वरूप)	1603 ई.	लीलावती पर टीका एवं अन्य अनेक कृतियाँ	-
96.	कमलाकर	1616-1700 ई.	सिद्धान्त तत्त्व विवेक	भास्कर-II एवं मुनीश्वर के सिद्धांतों से भिन्नता। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण
97.	चन्द्रम*	1650 ई.	गणितसार (गणित विलास) (कन्नड़), लोकस्वरूप	अप्रकाशित पाण्डुलिपि।
98.	कवि खड़गसेन*	1656 ई.	त्रिलोकदर्पण भाषा (अप्रकाशित)	ज्यामितीय ज्ञान हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि में लिखी कृति।
99.	महिमोदय*	1665 ई. लगभग	गणितसाठसौ, पंचांग नयन विधि, ज्योतिष रत्नाकर, षट्पंचाशिका वृत्ति, खेट सिद्धि, जन्मपत्री विधि आदि	गणितसाठसौ कृति महत्वपूर्ण है। अद्यतन अप्रकाशित है। महिमोदय ज्योतिर्विद प्रतीत होते हैं।
100.	हेमराज गोदीका*	1673 ई.	गणितसार	यह पाण्डुलिपि हिन्दी भाषा, देवनागरी लिपि एवं सरल शैली में निबद्ध गणितीय कृति है। इसमें 88 पद्यों में संख्याओं के भेद समझाये गये हैं।

101.	कवि द्यानतराय	1676–1728 ई.	चर्चा शतक, द्यानत विलाप आदि	लोक के स्वरूप, कर्म प्रकृतियों जिनवाणी के आकार आदि की चर्चा से दीप संख्याओं, यंत्र प्रयोग
102.	आनन्दमुनि*	1674 ई.	गणितसार (अप्रकाशित)	आनन्द कवि नाम भी मिलता है।
103.	बुलाकीचन्द्र*	1680 ई.	वचनकोश	संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त का हिन्दी भाषा में वर्णन।
104.	पण्डित जगन्नाथ	1657–1750 ई.	तहरीर-उ-उकिदास का अनुवाद, रेखागणित सिद्धांत स्मृति एवं सिद्धांत सार्वभौमिक	राजा जयसिंह के संरक्षण में रहे। अरबी, फारसी एवं संस्कृत के विद्वान। Euclid एवं Ptolemy की कृतियों के अनुवादक
105.	तेजसिंहसूरि*	17 वीं. श.ई.	इष्टांकपंचविंशतिका, दृष्टांत शतक, जिन स्तवन	इसमें विभिन्न तीर्थंकरों के जन्म समय का इष्टांक निकालने का नियम दिया गया है। महावीर के जन्म समय का उल्लेख (?)
106.	भट्टारक सुमतिकीर्ति*	17 वीं. श.ई.	गणितसार संग्रह की अप्रकाशित टीका	अप्रकाशित टीका की छाया प्रति लेखक के पास उपलब्ध।
107.	दैवज्ञवल्लभ*	1700 ई.	गणितसार संग्रह की बालबोध शीर्षक टीका	–
108.	बालवैद्य चेलुव*	1715 ई.	कन्नड़ लीलावती	–
109.	पं. टोडरमल*	1720–1767 ई.	गोम्मटसार जीवकाण्ड टीका, गोम्मटसार, कर्मकाण्ड टीका लब्धिसार, क्षपणासार टीका, त्रिलोकसार टीका आत्मानुशासन टीका अर्थ संदृष्टि अधिकार	सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका एवं अर्थसंदृष्टि अधिकारों में संदृष्टियाँ, गणितीय संकेतन प्रणाली महत्त्वपूर्ण।
110.	उपाध्याय विनय विजयगणी*	1604–1681 ई.	लोकप्रकाश (प्रकाशित)	लोकरचना बताने वाला श्वेताम्बर जैन परम्परा का विस्तृत ग्रंथ।
111.	उपाध्याय यशोविजय*	18 वीं. श.ई.	कर्मप्रकृति की टीका	–

वाजसनेयी एवं तैत्तरीय संहिता में महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है। बृहत्तर भारत के ही एक अंग पेशावर (वर्तमान पाकिस्तान) से प्राप्त बक्षाली हस्तलिपि किसी भारतीय गणितज्ञ की ही कृति है। लालचंद, मथुरादास आनन्द कवि आदि ने लीलावती नामक अनेक कृतियाँ लिखी जो भास्कर कृत लीलावती पर आधारित हैं या उनकी टीका हैं अभी स्पष्ट नहीं है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक ज्ञात-अज्ञात भारतीय ऋषियों-मुनियों-विद्वानों ने गणितीय विकास में योगदान दिया है किन्तु उनकी कृतियाँ लुप्त हो जाने, वर्तमान में उपलब्ध किन्तु प्रशस्ति विहीन पाण्डुलिपियों के कर्तृत्व का निर्धारण न होने के कारण हम उनके नाम से भी परिचित नहीं है। पूर्ववर्ती प्राचीन भारतीय गणितज्ञों के सम्मुख उनकी कृतियाँ अवश्य उपलब्ध रही फलत: उन्होंने उनका आदरपूर्वक उल्लेख किया है। कहीं-कहीं उद्धरण भी दिये हैं। यदि उन सबको सम्मिलित करने का प्रयास किया जाये तो यह सूची निश्चयेन अधिक लम्बी होगी।

वररुचि कात्यायन ने पाणिनि व्याकरण के वार्तिकों में अपनी गणितीय मेधा का प्रदर्शन किया है। वररुचि नाम के अनेक विद्वान हुए है उनकी कृतियों का गणितीय मूल्यांकन अभी शेष है।

जैन गणित एवं महावीराचार्य

जैनधर्म/दर्शन के प्राचीन ग्रंथों में विषयों के विवेचन में गणित का साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। फलत: इसमें समकालीन गणित विषय का विपुल ज्ञान उपलब्ध है। कालान्तर में इस ज्ञान को सरल एवं बोधगम्य बनाने एवं जिज्ञासुओं को प्रशिक्षित करने हेतु स्वतंत्र गणितीय ग्रंथों का भी सृजन किया गया। जैन परम्परा में उपलब्ध इस प्रकार के समस्त ज्ञान को ही जैन गणित कहा जाता है। यह गणित इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा है एवं इसके अध्ययन के बिना भारतीय गणित या भारतीय ज्ञान परम्परा का अध्ययन अपूर्ण ही रहेगा। मात्र इतना ही नहीं यह करणानुयोग/द्रव्यानुयोग का अविभाज्य अंग होने के कारण जैन साहित्य के अध्ययन हेतु भी अपरिहार्य रूप से आवश्यक है। पूर्वाचार्यों ने लिखा है-

बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन बिना न हि॥ (ग.सा.सं.-1/16)

अर्थात् व्यर्थ के प्रलापों से क्या लाभ है? जो कुछ तीनों लोको में चर एवं अचर (गतिशील एवं स्थित) वस्तुएँ है उनका अस्तित्व गणित से विलग नहीं अर्थात् उनको जानना संभव नहीं।

आचार्य महावीर या महावीराचार्य दक्षिण भारत के प्रसिद्ध राजकूट वंशीय नृपतुंग अमोघ वर्ष-1 के समकालीन (814-877 ई.) एवं आचार्य वीरसेन आदि महान दिगम्बर जैनाचार्यों की परम्परा में दीक्षित गणितज्ञ आचार्य थे। आपकी एक मात्र उपलब्ध कृति ''गणितसार संग्रह'' है जिसको 1912 में एम. रंगाचार्य द्वारा अंग्रेजी अनुवाद एवं विस्तृत टिप्पण सहित मद्रास सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है। 1963 ई. प्रो. एल.सी. जैन द्वारा हिन्दी अनुवाद सोलापुर से, 2000 में प्रो. पद्मावथम्माकृत कन्नड अनुवाद होम्बुज से एवं 2003 में तेलगु अनुवाद हैदराबाद से प्रकाशित हुआ।

महावीराचार्य द्वारा पाठ्य पुस्तक शैली में लिखित इस कृति का सदियों तक शिक्षण में उपयोग हुआ। फलत: इसकी शताधिक पूर्ण/अपूर्ण पांडुलिपियां देशभर में पाई जाती है। महावीराचार्य द्वारा दिया गया निरुद्ध का नियम, संचय का व्यापक सूत्र ''C'' उच्च घातीय समीकरणों को हल करने के नियम आज भी प्रयोग में लाये जाते है ऋणात्मक संख्याओं का प्रकृति में वर्गमूल न होने का कहकर काल्पनिक

संख्याओं की अभिधारणा को विकसित करने अनेक जटिल ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल/आयतन ज्ञात करने, एकाशक भिन्नों एवं मिश्र श्रेणियों पर संक्रियाओं के माध्यम से आपने गणित की महती सेवा की है, आप श्रेष्ठतम भारतीय गणितज्ञ है।

लोकोत्तर गणित के अन्तर्गत जो गणित आता है, उसकी प्रकृति लौकिक गणित से बिल्कुल भिन्न है। उसमें पल्य, सागर, उपमामान आदि की इकाईयाँ हैं। लोक की रचना में इकाई रज्जू (राजू) भी असंख्यात प्रकृति की है। जिसकी सटीक गणना संभव नहीं है, केवल अनुमान ही लगाये जा रहे हैं। वैदिक परम्परा में जहाँ ज्यामिति का प्रारम्भिक विकास यज्ञ वेदिकाओं की रचना हेतु किया गया था वहीं जैन परम्परा में लोक के विभिन्न भागों के आकार, प्रकार, क्षेत्रफल, आयतन, जीव राशियों की संख्या आदि के ज्ञान हेतु ज्यामिति का विकास हुआ।

गणित के प्रयोग के उद्देश्य

जैनाचार्यों ने मुख्यत: निम्नांकित उद्देश्यों हेतु गणित का प्रयोग किया-

1. तीन लोक की रचना को स्पष्ट करने, उसके विविध क्षेत्रों, पर्वतों, नदियों आदि के आकार-प्रकार, आयतन, क्षेत्रफल, लम्बाई, चौड़ाई आदि को बताने में।
2. कर्मों के विभिन्न प्रकारों, उनके भेद-प्रभेद, उप प्रकृतियों के आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, संक्रमण एवं जीव पर उनके समूहों के समेकित प्रभाव के विवेचन में।
3. दीक्षा, प्रतिष्ठा आदि मांगलिक कार्यों हेतु शुभ तिथि (मुहूर्त) एवं स्थान के चयन में एवं एतदर्थ पंचांग निर्माण हेतु ज्योतिष गणित (Astronomy) के विकास में।
4. गृह एवं मंदिरों के निर्माण हेतु आवश्यक वास्तु को हृदयंगम करने तथा दैनिक जीवन एवं मांगलिक क्रियाओं में उपयोगी लौकिक गणित (अंक गणित, बीज गणित तथा रेखा गणित) को समझाने में।
5. न्याय के ग्रंथों में प्रतिपक्षी के विभिन्न तर्कों के निरसन एवं स्वपक्ष की स्थापना हेतु गणितीय तर्कों/भाषा के उपयोग में।

क्या जैन गणित का मात्र ऐतिहासिक महत्त्व है? वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता है? यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज भी जैनाचार्यों द्वारा विकसित अथवा जैन ग्रंथों के माध्यम से 30 से अधिक सूत्र/सिद्धान्त गणित में प्रयोग में लाये जा रहे है।

यहाँ जैन गणित के कुछ वैशिष्ट्यों की चर्चा की जा रही हैं। जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत सिद्धान्तों का वर्तमान में भी प्रयोग होना जैन गणित की प्रासंगिकता का सबल प्रमाण है।

1. आज प्रायिकता के सिद्धान्त (Probability) की बड़ी चर्चा है। इसके आविष्कार का श्रेय Galileo (1565-1642 ई.), Farmat (1601-1625 ई.) तथा Beronouli (1654-1705 ई.) को दिया जाता है। प्रायिकता का मूलभाव आचार्य कुन्दकुन्द कृत पंचास्तिकाय (1-2 श.ई.) एवं आचार्य समन्तभद्र कृत आप्तमीमांसा टीका (दूसरी श.ई.) में गुणात्मक रूप से अवक्तव्यता के नाम से उपलब्ध है।

2. षट्खंडागम (प्रथम श.ई.) में समुच्चय के लिए 'ओघ' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसकी आचार्य वीरसेन कृत धवला टीका (816 ई.) में ओघ, राशि, पुञ्ज, सम्पात आदि शब्द समुच्चय के लिए प्रयोग में लाये गये हैं। इस टीका में भव्य जीव राशि, संसारी जीव राशि, मिथ्यादृष्टि, जीवराशि, वनस्पतिकायिक जीव राशि जैसे शब्द निश्चय समूह के द्योतक हैं जो सुपरिभाषित हैं।

इस टीका में एकल, रिक्त, परिमित, अपरिमित समुच्चय, उन पर योग, गुणन आदि की संक्रियायें, युग्म अवयव, अन्तर्क्षेपी एवं आच्छादक प्रतिचित्रण के उदाहरण उपलब्ध है।

3. षट्खण्डागम की धवला टीका में (आगम में) अक्षरों की संख्या बताते हुए Combinatorics के निम्न सूत्र का प्रयोग किया गया है–

$$\sum_{r=1}^{n} {}^{n}C_{r} = 2^{n}-1$$

उदाहरण–

$$\sum_{r=1}^{64} {}^{64}C_{r} = 2^{64}-1=18446744073704551615$$

4. षट्खंडागम एवं उसकी धवला टीका में इकाई राशि में सूक्ष्म कांडक राशि की वृद्धि के विवेचन में हमें द्विपद प्रमेय के बिस्तार के भाव मिलते हैं।

हमें राशियाँ $(1+K)$, $(1+K)^2$, $(1+K)^3$, $(1+K)^4$.... आदि मिलती है।

इनको एक के ऊपर एक (केवल गुणांक) रखने पर तथाकथित Pascal Triangle (1665 ई.) प्राप्त होता है।

5. तिलोयपण्णत्ती एवं धवलाटीका में अर्द्धच्छेद, त्रिक्छेद, चतुर्थच्छेद, पंचछेद, वर्गशलाका संज्ञायें क्रमशः: $\log_2$, $\log_3$, $\log_4$, $\log_5$, $\log_2\log_2$ हेतु प्रयोग में लाई गई हैं। यह सब लघुगणक के निम्नांकित सूत्र भी प्राप्त होते हैं– $\log M.n = \log m + \log n$

$$\log m/n = \log m - \log n$$

इनके जटिल अनुप्रयोग भी किये गये हैं।

$\log\log m^n = \log n + \log\log m$

गणित इतिहास के आविष्कार का श्रेय John Napier (1550–1617 ई.) तथा Jobust Burgi (1552–1632 ई.) को देते हैं। जबकि तिलोयपण्णत्ती, धवला, त्रिलोकसार आदि सर्वत्र जैन परम्परा में यह प्रचलित रहा। यह सत्य है कि जैन परम्परा मे कहीं भी $\log_{10}$ या $\log_e$ नहीं मिलता है। माधवचन्द्र त्रैविद्य की त्रिलोकसार की टीका में प्रति अर्धच्छेद एवं प्रतिवर्गशलाका का भाव भी निहित है।

6. षट्खंडागम, तिलोयपण्णत्ति, धवला, गोम्मटसार, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों में संख्याओं को मुख्यतः 3 वर्गों में विभाजित कियागया है–

1. संख्यात (countable) – जिनकी गणना की जा सके।

2. असंख्यात (uncountable) - 1, 1.... घटाने पर जो घटती जाये।

3. अनन्त (infinite) – 1, 1.... घटाने पर भी जो न घटे।

इनके 3, 9, 9 पुन: भाग करने पर 21 वर्ग बनते हैं। त्रिलोकसार में संख्यात को जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट के अलावा एक अन्य प्रकार से भी विभाजित किया गया है–

गिनतियाँ – 1,2,3,4.....
संख्या– 2,3,4,5.....
कृतियाँ– 3,4,5,6.....
जघन्य संख्यात 2 है।

7. दीर्घ संख्याओं को व्यक्त करने के लिए वर्गित–संवर्गित की अद्वितीय रीति का प्रयोग जैनाचार्यों ने किया है। यह रीति सर्वप्रथम तिलोयपण्णत्ती में प्राप्त होती है। पश्चात् इसका धवला टीका में विस्तार मिलता है। इससे कितनी बड़ी संख्या जनित होती है इसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। 2 के वर्गित–समवर्गित का उदाहरण देखिये–

2 का प्रथम वर्गित संवर्गित $= \overline{2}|^{1} = 2^{2} = 4$

2 का द्वितीय वर्गित–संवर्गित $= \overline{2}|^{2} = [2^{2}]^{[2^{2}]} = 4^{4} = 256$

2 का तृतीय वर्गित–संवर्गित $= \overline{2}|^{3} = \left[[2^{2}]^{[2^{2}]}\right]^{\left[[2^{2}]^{[2^{2}]}\right]} = [4^{4}]^{[4^{4}]} = 256^{256}$

= 256 x 256 ..... (256 बार)

= यह बहुत विशाल संख्या है। कुल अंक – 617

पुन: उत्कृष्ट संख्यात के रूप में अचलात्म को परिभाषित किया गया है। निम्नांकित दोनों मान क्रमश: तिलोयपण्णत्ती एवं तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अनुसार है–

1 अचलात्म = $(84)^{31} \times 10^{80} = 4.49 \times 10^{140}$ वर्ष (तिलोयपण्णत्ती)

1 अचलात्म = $(84)^{31} \times 10^{153} = 4.49 \times 10^{214}$ वर्ष (तत्त्वार्थ राजवार्तिक)

8. धवला में वितत भिन्नों (continued fractions) का सुन्दर प्रयोग किया गया है जबकि योरोप में Antonio catality (1540–1620 ई.) से पूर्व इसका प्रयोग नहीं मिलता है।

9. श्रेणी एवं धारा में (Series & sequences) जैनाचार्यों की प्रारम्भ से ही रुचि रही है वस्तुत: दार्शनिक विषयों को स्पष्ट करने में इनकी उपयोगिता ही आचार्यों की रुचि का कारण रही। तिलोयपण्णत्ती, धवला एवं गोम्मटसार में समानान्तर, गुणोत्तर एवं मिश्र श्रेणियों का n वाँ पद, n पदों का योग, आदि पद, मध्यम पद, अन्त्य पद, सार्व अन्तर (चय) निकालने के सूत्र उपलब्ध है।

10. त्रिलोकसार में 14 प्रकार की धाराओं (Dydic sequences) की विवेचना करने में अनन्तों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है जो आधुनिक गणितज्ञों को भी दृष्टि देने में सक्षम है।

11. विभिन्न प्रकार के संकेतों का प्रयोग प्राचीन जैन साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। जैन परम्परा में अंक गणितीय, बीज गणितीय एवं रेखा गणितीय तीनों प्रकार के संकेत मिलते हैं। पं. टोडरमल कृत सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका का अर्थ संदृष्टि अधिकार तो संकेतों का भंडार है। मुनि कुमुदेन्दु (860 ई.) कृत सिरि भूवलय तो Cryptography के प्रयोग का सुन्दरतम उदाहरण है।

12. भंग का विषय जैनाचार्यों को बहुत प्रिय रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द कृत पंचास्तिकाय में अस्ति, नास्ति एवं अवक्तव्य के कुल भंग सात बताये गये है।

13. अनुयोग द्वार में 1,00,000 योजन विष्कम्भ के गड्ढे की परिधि 3,16,227 योजन, 3 कोश, 128 धनुष, 3 अंगुल से कुछ अधिक बताई गई है। कुछ अधिक शब्द यह इंगित करता है कि पूर्णत: शुद्धमान ज्ञात करना शक्य नहीं है। यही तो अपरिमेयता (Irrationality) है। इससे यह आभास होता है कि जैनाचार्यों को Irrationality का कुछ आभास जरूर था।

14. अनुयोगद्वार में ही घातक के निम्नांकित नियम उपलब्ध है–

$$a^m \times a^n = a^{m+n}$$

$$(a^m)^n = a^{mn}$$

प्रथम सूत्र जीवधारियों की संख्या बताने में प्रयुक्त हुआ है।

$$2^{2^6} \times 2^{2^5} = 2^{64} \times 2^{32} = 2^{64+32} = 2^{96}$$

इसी ग्रंथ में भिन्नात्मक घातों को भी प्रयोग मिलता है।

$$\sqrt{a} \times \sqrt{a} = [\sqrt{a}]^2$$

अर्थात् $a^{1/2} \times a^{1/2} = a^{2/2}$

एवं $\sqrt{\sqrt{a}} \times \sqrt{\sqrt{a}} = [\sqrt{\sqrt{a}}]^2$ अर्थात् $a^{1/4} \times a^{1/4} = a^{2/4}$

15. स्थानांग सूत्र (ठाणं) एवं धवला टीका में संख्यात संख्याओं को 4 भागों में विभाजित किया गया हैं–

कृत युग्म	=	4n + 4	=	4 mod. 4	= 4,8,12,16, ……
त्र्योज	=	4n + 3	=	4 mod. 3	= 3,7,11,15, ……
द्वापर युग्म	=	4n + 2	=	4 mod. 2	= 2,6,10,14, ……
कल्योज	=	4n + 1	=	4 mod. 1	= 1,5,9,13, ……

यहाँ n = 0,1,2,3……

16. जैनाचार्यों में विशेषत: आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने संख्याओं को व्यक्त करने हेतु निम्नांकित तीन रीतियों का प्रयोग किया हैं–

1) अंकों द्वारा, 2) अक्षरों द्वारा, 3) शब्दों द्वारा

17. असमान हरों वाली भिन्नों को जोड़ने-घटाने हेतु आचार्य श्रीधर जी ने समच्छेदीकरण (हर सदृशीकरण) एवं आचार्य महावीर जी ने निरुद्ध के नाम से नियम प्रतिपादित किया है।

18. ''वृत्तखण्ड के क्षेत्रफल'' तथा ''गोले के आयतन'' हेतु निम्नांकित सूत्र दिये हैं। ये दोनों सूत्र आधुनिक रीति से ज्ञात किये जाने वाले मानों के अत्यन्त निकट हैं।

विवरण	आचार्य श्रीधर का सूत्र	आचार्य महावीर का सूत्र
वृत्तखण्ड का क्षेत्रफल यदि c जीवा एवं h बाण हो तो	$\sqrt{\frac{10}{3}} \times \frac{c+h}{2} \times h$	$\sqrt{10} \frac{\times c \times h}{4}$
गोले का आयतन यदि d = व्यास r = त्रिज्या होतो	$4\left[\frac{d}{2}\right]^3 \left[1+\frac{1}{18}\right] = 4.22r^3$	$\frac{9}{2} \times \frac{9}{2} \times r^3 = 4.05r^3$

19. $ax^2 + bx+c= o$ रूप द्विघात समीकरण को हल करने का नियम सर्वप्रथम आ. श्रीधर ने दिया है। जो आज भी श्री धराचार्य की विधि के नाम से विख्यात है–

यदि $ax^2+bx+c=0$ तो $x = \frac{-b \pm \sqrt{b^2-4ac}}{2a}$

यह विधि भास्कराचार्य ने अपने बीज गणित में आचार्य श्रीधर कृत बीजगणित से उद्धृत की है। महावीराचार्य ने इससे आगे बढ़कर बहुघात समीकरणों (Higher order equations) को हल करने का नियम दिया।

20. आ. श्रीधर ने त्रिशतिका में निम्न महत्त्वपूर्ण सूत्र दिए हैं–

$\sum n = \frac{n(n+1)}{2}$ यहाँ n कोई पूर्णांक है एवं

$\sum n$ (केवल विषम पूर्णांक) $= 1+3+5+7+.......= n^2$

21. एक निश्चित कर्ण वाले (समकोण) त्रिभुज की शेष 2 भुजाओं (लम्ब एवं आधार) को ज्ञात करने का सूत्र सर्वप्रथम महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह में जन्य व्यवहार प्रकरण में पाया जाता है यदि कर्ण C हो तो–

लम्ब = $\frac{m^2 - n^2}{m^2 + n^2} \times C$ आधार = $\frac{2mn}{m^2 + n^2} \times C$

यहाँ m एवं n स्वेच्छा पूर्वक चयनित बीज राशियाँ हैं। इनके प्रयोग से 65 कर्ण वाले त्रिभुज की शेष 2 भुजाओं के युग्म (39, 52), (25, 60), (33, 56) आदि मिलते हैं। यही नियम योरोप में

Fibonacci (1201 ई.) एवं Vieta (1580 ई.) द्वारा स्वतंत्र रूप से विकसित किये गए।

22. त्रिलोक विषयक रचनाओं के विवेचन में यतिवृषभाचार्य, वीरसेनाचार्य एवं नेमिचन्द्राचार्य ने श्रेणियों एवं अनुक्रम का व्यापक उपयोग किया है। फलत: श्रीधराचार्य एवं महावीराचार्य ने भी अपनी कृतियों में इन ग्रंथों के अध्ययन की सुविधा हेतु श्रेणी व्यवहार के प्रकरण में अनेकों प्रकार की श्रेणियों के प्रथम पद, अन्तिम पद, चय, गच्छ एवं n पदों के योग निकालने के अनेक सूत्र दिये हैं।

इस प्रकार और भी अनेक सूत्र/सिद्धान्त गणित में प्रयोग में लाये जा रहे है।

शून्य का आविष्कारक कौन?

बाशम ने शून्य एवं दाशमिक पद्धति के आविष्कारक का श्रेय भारत को दिया है किन्तु ये आविष्कारक किसके है? इस बारे में वे कुछ न लिख सके। हम यहाँ इस सन्दर्भ में उपलब्ध तथ्यों एवं नवीनतम शोधों का इस रूप में संकलन करेंगे कि सुधी पाठक सत्य के निकट पहुँच सके।

पिंगल ने अपने छन्दशास्त्र (200 ई.पू.) में 2^n की गणना में एक सूत्र दिया है:-

''रूपे शून्यम्''

यह व्यक्त करता है कि 200 ई. पूर्व में शून्य शब्द प्रचलन में था किन्तु यह शून्य गणितीय अर्थों में नहीं था।

चाणक्य नीति (3-2 श.ई.पू.) में लिखा है कि-

''अविद्यं जीवनं शून्यं''

अर्थात् बिना ज्ञान के जीवन शून्य है।

भारत की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्परा में शून्य निम्न अर्थों या रूप में प्रयुक्त हुआ है-

क	- पूर्ण	(Full)
ख	- अभाव	(Absence)
ग	- ब्रह्माण्ड	(Universe)
घ	- बिन्दु	(Dot)
च	- शून्य	(Circle)

व्यवहारिक जीवन में भी हम शून्य का Zero hour (किसी कार्य हेतु निर्धारित समय), Zero day (प्रारम्भिक दिवस), Zero date (प्रारम्भिक तिथि), Zero year (किसी युग का प्रथम वर्ष) या Zero error (त्रुटि विहीन) के रूप में प्रयोग करते हैं। पूर्व प्रकाशित साहित्य का विश्लेषण करने पर हम

शून्य को साहित्यिक (Literary),दाशमिक स्थान मान पदों (दशोत्तर अंकों), गणना योग्य अंक यदि रूपों में पाते हैं।

गणितीय जगत में शून्य की चर्चा के मध्य बृहदारण्यक उपनिषद की एक गाथा प्राय: उद्‌धृत की जाती है। वह है–

ॐ पूर्ण मद: पूर्णमिदं पूर्णात् मुदचोते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते।।

यहाँ पूर्ण शब्द शून्य के लिए आया है। गाथा के उत्तरार्द्ध से X-X = O जब X = O हो तो O-O = O बनता है।

शून्य का प्रयोग प्रारम्भिक शताब्दियों में अभाव या रिक्तता हेतु हुआ है। (2 सरी श.ई.) में O का प्रयोग अभाव या रिक्तता के लिए हुआ है।

महान जैनाचार्य धरसेन स्वामी के द्वारा प्रदत्त पारम्परिक ज्ञान के आधार पर आचार्य भूतबलि द्वारा रचित ग्रंथ ''महाबंध'' (100 ई.) में अभाव के अर्थ में शून्य का प्रयोग किया है। शायद यह अभाव के अर्थ में शून्य का प्रयोग करने वाला प्रथम ग्रंथ है।

साहित्यिक संदर्भों में शून्य के प्रयोग एवं व्यावहारिक जीवन में zero से सम्बद्ध शब्दों की व्याख्या एवं उदाहरण को संकलित करने का यदि हम यहाँ प्रयास करेंगे तो लेख का अनपेक्षित विस्तार हो जायेगा। फलत: हम स्वयं को दाशमिक स्थानमान रखने वाले शून्य तक सीमित कर रहे हैं अर्थात्–

यदि संख्या N है तो इस पद्धति में –

$$N = 10 + 10a_1 + 10^2 a_2 + 10^3 a_3 + \ldots\ldots 10^r a_r$$

उदाहरणार्थ– 1 एवं 4 से मिलकर 014, 104, 140, 1004 आदि बनतें हैं किन्तु यहाँ प्रत्येक अंक के स्थान भिन्न होने से मान बदल गया है।

आधुनिक गणित में O प्राकृतिक संख्या (Natural Number) नहीं है। तथापि संख्याओं के सृजन/लेखन में इसकी अहम् भूमिका है। यह सत्य है कि शून्य के लिए '0' या '0' संकेत बहुत बाद में प्रयुक्त किया गया है तथापि दशगुणोत्तर संख्याओं की सूची हमारे देश एवं विदेश में भी काफी समय पूर्व से प्रचलन में रही। निम्न सारणी में विभिन्न प्राचीन ग्रंथों एवं गणितज्ञों द्वारा प्रयुक्त स्थानमान सूचियों के पदों को संकलित किया है।

विभिन्न ग्रंथों/लेखकों द्वारा प्रयुक्त स्थानमान के पदों की सूची

क्र./ पद संख्या	ऋग्वेद	वाजसनेयी संहिता	तैत्तरीय संहिता	आर्यभट्ट	श्रीधराचार्य	महावीराचार्य	पावलूरि मल्लिकार्जुन या मल्लन	राजादित्य	वर्तमान में प्रचलित 19 पदों की सूची
1.	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक
2.	दश	दश	दश	दश	दश	दश	दश	दहम	दस
3.	शत	शत	शत	शत	शत	शत	शत	शतम	सौ
4.	सहस्र	सहस्र	सहस्र	सहस्र	सहस्र	सहस्र	सहस्र	सावीर	हजार
5.	अयुत	अयुत	अयुत	अयुत	अयुत	दस सहस्र	दस सहस्र	दस सावीर	दस हजार
6.	नियुत	नियुत	नियुत	नियुत	नियुत	लक्ष	लक्ष	लक्ष	लाख
7.	प्रयुत	प्रयुत	प्रयुत	प्रयुत	प्रयुत	दस लक्ष	दस लक्ष	दस लक्ष	दस लाख
8.		अर्बुद	अर्बुद	कोटि	कोटि	कोटि	कोटि	कोटि	करोड़
9.		न्यर्बुद	न्यर्बुद	अर्बुद	अर्बुद	दस कोटि	दस कोटि	दस कोटि	दस करोड़
10.		समुद्र	समुद्र	वर्ग	अब्ज	शत कोटि	शत कोटि	शतकोटि	अरब
11.		मध्य	मध्य		खर्व	अर्बुद	अर्बुद	अर्बुद	दस अरब
12.		अन्त	अन्त		निखर्व	न्यर्बुद	न्यर्बुद	न्युर्बद	खरब
13.		परार्ध	परार्ध		महासरोज	खर्व	खर्व	खर्ण	दस खरब
14.			उषस		शंख (शंकु)	महाखर्व	महाखर्व	महाखर्व	पद्म
15.			व्युष्टि		सरितापति	पद्म	पद्म	पद्म	दस पद्म
16.			उदेष्यत		अन्त्य	महापद्म	महापद्म	महापद्म	नील
17.			उद्यत		मध्य	क्षोणी	क्षोणी	क्षोणी	दस नील
18.			उदित		परार्ध	महाक्षोणी	महाक्षोणी	महाक्षोणी	शंख
19.			सुवर्ग			शंख	शंख	शंख	दस शंख
20.			लोक			महाशंख	महाशंख	महाशंख	
21.						क्षित्या (क्षिति)	क्षिति	कृष्टि	
22.						महाक्षित्या	महाक्षित्या	महाकृष्टि	
23.						क्षोभ	क्षोभ	क्षोभ	
24.						महाक्षोभ	महाक्षोभ	महाक्षोभ	
25.							निधि	नाड़ी	
26.							महानिधि	महानाड़ी	
27.							परत	नग	
28.							अनन्त	महानग	
29.							भूरि	रथ	
30.							महाभूरि	महारथ	
31.							मेरु	हरि	
32.							महामेरु	महाहरि	
33.							घडुश	फणि	
34.							महाघडुश	महाफणि	
35.							समुद्र	क्रतु	
36.							महासमुद्र	महाक्रतु	
37.								सागर	
38.								महासागर	
39.								परिमित	
40.								महापरिमित	

शून्य के लिए प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्द (भूत संख्या)–

अनन्त, अन्तरिक्ष, अभ्र, अम्बुद, असत्, आकाश, खं, ख पंक्ति गगन, छिद्र, जलद, जलधर,पथ, जिष्णु, दिव्, नग्न, नभ, पयोद, पयोधर, पुष्कर, पूर्ण, पृथु, पृथुल, बिन्दु, मेघ, रन्ध्र, वरीय, वणिग, बिन्दु, वियत्, विष्णु पद, विष्णुपाद, विहायस्, वृहत्, व्योम, शून्य, शिव, सूखर्तम आदि।

निर्यापक मुनि विज्ञसागर

अन्तर्ध्वनि

भगवान ऋषभदेव ने अपनी द्वय पुत्रियों को शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रखा। जिसमें ब्राह्मी को अक्षर विद्या प्रदान कर सर्व ग्रन्थों के गूढ़ता से अध्ययन अध्यापन की कला से श्रृंगारित किया साथ ही पुत्री सुन्दरी को अंक विद्या से सुसज्जित किया। द्वादशांग अतिविशाल है जिसको चार अनुयोगों में गुम्फन किया है, किसी भी अनुयोग का अध्ययन करने में उसकी सूक्ष्मता को प्राप्त करने में अंक विद्या अर्थात् गणित का आश्रय लेना आवश्यक है। बिना गणित के अध्ययन के किसी भी विषय की पूर्णता होना असम्भव है क्योंकि एक स्वाध्याय ही है जो तीनों लोकों और द्वादशांग से परिचय कराता है। धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय ही कल्याण का पावन निमित्त होता है। जैसा कि कहा गया है–

धर्मशास्त्रश्रुतौ शाश्वत् लालसं यस्य मानसम्
परमार्थं स एवेह सम्यग्ज्जानाति ना परः।।

अर्थात् जिनका मन धर्म शास्त्र के सुनने में सदा लालसा युक्त रहता है वही इस जगत् में परमार्थ को अच्छी तरह से जानता है।

भगवान जिनेन्द्र की वाणी को गणधर स्वामी और आरातीय आचार्यों की परम्परा से श्री कुन्दकुन्द आदि आचार्यों ने लिपिबद्ध किया। आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के स्वाध्याय से ही आत्मा का ज्ञान होता है। इसलिए स्वाध्याय आवश्यक है। क्योंकि–

स्वाध्याज्ज्ञान वृद्धिः स्यात्तस्यां वैराग्यमुत्वणम्।
तस्मातसर्गपरित्यागस्ततश्चित्तं निरोधनम्।।

अर्थात् स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है। ज्ञान वृद्धि होने पर उत्कृष्ट वैराग्य बढ़ता है। वैराग्य से संसार त्याग हाता है और उससे चित्त का नियंत्रण होता है।

चित्त का नियन्त्रण ही आत्मज्ञान में सहकारी बनता है और उस आत्म नियन्त्रण में गणित का अत्यावश्यक साहचर्य है।

आत्म प्रबोधन के निमित्तभूत परम आराध्य विश्ववंद्य तपोधन जिनके अध्यापन से नये-नये तर्क चिंतन और गूढ़ अनुभव अध्ययन की ललक प्रतिपल जागृत रखते हैं ऐसे परमोपकारी गुरुवर की वाणी से सिद्धान्त और गणित का अध्यापन हुआ तब लगा कि विषय समझना कुछ दुरुह है पर असम्भव नहीं और गुरुदेव का भी भाव बना कि धर्म की गणित पारलौकिक गणित भी लौकिक जनों के बीच संप्रसारित होनी चाहिए तब गुरुदेव द्वारा अध्यापित इस गणित के विषय को अपनी प्रतिभा के द्वारा संयोजन करके हमारी अनुजा व ''श्रमणी आर्यिका विमुदश्री माताजी'' ने अपने क्षयोपशम को वृद्धिंगत किया है साथ ही

''निर्यापक श्रमण मुनि श्री विशसागर जी'' ने अपने अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा इस कृति ''गणित प्रबोध'' के सम्पादन का कार्य गुरुकृपा से किया। यह कृति श्रुत संवर्धन की संयोजना है यह ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम का कारण है। श्रुतज्ञान की प्रभावना कैवल्य ज्योति प्राप्ति का कारण होती है। अत: अन्तस् अल्हादित है कि यह कृति ''आपश्री'' के कर कमलों तक पहुँच रही है। इस संयोजना की सहर्ष अनुमोदना करते हैं और अनन्तज्ञानी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पूज्य गुरुदेव की यह कृति **''गणित प्रबोध''** स्वयं गुरुदेव के लिए, सम्पादक के लिए, संकलनकर्त्री के लिए, प्रकाशनकर्ताओं के लिए और अध्ययन व अध्यापन करने वालों के लिए कैवल्यज्योति प्रदायी बने यही मंगल भावना के साथ गुरुदेव के चरण कमलों में त्रय भक्तियुत् वंदन समर्पित

मंगल भाविका
गुरु पादपद्माश्रिता
श्रमणी आर्यिका विमलश्री
संघस्थ-उच्चारणाचार्य श्री विनम्रसागर जी महामुनिराज

समर्पण के स्वर

न गुरोरधिकं तत्त्वं, न गुरोरधिकं तप:।
न गुरोरधिकं ज्ञानं, तस्मै श्री गुरवे नम:।।

अर्थात् गुरु से बढ़कर तत्त्व नहीं है क्योंकि तत्त्वों का ज्ञान गुरु ने ही कराया है, गुरु से बढ़कर तप भी नहीं है क्योंकि तप करना गुरु ने ही सिखाया है, छोटे-छोटे नियम, संयम, व्रत देकर महाव्रतों तक पहुंचाने वाले तथा छोटा-2 तप करके महान तप को बताने वाले, समझाने वाले, करवाने वाले गुरु ही हुआ करते हैं और ज्ञान भी गुरु से बढ़कर नहीं है क्योंकि जितना भी ज्ञान हुआ है, हो रहा है अथवा होगा सब गुरु से ही होगा इसलिए गुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं है, ऐसे गुरुदेव के श्री चरणों में मेरा बारम्बार नमोऽस्तु...

बाह्य और अंतरंग दोनों साधनों से कार्य की सिद्धि होती है, ऐसा वस्तु का स्वभाव है। अकेला उपादान भी कुछ नहीं कर सकता और अकेला निमित्त भी अकिंचित्कर है। संघ में करणानुयोग का स्वाध्याय विशेषकर चलता रहता है। जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड के अध्ययन के पश्चात् हम सब महाराज और माताजियों ने त्रिलोकसार जी ग्रन्थ पढ़ाने के लिए पूज्य गुरुदेव से निवेदन किया, अध्ययन करते समय इस शास्त्र में बहुत सारा विषय शुरु से ही गणित विषय/संबंधित आने लगा। (जैसे कि संख्याओं का विवेचन, धाराओं का विवेचन, लोक का स्वरुप आदि-2) मेरी गणित विषय में विशेष रुचि पूर्व से ही रही है तो मैंने सोचा कि मैं इसके बहुत अच्छे से नोट्स बनाऊँगी और मुनि श्री विज्ञसागर जी महाराज का भी भाव था कि कोई जैन गणित पर कार्य करें तो मैंने अपने विचार पूज्य गुरुदेव उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी गुरुदेव के श्रीचरणों में रखे कि मैं अपनी अल्पबुद्धि से आपकी और मुनि श्री की सहायता, प्रेरणा और आशीर्वाद से अध्ययन करके गणित के विभिन्न विषयों का शास्त्रों से संकलन करने का प्रयास करूँगी। आप इस पुस्तक का कार्य शुरु तो कीजिए। वैसे तो यह कार्य बहुत कठिन था परन्तु पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद व उनके अध्यापन, मार्गदर्शन ने मेरा बहुत साथ दिया। इस पुस्तक को तैयार करने में निर्यापक मुनि श्री विज्ञसागर जी महाराज ने अथक प्रयास किया है, मैंने तो बस सहयोग मात्र किया है और जो भी विषय तैयार होता था, मैं बड़ी माताजी श्रमणी आर्यिका विमलश्री माताजी को बार-बार दिखाती रहती थी। उनका प्रेम, वात्सल्य, उत्साहवर्धन मुझे समय-समय पर मिलता रहता था जिससे मैं घबराती नहीं थी बल्कि और ज्यादा हिम्मत से कार्य करती रहती थी गणित विषय एक ऐसा विषय है जिसमें एक-एक अंक का बहुत ध्यान रखना पड़ता है, प्रूफ रीडिंग करना बहुत ही मुश्किल था परन्तु परम पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से सब होता चला गया।

इस लघु कृति का सृजन परम पूज्य वात्सल्य निधि, करुणामूर्ति, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, भक्तामर महोदधि, कवि हृदय, सिद्धांतज्ञ, जीवन है पानी की बूँद के 9000 छंदों के रचयिता, भक्तामर पूजन शिविर प्रणेता, संस्कार प्रदाता, दीक्षा-शिक्षा प्रदाता, शब्द विज्ञान के धनी, मम आराध्य, भक्तामर वाले बाबा उच्चारणाचार्य 108 श्री विनम्रसागर जी गुरुदेव के कर कमलों से हुआ है और निर्यापक श्रमण श्री विज्ञसागर जी मुनिराज के संपादन व संकलन में मुझ अल्पज्ञ का थोड़ा कुछ परिश्रम रहा है। फिर भी

अल्पज्ञतावश अशुद्धियाँ रह जाना स्वाभाविक है, विज्ञजन अशुद्धियों को सुधाकर इंगित करने का सफल प्रयास अवश्य करें।

यह कृति सभी भव्य जीवों को लौकिक व अलौकिक गणित को पहचानने में सहायक बनेगी यह मेरा विश्वास है और गणित के सहारे सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करें यही मेरी शुभ भावना है। गुरुवर से प्रार्थना है कि मैं भी उस अनंतज्ञान को प्राप्त कर सकूँ आपका आशीर्वाद मुझ पर हमेशा बना रहे। त्रयभक्ति युत श्रीचरणों में कोटिश: नमोऽस्तु–3

गुरु चरणोपासिका

श्रमणी आर्यिका विमुदश्री

प्राक्कथन

लौकिके वैदिके चापि तथा सामायिकेऽपि य।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते।।

प्रसिद्ध जैनाचार्य एवं गणितज्ञ आचार्य महावीर (850 ई) अपने गणितसार संग्रह ग्रंथ में लिखते हैं कि सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि समस्त कार्यों में गणित उपयोगी हैं। महावीराचार्य के उक्त कथन एवं इसी ग्रंथ में उपलब्ध अन्य कथनों से गणित की जीवन में उपयोगिता एवं सर्वोच्चता स्वयंसिद्ध है।

जैन साहित्य में आगत गणित दो प्रकार का है -

1- लौकिक गणित

2- अलौकिक गणित या लोकोत्तर गणित

लौकिक गणित :- लोक व्यवहार या सांसारिक जीवन में जिसकी आवश्यकता होती हैं, वह लौकिक गणित कहलाता है। इसके अन्तर्गत दाशमिक स्थानमान प्रणाली, दशगुणोत्तर संख्याएँ, संकलन, व्यकलन आदि अष्ट परिकर्म, शून्य एवं भिन्नों पर उक्त 8 संक्रियाऐं, श्रेणी व्यवहार, त्रैराशिक आदि के विषय, क्रमचय-संचय, विविध प्रकार के बीजगणितीय समीकरण, ज्यामिति एवं ठोस ज्यामिति आदि रेखागणित के अनेक विषय सूत्र नियम आदि आते हैं। और अधिक स्पष्ट करें तो निम्नांकित ग्रंथों में आगत विषय लौकिक गणित के हैं: -

1- आचार्य श्रीधर (750ई) कृत त्रिशतिका (पाटीगणितसार)

2- आचार्य महावीर (850 ई) कृत गणितसार संग्रह

3- राजादित्य (1190 ई) कृत व्यवहार गणित आदि।

तिलोयपणत्ती, लोयविभाग, धवला, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, जम्बूदीवपण्णत्तिसंगहो आदि करणानुयोग के प्रमुख ग्रंथों में भी लौकिक गणित के अनेक विषय आये हैं। यहाँ आये लौकिक गणित को भी 2 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

1 - व्यक्त गणित या पाटीगणित

2 - अव्यक्त गणित या बीज गणित

रेखा गणित या ज्यामिति (प्रतर एवं घन) के विषय इसके अतिरिक्त हैं वैसे इसे पाटीगणित के क्षेत्र गणित व्यवहार में भी सम्मिलित कर दिया जाता है।

अलौकिक गणित :-

लोक के स्वरूप के विवेचन एवं कर्मों की विभिन्न प्रकृतियों के आत्मा पर समेकित प्रभाव के निर्धारण, भेदोपभेदों की विवेचना आदि में जैनाचार्यों ने जिस गणित का उपयोग किया है उसे अलौकिक गणित या लोकोत्तर गणित कहते हैं। इसका एक प्रमुख कारण है कि इसमें संख्यात के अतिरिक्त असंख्यात एवं अनन्त संख्याओं का व्यापक रूप से उपयोग किया गया है। जिनकी गणना न की जा सके किन्तु निरन्तर कम करने

से जो समाप्त हो जाये वे असंख्यात हैं। इसके विपरीत जिनकी न गणना की जा सके एवं न ही कम करने पर घटे अर्थात क्षय न हो वे अनन्त है। काल की सूक्ष्मतम इकाई समय से लेकर अचलात्म ($84^{31} \times 10^{90}$) तक की विशाल संख्यायें सभी संख्यात हैं। दार्शनिक रूप से इन्हें मतिज्ञान (बुद्धि) एवं श्रुतज्ञान का विषय बताया गया है फलतः अचलात्म भी उत्कृष्ट संख्यात नहीं हैं। असंख्यात के प्रारम्भ से पहले हमें उत्कृष्ट संख्यात जानना होगा। इस सन्दर्भ में हमें निम्नांकित ग्रंथों की मदद मिलती है।

आचार्य यतिवृषभ (176 ई.) कृत तिलोयपण्णत्ती

आचार्य सर्वनन्दि (458 ई.) कृत लोएविभाग

आचार्य वीरसेन (816 ई) कृत धवला टीका

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (981 ई.) कृत त्रिलोकसार

आचार्य पद्मनन्दि (10–11 वी शती) कृत जम्बूदीवपण्णत्तिसंगहो

इन ग्रंथों में संख्यात के 3. असंख्यात के 9 एवं अनन्त के 9. इस प्रकार संख्याओं के 21 भेदोपभेदों, उनमें परस्पर सम्बन्धों, सृजन की रीतियों के सोदाहरण विवेचन हमें प्राप्त होते हैं।

आ. कुन्दकुन्द (1 श ई.पू.) कृत पंचास्तिकाय में काल की सूक्ष्मतम इकाई समय, क्षेत्र की सूक्ष्मतम इकाई प्रदेश परिभाषित हैं तो हरिवंशपुराण (763 ई.) आदि अन्य अनेक ग्रंथों में भी संख्याओं का विषय विस्तार से आया है। पंचास्तिकाय में असंख्यात, अनन्त एवं अनन्तानन्त की चर्चा है। मात्र इतना ही नहीं हेमराज (1673 ई) कृत गणितसार, कविवर द्यानतराय (1676 – 1728 ई.) कृत चरचाशतक एवं बुलाखीचन्द्र (1680 ई) कृत बचनकोश सदृश हिन्दी भाषा के 17 वी श.ई. के ग्रंथों में संख्याओं के विभाजन का यह विषय विस्तार से आया है। हेमराज के शब्द देखिए:

संख्य असंख्य अनंत के एई भेद इक ईस।
थूलरूप किंचित कहे, सूक्ष्म जाने ईस।।184।।

सुरत ज्ञान जानै संख्याता, अवधि असंख्य का ज्ञाता।
केवल पद अनंत अवगाहे, तिय ज्ञान वह राहे।।185।।

गणितसार की पाण्डुलिपि

किन्तु भारतीय गणित के विशेषज्ञों ने इस विषय को महत्त्व नहीं दिया। विषय की जटिलता के कारण जैन गणित के अनेक अध्येताओं ने इसे उपेक्षित कर दिया किन्तु जैन गणित के शीर्षस्थ अध्येता प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर) ने सर्वप्रथम 1958 में इसका विस्तृत अध्ययन किया। उपरान्त मुनि श्री धर्मभूषण जी श्वेताम्बर जैन मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी II, गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी, आर्यिका श्री विशुद्धमती माता जी, ब्र. पुष्पा दीदी, प्रो. आर एस शाह, प्रो. आर सी गुप्ता, डॉ. प्रगति जैन आदि ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाया।

वस्तुतः जैन परम्परा में लोक की ऊँचाई 14 रज्जु बताई गई हैं। यह इकाई रज्जु असंख्यात हैं। प्रो. घासीराम जैन एवं अन्य अनेक विद्वानों ने रज्जु की गणना अनुमानों के आधार पर की है किन्तु वह पर्याप्त

एवं सार्थक नहीं है क्योंकि रज्जु की गणना संभव ही नहीं है। ज्ञातव्य है कि उत्कृष्ट संख्यात में एक जोड़ने पर जघन्य परीत असंख्यात आता है।

असंख्यात के भी तीन भेद होते हैं:-

1) परीतासंख्यात

2) युक्तासंख्यात

3) असंख्यातासंख्यात।

प्रत्येक के पुनः तीन तीन भेद होते हैं 1) जघन्य 2) मध्यम 3) उत्कृष्ट। अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका, और महाशलाका नाम के चार कुण्डों की कल्पना करे

प्रो0 लक्ष्मीचन्द्र जैन / मुनि महेन्द्र कुमार जैन / प्रो0 आर एस शाह, आदि ने उपलब्ध विवरणों के आधार पर उत्कृष्ट संख्यात को $k_{k_i^1}$ से बड़ा माना है जहाँ

$$k_{k_i^1} > \{10^{10^{10^{43}}}\} \ldots\ldots\ldots 10^{134} \text{ बार}$$

$$\text{अर्थात्} \ \{10^{10^{10^{43}}}\} \ \{10^{10^{10^{43}}}\} \ldots\ldots\ldots 10^{133} \text{ बार}$$

किसी भी गणितज्ञ का मष्तिष्क इस संख्या की कल्पना कर भी चकरा जाता है। इसी कारण यह अलौकिक या असाधारण गणित कहलाता है।

इतनी बड़ी संख्याओं की विवेचना एवं बार-बार प्रयोग अत्यन्त जटिल होता है....
इस कारण अनेक संकेतों (symbols) का प्रयोग किया गया। इसकी सूची जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में दृष्टव्य है।

14 धाराओं का प्रकरण: त्रिलोकसार में वस्तुतः अनन्त के परस्पर सम्बन्धों को स्पष्ट करने एवं उनके सृजन के लिए ही धाराओं का प्रकरण आया है। अनुक्रम के नियमों के विकास एवं अनन्तों को स्थापित करना उद्देश्य कदापि नहीं हैं।

अलौकिक गणित में मापन की अपनी विशेष रीति है। इसके अन्तर्गत 4 भेद है।

1 – द्रव्यमान – I संख्यामान – II उपमामान

2 – क्षेत्रमान

3 – कालमान

4 – भावमान

संख्यामान की हम पूर्व में संख्यात असंख्यात एवं अनन्त के रूप में चर्चा कर चुके हैं। उपमामान के भी मुख्यत: 8 भेद है।

1 – पल्य (I-व्यवहार पल्य II-उद्धारपल्य III-अद्धापल्य)

एक व्यवहार पल्य=4134, 5263, 0308, 2031, 7774 9512.192X 10^{13}X10^{0} वर्ष उद्धार पल्य एवं अद्धापल्य भी इसी से परिगणित किये गये हैं किन्तु वे सभी अंसख्यात एक दूसरे से असंख्यात गुने हैं।

2 – सागर

3 – सूच्यंगुल

4 – प्रतरांगुल

5 – घनांगुल

6 – जगत्श्रेणी

7 – जगत्प्रतर

8 – लोक

क्षेत्रमान की शुरूआत परमाणु या प्रदेश से लेकर अंगुल, (उत्सेधांगुल एवं आत्मांगुल) कोश एवं योजन (लघु एवं महायोजन) तक जाती है। सबसे बड़ी क्षेत्र की इकाई रज्जु है जो असंख्यात योजन होती है।

पूज्य प्रज्ञाश्रमण मुनि श्री विज्ञसागर जी महाराज ने गणित प्रबोध शीर्षक कृति में लौकिक एवं अलौकिक दोनों प्रकार के गणितों की चर्चा की है यह अवश्य है कि उनका स्रोत केवल दि. जैन आगम ग्रंथ विशेषत: करणानुयोग के ग्रंथ हैं। करणानुयोग के ग्रंथों में लौकिक एवं अलौकिक दोनों प्रकार के गणित आये हैं। लौकिक गणित के वे विषय जो अलौकिक गणित के विकास में सहभागी हो अथवा जैन दर्शन के विषयों के विवेचन में सहयोगी हो वे विषय इस ग्रंथ में आये हैं। उपलब्ध प्रारूप में इसके अध्यायों की सूची निम्नवत् है: –

1) गणित की परिभाषा, इतिहास, महत्ता

2) भूमिका व अन्य शास्त्रों में गणित का विवेचन

3) गणित विषयक प्रक्रियाएँ

4) मान/माप/प्रमाण तथा मान के भेदों का चार्ट

5) संख्या की व्यापकता तथा संख्या प्रमाण का चार्ट सहित विस्तार

6) चौदह धाराएँ

7) उपमा प्रमाण

8) श्रेणी व्यवहार गणित

9) अक्ष संचार गणित निर्देश

10) एक-द्वि-त्रि आदि सयोगी भंग प्राप्ति की विधि व त्रैराशिक गणित विधि

11) सहनानियों का विवेचन

12) लोक का क्षेत्रफल, घनफल और परिधि

13) सम्पूर्ण लोकाकाश के सम्पूर्ण वायुमण्डल का चित्रण

14) अधोलोक की पृथ्वियों के बिलों की संख्या विस्तार व अन्तराल

15) सातों नरकों के पटलों की जघन्योत्कृष्ट आयु व उत्सेध

16) जीवों की संख्या

ज्योतिर्लोक गणित

1) जम्बुद्वीप व लवण समुद्रादि द्वीप समुद्रों की परिधि, क्षेत्रफल व व्यास

2) एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर का घनफल

3) ज्योतिर्लोक में स्थित ज्योतिर्विमानों का वर्णन

4) लवणादि समुद्र से पुष्करार्थ पर्यन्त स्थित चन्द्र सूर्यों का अन्तर

5) भ्रमण करते हुए सूर्य के दिन एवं रात्रि गति का प्रमाण

6) सूर्य चन्द्रमा के भ्रमण के प्रकार

7) सूर्य उदय व सूर्य अस्त कब ?

8) सूर्य-चन्द्रमा के उदय स्थान व सूर्य के आताप क्षेत्र

9) ज्योतिषी देवों में नक्षत्र, नक्षत्रों के गगनखण्ड व नक्षत्रों का भुक्तिकाल

10) अयनों में सूर्य, चन्द्र व राहु द्वारा नक्षत्रों के मुक्तिकाल

11) अयनों में आवृति, नक्षत्र पर्व तिथि और विश्व आदि को प्राप्त करने का विधान

इनका संपूर्ण विवेचन तो सहस्त्रों पृष्ठों की अपेक्षा रखता है क्योंकि जैन गणित अन्यन्त विकसित, समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण है। तथापि इस कृति से जैन गणित विशेषत: अलौकिक गणित पर अच्छा प्रकाश पड़ा है एवं केवल जिज्ञासु अध्यात्म रसिक ही नहीं जैन गणित के सभी अध्येता इस कृति से लाभान्वित होंगे ऐसी मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है।

पूज्य मुनि श्री ने संघ में रहकर दिगम्बर जैन मुनि की कठोर दिनचर्या का पालन करते हुए इतनी श्रेष्ठ कृति सम्पादित कर प्रस्तुत की एतदर्थ संघ में अनुकूल वातावरण निर्माण में सहभागी संघ के नायक आचार्य

श्री विनम्रसागर जी महाराज, एवं अन्य समस्त पूज्य मुनिगणों के चरणों में मैं नमन करता हूँ। साथ ही पूज्य निर्यापक श्रमण मुनि श्री विज्ञसागर जी को नमोस्तु निवेदित करते हुए आशा करता हूँ कि आपका प्रशस्त लेखनी से सृजित या सम्पादित होकर हमें अन्य भी अनेक कृतियाँ अकादमिक जगत एवं जिज्ञासु श्रावकों हेतु प्राप्त होंगी। गणित के माध्यम से जिनवाणी की सतत् सेवा करते रहने के आशीर्वाद की आकांक्षा में नमोऽस्तु सहित...

डॉ. अनुपम जैन

अध्यक्ष-तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ

आचार्य गणित एवं निदेशक-प्राचीन भारतीय गणित अध्ययन केन्द्र

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) मो. 9425053822

अनुक्रमणिका

❊	मंगलाचरण	1
1.	गणित विषयक प्रक्रियाएँ	2
2.	मान/माप/प्रमाण	9
3.	संख्या की व्यापकता	11
4.	संख्या प्रमाण	19
5.	चौदह धाराएँ	27
6.	उपमा प्रमाण	43
7.	अक्ष संचार गणित निर्देश	51
8.	एक–द्वि–त्रि आदि संयोगी भंग प्राप्ति की विधि व त्रैराशिक गणित विधि	57
9.	श्रेणी व्यवहार गणित	59
10.	संहननियाँ	69
11.	लोक का क्षेत्रफल व घनफल	81
12.	अधोलोक का क्षेत्रफल	83
13.	ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल	95
14.	सम्पूर्ण लोक की परिधि एवं समस्त पवनों से रुद्धक्षेत्र का घनफल	107
15.	सम्पूर्ण लोकाकाश के सम्पूर्ण वायुमण्डल का चित्रण	116
16.	अधोलोक की पृथ्वियों के बिलों की संख्या का विस्तार	125
17.	इन्द्रक बिलों का विस्तार तथा सम्पूर्ण बिलों का बाहुल्य	132
18.	इन्द्रादिक बिलों का अन्तराल व पटलों का अन्तराल	135
19.	सातों नरकों के पटलों की जघन्योत्कृष्ट आयु व उत्सेध	144

ज्योतिर्लोक गणित

1.	जम्बूद्वीप व लवण समुद्रादि द्वीप समुद्रों की परिधि, क्षेत्रफल व व्यास	156
2.	एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर का घनफल (उत्कृष्ट अवगाहना वाले)	166
3.	ज्योतिर्लोक में स्थित ज्योतिर्विमानों का वर्णन	168
4.	लवणादि समुद्र से पुष्करार्ध पर्यन्त स्थित चन्द्र सूर्यों का अन्तर	175
5.	भ्रमण करते हुए सूर्य के दिन–रात्रि व गति का प्रमाण	195

6. सूर्य उदय व सूर्य अस्त कब? 202

7. सूर्य–चन्द्रमा के उदय स्थान व सूर्य के आताप क्षेत्र 208

8. ज्योतिषी देवों में नक्षत्र, नक्षत्रों के गगनखण्ड व नक्षत्रों का भुक्तिकाल 213

9. अयनों में सूर्य, चन्द्र व राहु द्वारा नक्षत्रों के भुक्तिकाल 218

10. अयनों में आवृत्ति, नक्षत्र, पर्व, तिथि और विषुप आदि को प्राप्त करने का विधान 223

परिशिष्ट–

1. प्रमाण 238

2. जीवों की संख्या 241

3. सूत्र निर्देश 248

4. पुरुष वेदी सम्यग्दृष्टि जीवों का अल्पबहुत्व प्रमाण 256

5. संदर्भित ग्रंथ सूची 258

मंगलाचरण

पणमिय सिरि जिणदेवं सद इंद वंदिओ सया णिच्चं।
सव्वे गणहरसामी अणुबद्ध केवली वंदे।।

अर्थ– जो नित्य ही सदाकाल सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार सर्व तीर्थंकरो के गणधरदेवों को नमस्कार करता हूँ और अनुबद्ध केवली जिन को नमस्कार करता हूँ।

धरसेणं गुरुं वंदे, वंदे पुप्फदंत भूदं च।
णमि वीरसेण सामिं, वंदे कुंद कुंदाइरियाणं।।2।।

श्रुतज्ञान लिपिबद्धता के प्रणेता आचार्य धरसेन स्वामी और आचार्य पुष्पदंत व भूतवली को नमस्कार करता हूँ। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य वीरसेन स्वामी व कुन्द–कुन्द देव को नमस्कार करता हूँ।

णमिदूण परंपरयां, आदि महावीर विमलं च।
सम्मदि सूरि विरागं वोच्छामि गणिय पवोहं च।।3।।

परम्पराचार्यों की वंदना करके आचार्य आदिसागर जी, आचार्य महावीरकीर्ति जी, वात्सल्य रत्नाकर आचार्य विमलसागर जी व आचार्य सन्मतिसागर जी की वंदना करके मम दीक्षा प्रदाता ऊर्ध्वारोहणकर्ता, अध्यात्म जगत के राजहंस, न्याय मार्तण्ड, सूरिगच्छाचार्य गुरुवर विरागसागर जी के चरण कमलों में नमस्कार करके गणित प्रबोध नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

अध्याय – 1

गणित विषयक प्रक्रियाएँ

अंकों की गति वाम भाग से होती है –

अंकानां वामनो गति : (गोम्मटसार जीवकाण्ड)

अर्थात् अंकों का अनुक्रम बाईं तरफ से होता है। जैसे – 256 के तीन अंकों में छह आदि (इकाई) अंक, पाँच दूसरा (दहाई) अंक, दो अंत (सैकड़ा) अंक है। यद्यपि अंकों को लिखते समय या राशि को मुँह से बोलते समय भी अंक बायें से दायें को लिखे या बोले जाते हैं। जैसे – 256 में दो अंक अन्त में बोलकर पहले बोला या लिखा गया परन्तु अक्षरों में व्यक्त करने के लिए उपरोक्त प्रकार पहले इकाई फिर दहाई रूप में इससे उल्टा क्रम ग्रहण किया जाता है।

परिकर्माष्टक गणित निर्देश – [गो.जी.]

संकलन, व्यकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल इन आठ नामों को परिकर्माष्टक जानना चाहिए।

संकलन की प्रक्रिया – किसी प्रमाण को किसी प्रमाण में जोड़ने को संकलन कहते हैं। जिसमें जोड़ा जाये उसे 'मूलराशि' कहते हैं। और जोड़ने योग्य राशि का नाम 'धन' है।

अर्थ संदृष्टि – जोड़ते समय धनराशि ऊपर और मूल राशि नीचे लिखी जाती है।

जैसे - $1000^{5} = 1000 + 5 = 1005$ व $1000^{5-} = 1000 + 5 = 1005$

जबकि अंक संदृष्टि विधि में मूलराशि ऊपर और धनराशि नीचे लिखकर जोड़ा जाता है।

जैसे –

$$\begin{array}{r} 1000 \\ \underline{5} \\ \underline{1005} \end{array}$$

व्यकलन की प्रक्रिया – किसी प्रमाण को किसी प्रमाण से घटाना व्यकलन कहलाता है। जिस राशि में से घटाया जाता है उसे 'मूलराशि' कहते हैं। तथा घटाने योग्य राशि का नाम 'ऋण' है। मूलराशि में से जो राशि घटाई जाती है उसे हीन अथवा न्यून अथवा शोधित अथवा स्फोटित कहते हैं।

अर्थ संदृष्टि – घटाते समय निम्न विधियों के प्रयोग का व्यवहार है –

(1) – $(\overset{5}{1000}) = 1000 - 5 = 995$ (2) – $(\frac{1}{\text{ल}}\Omega)$ = एक घाट लक्ष

(3) – $(\frac{1^{\circ}}{\text{को}})$ = एक घाट कोटि (4) – (ल–2) = 2 घाट लक्ष

(5) – $(\overset{\text{ल}}{\underset{1}{}}0)$ = एक घाट लक्ष (6) – (ख–) = किंचिदून अनन्त

(7) – (ल⌇2) = 2 घाट लक्ष (8) – (ल – 5) = 5 घाट लक्ष

(9) – (ल=2) = (ल–2–2) (11) – (छे व छे) = पल्य की अर्धच्छेद राशि में से पल्य की वर्ग शलाका राशि को घटाना।

(10) – $(\frac{\text{ल}}{5})$ = 5 घाट लक्ष

अंक दृष्टि = 1000−1 = 999, 5 कम एक करोड़ = 10000000−5=9999995 आदि।

गुणकार प्रक्रिया – किसी प्रमाण को किसी प्रमाण से गुणा करना गुणकार है।
गुणकार में जिसका गुणा किया जाता है, उसका नाम 'गुण्य' है।
जिसमें गुणा किया जाता है, उसका नाम 'गुणकार या गुणक' है।
गुण्य राशि को गुणकार करना गुणित, हत अथवा अभ्यस्त अथवा घ्नत है।
गुणने का नाम गुणन या हनन या घात इत्यादि है।
अर्थ संदृष्टि – गुणा करते समय गुणकार को ऊपर व गुण्य को नीचे लिखकर निम्न प्रकार खण्डों द्वारा गुणा करने का व्यवहार था जैसे –

16	16	16	16
256	3256	4006	256
1X2 = 2 6X2=12 56	32 1X5=5 6x5= 30 6	400 1X6=6 6X6=36	=16X256 =4096
3256	4006	4096	

जबकि अंक संदृष्टि विधि में गुण्य राशि को ऊपर व गुणकार राशि को नीचे रखकर गुणा किया जाता है।

जैसे - $\begin{array}{r} 256 \\ \times 16 \\ \hline 4096 \end{array}$

भागहार प्रक्रिया – किसी प्रमाण का किसी प्रमाण में भाग दिया जाता है तब प्राप्त राशि को भागहार कहते हैं।
जिसमें भाग दिया जाता है उसका नाम "भाज्य या हार्य" है।
जिसका भाग दिया जाता है उसका नाम 'भाजक' या हार है।
भाज्य राशि को भाजक करना भाजिका, भक्त या हत या खण्डित कहलाता है।
अर्थ संदृष्टि – भाग देते समय भाज्य ऊपर व भागहार नीचे लिखा जाता है।
जैसे - $\frac{4096}{16}$ = 256 अथवा $\frac{\text{को}}{5}$ = कोटि का पाँचवाँ भाग

अथवा 1/½ = 1½

भाजन विधि			
	4096 16 × 2 = 32	896 16 × 5 = 80	96 16 × 6 = 96
	896	96	0

16 के तीनों गुणकारों को क्रम से लिखने पर 2,5,6 = 256 लब्ध आ जाता है।

प्र. गुणकार क्या है ?

उत्तर– किसी संख्या को उसी संख्या में जितने बार जोड़ा जाए उसके बाद जो संख्या प्राप्त हुई है उसे प्राप्त करने की सरल विधि ही गुणकार है।

जैसे – 5+5+5+5+5+5 = इनको जोड़ा जायेगा तो तीस संख्या प्राप्त होती है किंतु गुणकार में इसे सरलता से लिखने के लिए 6x5 =30 प्राप्त हो जाती है। अर्थात् राशि को गुणकार राशि बार क्षेपण करना या मिलाना इसी प्रकार 256+256+256+256=1024 प्राप्त हुआ इसे गुणनूफल विधि से 256x4 = 1024 प्राप्त होता है। इसमें समय की बचत व आसानी से संख्या की प्राप्ति संभव है इसी प्रकार हम बड़ी से बड़ी संख्याऐं प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार की विधि सर्बप्राचीन ग्रंथ षट्खण्डागम (धवला जी) से प्राप्त की जा सकती है।

प्रश्न– भागहार क्या है ?

उत्तर– बटावे को भाग कहते हैं जैसे माना हमारे पास 500 रू. है उन्हें समान रूप से 10 लोगों में बाँटना है
यथा– 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1
50+50+50+50+50+50+50+50+50+50 इस प्रकार 50 रू. पर व्यक्ति आता है इसे हम $\frac{500}{10}$ भी लिख सकते है। जिस संख्या का भाग दिया जा रहा है उसे भागहार जिस संख्या में दिया जा रहा है उसे भाज्य संख्या के नाम से कहा जाता है।

वर्ग व वर्गमूल की प्रक्रिया – किसी प्रमाण को दो जगह रखकर आपस में गुणा करने पर प्राप्त प्रमाण को 'वर्ग' कहते हैं। वर्ग के मूल को 'वर्गमूल' कहते हैं।

जैसे – पच्चीस पाँच का वर्ग है और 25 का वर्गमूल 5 है।

❊ वर्ग का नाम कृति भी है। ❊ वर्गमूल का नाम कृतिमूल/ मूल / पाद / प्रथम मूल भी है। [प्रथम बार वर्ग करने को प्रथम वर्ग कहते हैं] उस वर्ग को पुन: वर्ग करने को द्वितीय वर्ग कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि वर्ग जानना चाहिए।

❊ प्रथम मूल के मूल को द्वितीय मूल, द्वितीय मूल के मूल को तृतीय मूल कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि मूल जानना चाहिए।

धवला पुस्तक 5 से – प्रथम वर्ग = अ^{2}, द्वितीय वर्ग = (अ^{2})^{2} = अ^{4}

प्रथम वर्गमूल = अ$^{1/2}$, द्वितीय वर्गमूल = (अ$^{1/2}$)$^{1/2}$ = अ$^{1/4}$

अंक संदृष्टि से वर्ग व वर्गमूल –

2 का प्रथम वर्ग = 2^2=4, द्वितीय वर्ग = 4^2 = 16, तृतीय वर्ग =16^2 = 256 इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनंत वर्ग करते जाना चाहिए जब तक केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल प्राप्त न हो।

जैसे– माना केवलज्ञान की संख्या = 65536 है, इसका प्रथम वर्गमूल ($\sqrt{65536}$) =256 होगा अर्थात् 2 से लेकर यहाँ तक की संख्याओं का ही वर्ग हो सकता है किन्तु 256 के बाद वर्ग नहीं हो सकता क्योंकि आगे की संख्या का वर्ग केवलज्ञान की संख्या का उल्लंघन करता है।

शंका– शास्त्रों में हमें पढ़ने को मिलता है कि ''अमुक संख्या का असंख्यात प्रथम वर्गमूल'' इसका तात्पर्य क्या है ?

समाधान– विवक्षित संख्या का प्रथम बार वर्गमूल निकाले, उसी संख्या का दूसरी बार प्रथम वर्गमूल ग्रहण करें, इसी संख्या का तीसरी बार प्रथम वर्गमूल ग्रहण करे इसी प्रकार असंख्यात बार वर्गमूल निकालकर उन्हें आपस में जोड़ दे तो प्राप्त लब्ध संख्या, विवक्षित संख्या का असंख्यात प्रथम वर्गमूल संख्या कहलायेगी।

जैसे– माना विवक्षित संख्या –65536 है और असंख्यात का प्रमाण = 4 है तब इस संख्या

का प्रथम वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

दूसरी प्रथम बार वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

तीसरी प्रथम बार वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

चतुर्थ प्रथम बार वर्गमूल = $\sqrt{65536}$ = 256

अत: इनका योग (256+256+256+256) = 1024 यह 65536 संख्या का प्रथम वर्गमूल प्राप्त हुआ।

इस प्रकार वर्ग–वर्गमूल की व्यापकता जैन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित की गई है, अन्य गणितज्ञ वहाँ तक नहीं पहुँच पाये है।

घन व घनमूल प्रक्रिया – किसी प्रमाण को तीन जगह रखकर आपस में गुणा करने पर प्राप्त प्रमाण को 'घन' कहते हैं। घन के मूल को 'घनमूल' कहते हैं।

जैसे – 125 पाँच का घन है और 125 का घनमूल 5 है।

अर्थ संदृष्टि – गुणन विधि आदि सर्व गुणकारवत् जानना चाहिए।

$5^3 = 5 \times 5 \times 5 = 125$ वर्ग व वर्गमूल की भाँति यहाँ भी प्रथम, द्वितीय आदि घन तथा प्रथम द्वितीय आदि घनमूल जानना चाहिए।

धवला पुस्तक 5 से = प्रथम घन = $अ^3$, द्वितीय घन = $(अ^3)^3 = अ^9$

प्रथम घनमूल = $अ^{1/3}$, द्वितीय घनमूल = $[अ^{1/3}]^{1/3} = अ^{1/9}$

शून्य परिकर्माष्टक की प्रक्रियाएँ – शून्य अर्थात् (बिन्दी) को संकलनादिक आठ प्रकार से कहते हैं।

(1) संकलन	=	अंक + 0 = अंक	(2+0=2)
(2) व्यकलन	=	अंक – 0 = अंक	(2–0=2)
(3) गुणकार	=	अंक × 0 = 0	(2x0=0)
(4) भागहार	=	अंक ÷ 0 = (अवक्तव्य)	(2÷0 =0)
(5) वर्ग	=	$(0)^2 = 0$	$(0)^2 = 0$
(6) वर्गमूल	=	$(0)^{1/2} = 0$	$(0)^{1/2} = 0$
(7) घन	=	$(0)^3 = 0$	$(0)^3 = 0$
(8) घनमूल	=	$(0)^{1/3} = 0$	$(0)^{1/3} = 0$

विरलन देय या घातांक गणित की प्रक्रिया–

धवला पु. 5 व गोमट्टसार आदि करणानुयोग के ग्रन्थों में विरलन–देय अर्थात् 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रिया का उल्लेख आता है। किसी संख्या का विरलन करना अर्थात् फैलाना या उस संख्या को एक–एक में अलग–अलग करना। जैसे–न के बिरलन का अर्थ है–1,1,1,1.... न बार।

देय का अर्थ है उपर्युक्त अंकों में प्रत्येक स्थान पर एक की जगह न अथवा किसी भी विवक्षित संख्या को रख देना। (लिखने में विरलन राशि ऊपर लिखी जाती है और देय राशि नीचे जैसे 6^4 में 6 देय है और 4 विरलन) फिर विरलन–देय से उत्पन्न संख्याओं को परस्पर गुणा कर देने से उस संख्या का वर्गित–संवर्गित प्राप्त हो जाता है और यही उस संख्या का प्रथम वर्गित–संवर्गित कहलाता है।

जैसे–न का प्रथम वर्गित – संवर्गित = $न^न$ । विरलन देय की एक बार पुन: प्रक्रिया करने से अर्थात् $न^न$ को लेकर वही विधान फिर से करने पर द्वितीय वर्गित–संवर्गित $(न^न)^{न^न}$ प्राप्त है। इसी विधान को पुन: एक बार करने से 'न' का तृतीय वर्गित–संवर्गित $\left[\{(न^न)^{न^न}\}^{\{(न^न)^{न^न}\}}\right]$ प्राप्त होता है

धवला पुस्तक में उक्त प्रक्रिया का प्रयोग तीन बार से अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है, किन्तु तृतीय–संवर्गित का उल्लेख अनेक बार बड़ी संख्याओं का असंख्यात व अनन्त के सम्बन्ध में किया गया है। इस प्रक्रिया से कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है इसका ज्ञान इस बात से हो सकता है कि 2 का तृतीय बार वर्गित–संवर्गित रूप 256^{256} हो जाता है।= 617 अंक प्रमाण संख्या हो जाती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि धवलाकार आधुनिक घातांक सिद्धान्त [Theory of indices या Powers] से पूर्णत: परिचित थे। यथा–

(1) $अ^म अ^न = अ^{म+न}$

(2) $अ^म / अ^न = अ^{म-न}$

(3) $(अ^म)^न = अ^{मन}$

(धवला पु. 5, त्रि.सा. व गोमट्टसार सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग–2, पृ.सं. 214)

भिन्न परिकर्माष्टक प्रक्रिया– यहाँ अंश व हर का संकलन, व्यकलन आदि पूर्वोक्त आठों बातें जानते हैं।

जैसे– छह का पाँचवाँ भाग $(\frac{6}{5})$ में 6 को अंश, लव इत्यादि कहते हैं और 5 को हार, हर, छेद आदि कहते हैं।

भिन्न में संकलन, व्यकलन आदि की चार जाति है–1. भाग जाति, 2. प्रभाग जाति, 3. भागानुबंध, 4. भागापवाह। इनमें से यहाँ विशेष प्रयोजनभूत ''समच्छेद विधि'' अर्थात् भाग जाति को कहा है।

जहाँ अलग–अलग अंश व अलग–अलग हर होते हैं वहाँ एक–एक हर को अन्य के हर के अंश से गुणा करना चाहिए और सभी हरों को परस्पर गुणा करना चाहिए।

जैसे– $\frac{5}{6}+\frac{2}{3}+\frac{3}{4}$ इसमें पहले हर 6 को अन्य हरों के अंश (2 व 3) करना चाहिए।

वह इस प्रकार है– (i) 6x2 + 6x3

12 + 18 = 30x2 = 60

(ii) 3x5 + 3x3

15 + 9 = 24x2 = 48

(iii) 4x5 + 4x2

20 + 8 = 28x2 = 56

ये तीनों संख्याओं के अंश हुए अब तीनों हरों का परस्पर में गुणा करें 6x3x4=72 प्राप्त हुआ। उपरोक्त रूप से गुणित सर्व अंशों का समान रूप से यह एक ही हर होता है।

जैसे– $\left(\frac{5}{6}+\frac{2}{3}+\frac{3}{4}\right)=\left(\frac{60}{72}+\frac{48}{72}+\frac{56}{72}\right)$

इस प्रकार सर्व राशियों के हरों का समान करना समच्छेद कहलाता है।

अब संकलन करना हो तो परस्पर अंशों को जोड़ दीजिए और व्यकलन करना हो तो मूल राशि के अंश से ऋणराशि के अंश को घटा दीजिए। और हर सबके समान है ही।

उदाहरण – **संकलन**– $\frac{5}{6}+\frac{2}{3}+\frac{3}{4}=\frac{60}{72}+\frac{48}{72}+\frac{56}{72}=\frac{60+48+56}{72}$

$=\frac{164}{72}$

व्यकलन– $\frac{5}{6}+\frac{2}{3}-\frac{3}{4}=\frac{60}{72}+\frac{48}{72}-\frac{56}{72}=\frac{60+48-56}{72}$

$=\frac{108-56}{72}=\frac{52}{72}$

गुणकार – भिन्न का गुणकार करने के लिए गुण्य और गुणकार के अंश को अंश से और हर को हर से गुणा करना चाहिए।

जैसे- $\frac{5}{6} \times \frac{2}{3} \times \frac{3}{4} = \frac{5 \times 2 \times 3}{6 \times 3 \times 4} = \frac{30}{72}$

भागहार – भिन्नों में भागहार निकालने के लिए भाजक के अंश को हर व हर को अंश करके फिर गुणकारवत् अंश को अंश से हर को हर से गुणा करना चाहिए।

जैसे- $\frac{5}{6} \div \frac{2}{3} = \frac{5}{6} \times \frac{3}{2} = \frac{5 \times 3}{6 \times 2} = \frac{15}{12}$

वर्ग– भिन्नों का वर्ग निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् वर्ग करके अंश के वर्ग को लब्ध का अंश व हर के वर्ग को लब्ध का हर जानना चाहिए।

जैसे- $\left(\frac{5}{6}\right)^2 = \frac{5^2}{6^2} = \frac{5 \times 5}{6 \times 6} = \frac{25}{36}$

घन– भिन्नों को घन निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् घन करके अंश के घन को लब्ध का अंश व हर के घन को लब्ध का हर जानना चाहिए।

जैसे- $\left(\frac{5}{6}\right)^3 = \frac{5^3}{6^3} = \frac{5 \times 5 \times 5}{6 \times 6 \times 6} = \frac{125}{216}$

वर्गमूल– भिन्नों का वर्गमूल निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् वर्गमूल करके अंश के वर्गमूल का लब्ध का अंश व हर के वर्गमूल के लब्ध का हर जानना चाहिए।

जैसे- $\left(\frac{25}{36}\right)^{1/2} = \frac{25^{1/2}}{36^{1/2}} = \frac{5}{6}$

$\sqrt{\frac{25}{36}} = \frac{\sqrt{25}}{\sqrt{36}} = \frac{5}{6}$

घनमूल– भिन्नों का घनमूल निकालने के लिए अंशों व हरों का पृथक्-पृथक् घनमूल करके अंश के घनमूल को लब्ध का अंश व हर के घनमूल को लब्ध का हर जानना चाहिए-

जैसे- $\left(\frac{125}{216}\right)^{1/3} = \frac{125^{1/3}}{216^{1/3}} = \frac{5}{6}$

इस अध्याय में परिकर्माष्टक व भिन्न कर्माष्टक को जाना।

अगले अध्याय में मान के भेद-

1. लौकिक मान
2. अलौकिक मान को कहते हैं।

अध्याय – 2

मान/माप/प्रमाण

मान की परिभाषा–

मान के भेद – ❊ लौकिक और अलौकिक के भेद से मान दो प्रकार का बतलाया है। इसमें मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान के भेद से **लौकिक मान** छह प्रकार का होता है।

- अन्नादि का जिसमें माप किया जाता है ऐसे प्रस्थादि को **मान** कहते हैं।
- तुलादि को **उन्मान** कहते हैं।
- चुल्लू से जो जलादि का माप होता है उसे **अवमान** कहते हैं।
- एक, दो, तीन आदि को **गणिमान** कहते हैं।
- गुञ्जादि के माप को **प्रतिमान** कहते हैं।
- घोड़े के अवयव देखकर मूल्य करने को **तत्प्रतिमान** कहते हैं।

❊ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार भेद **लोकोत्तर मान** के हैं। जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट के भेद से चारों लोकोत्तर मान को ग्रहण किया है। सामान्यत: द्रव्यमान से द्रव्य [पदार्थ], क्षेत्रमान से प्रदेश [सर्वाकाश तक], कालमान से समय और भावमान से अविभागि प्रतिच्छेदों का ग्रहण किया जाता है।

लोकोत्तर मान	जघन्य	उत्कृष्ट
(1) द्रव्यमान	एक परमाणु (1)	सम्पूर्ण द्रव्य समूह (16 ख)
(2) क्षेत्रमान	एक प्रदेश (1)	सर्वाकाश (16 ख ख)
(3) कालमान	एक समय (1)	सर्वकाल (16 ख ख ख)
(4) भावमान	सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव का पर्याय ज्ञान	जिनेन्द्र भगवान में केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद

सभी का मध्यम मान अनेक प्रकार का है।

प्रश्न–गणना, संख्यात व कृति में क्या अंतर है?

गणना–गणना एक के अंक से प्रारम्भ होती है, यह एक की संख्या गणना होते हुए भी नोकृति है, क्योंकि एक संख्या का वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती तथा अत: उसमें से वर्गमूल के कम कर देने पर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है। जैसे 1x1x1–1=0 अत: एक अंक गणना होते हुए भी नोकृति है।

संख्यात–संख्या 2 के अंक से प्रारम्भ होता है अर्थात् 2 का अंक जघन्य संख्यात है। यह दो का अंक अवक्तव्य कृति है क्योंकि दो का वर्ग करने पर इसमें वृद्धि तो देखी होती है किन्तु इसके वर्ग में से मूल घटाकर वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती। जैसे –2x2=4 वृद्धि नहीं हुई, अत: दो का अंक अवक्तव्य कृति है।

कृति–कृति तीन की संख्या आदि को लेकर होती है क्योंक जो राशि वर्गित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और अपने वर्ग में से अपने वर्ग के मूल को घटा कर शेष का वर्ग करने पर वृद्धि को प्राप्त होती है उसे कृति कहते है। जैसे–3x3=9, 9–3 मूलराशि=6, 6x6=36 यहाँ वृद्धि हुई1 अत: यह तीन का अंक कृति है।

❊ अब द्रव्यमान को कहते हैं - द्रव्यमान दो प्रकार का होता है- (1) संख्या प्रमाण (2) उपमा प्रमाण

(i) द्रव्य, क्षेत्र, काल प्रमाण का माप या मान

(ii) जैन गणित में संख्याओं की व्यापकता का एक विहंगम दृश्य

(iii)147, 150 अंकों तक की संख्याओं का विवेचन आगे देखेंगे–

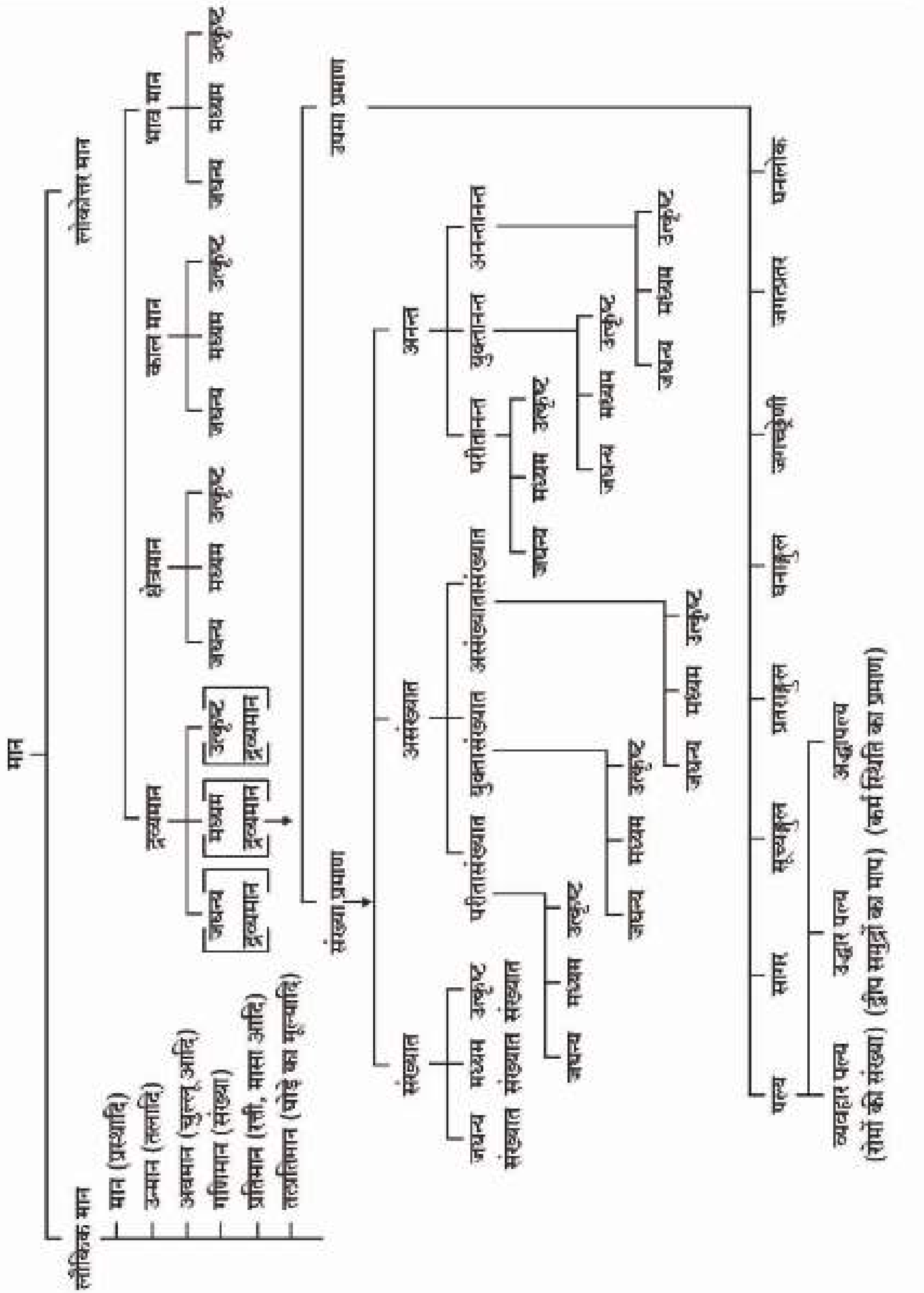
मान
लौकिक मान
मान (प्रस्थादि)
उन्मान (तलादि)
अवमान (चुल्लु आदि)
गणिमान (संख्या)
प्रतिमान (रत्ती, मासा आदि)
तत्प्रतिमान (घोड़े का मूल्यादि)
लोकोत्तर मान
द्रव्यमान
जघन्य द्रव्यमान
मध्यम द्रव्यमान
उत्कृष्ट द्रव्यमान
क्षेत्रमान
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
काल मान
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
भाव मान
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
संख्या प्रमाण
संख्यात
जघन्य संख्यात
मध्यम संख्यात
उत्कृष्ट संख्यात
असंख्यात
परीतासंख्यात
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
युक्तासंख्यात
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
असंख्यातासंख्यात
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
अनन्त
परीतानन्त
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
युक्तानन्त
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
अनन्तानन्त
जघन्य
मध्यम
उत्कृष्ट
उपमा प्रमाण
पल्य
सागर
सूच्यंगुल
प्रतरांगुल
घनांगुल
जगच्छ्रेणी
जगत्प्रतर
घनलोक
व्यवहार पल्य
(रोमों की संख्या)
उद्धार पल्य
(द्वीप समुद्रों का माप)
अद्धापल्य
(कर्म स्थिति का प्रमाण)

अध्याय - 3

संख्याओं की व्यापकता

द्रव्यमान

लौकिक गणित की वैदिक गणित में 19 अंक तक की संख्या का प्रमाण है अर्थात् वहाँ पर 19 अंक की संख्या को दस शंख के रूप में पढ़ा जाता है। इसके आगे आने वाली संख्याओं को असंख्यात व अनन्त कह दिया जाता है।

लौकिक गणित की संख्या -

1 = इकाई [एक अंक की संख्या]

10 = दहाई [दो अंक की संख्या]

100 = सैकड़ा [तीन अंक की संख्या]

1000 = हजार [चार अंक की संख्या]

10000 = दस हजार [पाँच अंक की संख्या]

100000 = लाख [छः अंक की संख्या]

10,00,000 = दस लाख [सात अंक की संख्या]

10000000 = करोड़ [आठ अंक की संख्या]

100000000 = दस करोड़ [नौ अंक की संख्या]

1000000000 = अरब [दस अंक की संख्या]

10000000000 = दस अरब [ग्यारह अंक की संख्या]

100000000000 = खरब [बारह अंक की संख्या]

1000000000000 = दस खरब [तेरह अंक की संख्या]

10000000000000 = नील [चौदह अंक की संख्या]

100000000000000 = दस नील [पन्द्रह अंक की संख्या]

1000000000000000 = पद्म [सोलह अंक की संख्या]

10000000000000000 = दस पद्म [सत्रह अंक की संख्या]

100000000000000000 = शंख [अठारह अंक की संख्या]

1000000000000000000 = दस शंख [उन्नीस अंक की संख्या]

लेकिन जैन गणित में संख्याएँ अति दीर्घता को लिए हुए व्याप्त है जिनका उल्लेख अर्वाचीन महर्षियों ने आचार्य भगवन्तों ने करणानुयोग के ग्रंथों में बड़ी अच्छी तरह से किया है। षट्खण्डागम में इन संख्याओं की व्यापकता प्राप्त होती है तथा राजवार्तिक, जम्बूद्वीप पण्णत्ति, त्रिलोकसार, तिलोय पण्णत्ति आदि ग्रंथों में इन संख्याओं का भली-भाँति विश्लेषण किया है। आचार्य यतिवृषभ ने 150 अंक तक की संख्या को उच्चारण में पढ़कर बताया है किन्तु आचार्य वीरसेन स्वामी ने 2 का तीन बार वर्गित-समवर्गित करके 617 अंक की संख्या प्राप्त करके दिखलायी है लेकिन उसका उच्चारण नहीं किया जा

सकता। किन्तु उसे भी संख्यात ही कहा है, असंख्यात की श्रेणी से अभी यह संख्या बहुत दूर है। जैन दर्शन में असंख्यात का बहुत ही व्यापक रुप है जिसे हम आगे सिद्ध करेंगे यहाँ मात्र इतना कहा जा सकता है कि जो संख्या पढ़ी नहीं जाए अर्थात् पढ़ नहीं सकते लिख नहीं सकते वह संख्या असंख्यात है। प्रस्तुत है आचार्य वीरसेन स्वामी के द्वारा प्रणीत धवला पुस्तक नं. 5 पृ. 22 में संख्याओं का विहंगम दृश्य इस प्रकार है -

(1) एक - 1
(2) दस - 10
(3) शत - 100
(4) सहस्र - 1000
(5) दस सहस्र - 10000
(6) शत सहस्र - 100000 (लक्ष)
(7) दस शत सहस्र - 1000000 (दस लक्ष)
(8) कोटि - 10,000,000
(9) पकोटि - $(10,000,000)^2$ अर्थात् एक करोड़ x एक करोड़
(10) कोटिप्प कोटि - $(10,000,000)^3$ इसी प्रकार 1000000x1000000x1000000
(11) नहुत - $(10,000,000)^4$
(12) निन्नहुत - $(10,000,000)^5$
(13) अखोभिनी - $(10,000,000)^6$
(14) बिन्दु - $(10,000,000)^7$
(15) अब्बुद - $(10,000,000)^8$
(16) निरब्बुद - $(10,000,000)^9$
(17) अहह - $(10,000,000)^{10}$
(18) अबब - $(10,000,000)^{11}$
(19) अटट - $(10,000,000)^{12}$
(20) सोगन्धिक - $(10,000,000)^{13}$
(21) उप्पल - $(10,000,000)^{14}$
(22) कुमुद - $(10,000,000)^{15}$
(23) पुंडरीक - $(10,000,000)^{16}$
(24) पदुम - $(10,000,000)^{17}$
(25) कथान - $(10,000,000)^{18}$
(26) महाकथान - $(10,000,000)^{19}$
(27) असंख्येय - $(10,000,000)^{20}$

यहाँ एक करोड़ की संख्या को एक करोड़ से 20 बार गुणा करने का निर्देश है। यहाँ तक की संख्या लगभग 148 अंक की हो जाती है। (धवला पु. 5 सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–2 पृ.सं. 214)

विशेष – यहाँ जो असंख्यात कहा जा रहा है वह वास्तविक असंख्यात नहीं है किंतु वैपुल्य वाची होने के कारण उसे असंख्यात नाम दिया है। संख्या तो संख्यात ही है क्योंकि स्वयं आचार्य वीरसेन स्वामी ने दो का तीन बार वर्गित–समवर्गित करने पर छह सौ सत्रह अंक की संख्या को संख्यात ही कहा है और फिर असंख्यात का जो व्यापक रूप है उसे हम आगे कहेंगे ही।

क्षेत्रमान

क्षेत्र के प्रमाणों का निर्देश–

द्रव्य का अविभागी अंश	=	परमाणु
अनंतानंत परमाणु	=	1 अवसन्नासन्न
8 अवसन्नासन्न	=	1 सन्नासन्न
8 सन्नासन्न	=	1 त्रुटरेणु (व्यवहाराणु)
8 त्रुटरेणु	=	1 त्रसरेणु (त्रस जीव के पाँव से उड़ने वाला धूल का कण)
8 त्रसरेणु	=	1 रथरेणु (रथ पहिये से उड़ने वाली धूल का अणु)
8 रथरेणु	=	उत्तम भोगभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 उत्तम भोगभूमिज का बालाग्र	=	मध्यम भोगभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 मध्यम भोगभूमिज का बालाग्र	=	जघन्य भोगभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 जघन्य भोगभूमिज का बालाग्र	=	कर्मभूमिज मनुष्य का बालाग्र
8 कर्मभूमिज बालाग्र	=	1 लिक्षा (लीख)
8 लीख	=	1 जू
8 जू	=	1 यव
8 यव	=	1 उत्सेधांगुल
500 उत्सेधांगुल	=	1 प्रमाणांगुल (भरत ऐरावत क्षेत्र के चक्रवर्ती का अंगुल)
आत्मांगुल	=	जिस देश काल में मनुष्यों का स्वयं का अंगुल
6 विवक्षित अंगुल	=	1 विवक्षित पाद
2 पाद	=	1 बितस्ति
2 बितस्ति	=	1 हस्त
2 हस्त	=	1 किष्कु
2 किष्कु	=	1 दण्ड, युग, धनुष, मूसल या नाली, नाड़ी
2000 दण्ड/धनुष	=	1 कोश
4 कोश	=	1 योजन

500 मानव योजन (उत्सेध योजन/व्यवहार योजन) = 1 प्रमाण योजन (महायोजन या दिव्य योजन)

1 उत्सेध योजन	=	768000 अंगुल

1 प्रमाण योजन गोल व गहरे कुण्ड = 1 व्यवहार पल्य
के आश्रय से उत्पन्न
व्यवहार पल्य x असंख्यात वर्ष = 1 उद्धार पल्य, उद्धार पल्य x असंख्यात वर्ष = अद्धापल्य

(1 अद्धापल्य या प्रमाण योजन^{3})$^{छे}$	=	1 सूच्यंगुल
1 सूच्यंगुल^{2}	=	1 प्रतरांगुल
1 सूच्यंगुल^{3}	=	1 घनांगुल
(घनांगुल)$^{अद्धापल्य÷असंख्यात}$	=	जगत्श्रेणी
अथवा (घनांगुल)$^{छे÷असं}$	=	जगत्श्रेणी
जगत्श्रेणी ÷ 7	=	1 रज्जू
(जगत्श्रेणी)^{2}	=	1 जगत्प्रतर
(जगत्श्रेणी)^{3}	=	1 जगत्घन या घनलोक

तौल की अपेक्षा द्रव्यमाण –	[राजवार्तिक ग्रन्थ से]
4 महा अधिक तृण फल–	1 श्वेत सर्षप फल
16 श्वेत सर्षप फल–	1 धान्यमाष फल
2 धान्यमाष फल–	1 गुंजाफल
2 गुंजाफल –	1 रूप्यमाष फल
13 रूप्यमास फल–	1 धरण
2½ धरण–	1 सुवर्ण या 1 कंस
4 सुवर्ण या 4 कंस–	1 पल
100 पल–	1 तुला या अर्धकंस
3 तुला या 3 अर्ध कंस–	1 कुडब (पुसेरा)
4 कुडब (पुसेरे)–	1 प्रस्थ (सेर)
4 प्रस्थ (सेर)–	1 आढक
4 आढक–	1 द्रोण
16 द्रोण–	1 खारी
20 खारी–	1 वाह

[राजवार्तिक अ.सं.–3, सूत्र–38, पृ.सं. 205 सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–2 पृ.सं. 215]

कालमान

काल प्रमाण की अपेक्षा से भेद –

(1) समय = एक परमाणु के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर मंद गति से जाने का काल[*]

(2) जघन्य युक्तासंख्यात समय = 1 आवली

(3) संख्यात आवली = $\frac{2880}{3773}$ सैकेण्ड = 1 उच्छ्वास या प्राण

(4) 7 उच्छ्वास = $5\frac{184}{539}$ सैकेण्ड = 1 स्तोक

(5) 7 स्तोक = $37\frac{31}{77}$ सैकेण्ड = 1 लव

(6) 38½ लव = 24 मिनिट = 1 नाली (घड़ी)

(7) 2 नाली (घड़ी) = 48 मिनिट = 1 मुहूर्त

मुहूर्त – एक समय = भिन्न मुहूर्त (उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)

(भिन्न मुहूर्त–1 समय) को उत्कृष्ट तथा (आवली+1समय) को

जघन्य अन्तर्मुहूर्त[*]

(8) 30 मुहूर्त = 24 घण्टे = 1 अहोरात्र = (1 दिन)

(9) 15 अहोरात्रि = 1 पक्ष

(10) 2 पक्ष = 1 मास

(11) 2 मास = 1 ऋतु

(12) 3 ऋतु = 1 अयन

(13) 2 अयन = 1 संवत्सर (एक वर्ष)

(14) 5 वर्ष = 1 युग

(15) 2 युग = दस वर्ष

(16) दस वर्ष × 10 = शत वर्ष

(17) शत वर्ष × 10 = सहस्र वर्ष

(18) सहस्र वर्ष × 10 = दस सहस्र वर्ष

(19) दस सहस्र वर्ष × 10 = लक्ष वर्ष

(20) लक्ष वर्ष × 84 = पूर्वांग (100000 वर्ष × 84 = 8400000 या 84 लाख वर्ष]

(21) $(\text{पूर्वांग})^2/(84 \text{ लाख वर्ष})^2$ = पूर्व [84 लाख × 84 लाख अथवा 70560000000000 वर्ष]

(22) पूर्व × 84 = पर्वांग [एक पूर्व × 84 अथवा 5927040000000000 वर्ष]

(23) पर्वांग×84 लाख = पर्व [एक पर्वांग×84 लाख=497871360000000000000 वर्ष]

(24) पर्व×84=नयुताङ्ग [4182119424×15 शून्य अथवा 4182119424×10^{15} प्रमाण वर्ष]

नोट–[1]व्यवहार काल द्रव्य की सबसे छोटी इकाई जिसका दूसरा भाग न किया जा सके उसे समय कहते हैं।

[*](भिन्न मुहूर्त–1 समय) को उत्कृष्ट तथा (आवली+1 समय) को जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं, मतान्तर से आवली के असंख्यात वे भाग को भी अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। भिन्न मुहूर्त–एक समय इसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहा गया है, इसके बीच के अन्तर्मुहूर्त के असंख्यात भेद जानने चाहिए।

(25) नयुताङ्ग×84 लाख=नयुत [351298031616×20 शून्य अथवा 351298031616×10^{20}]

(26) नयुत×84=कुमुदाङ्ग [29509034655744×20 शून्य अथवा 29509034655744×10^{20}]

(27) कुमुदाङ्ग × 84 लाख = कुमुद [2478758911082496 ×10^{25} × प्रमाण वर्ष]

(28) कुमुद × 84 = पद्माङ्ग [208215748530929664 × 10^{25} प्रमाण वर्ष]

(29) पद्माङ्ग × 84 लाख = पद्म [17490122876598091776 × 30 शून्य या 10^{30} प्रमाण वर्ष]

(30) पद्म×84 = नलिनाङ्ग [1469170321634239709184 × 30 शून्य या 10^{30} प्रमाण वर्ष]

(31) नलिनांग×84 लाख=नलिन [123410307017276135571456×35 शून्य या 10^{35} प्रमाण वर्ष]

(32) नलिन×84 = कमलाङ्ग [10366465789451195388002304×35 शून्य या 10^{35} प्रमाण वर्ष]

(33) कमलाङ्ग × 84 लाख = कमल [870783126313900412592193536 × 40 शून्य या 10^{40} प्रमाण वर्ष]

(34) कमल×84 = त्रुटिताङ्ग [73145782610367634657744257024×40 शून्य या10^{40} प्रमाण वर्ष]

(35) त्रुटिताङ्ग × 84 लाख = त्रुटित [6144245739270881311260517590016 × 45 शून्य या 10^{45} प्रमाण वर्ष]

(36) त्रुटित × 84 = अटटाङ्ग [516116642098754030145043477561344 × 45 शून्य या 10^{45} प्रमाण वर्ष]

(37) अटटाङ्ग × 84 लाख = अटट [43353787936295388532183652115152896 × 50 शून्य या 10^{50} प्रमाण वर्ष]

(38) अटट × 84 = अममांग [3641719026648808436703426777672843264 ×50 शून्य या×10^{50} प्रमाण वर्ष]

(39) अममांग × 84 लाख = अमम [30590439823849990868308784932451 8834176 × 55 शून्य या×10^{55} प्रमाण वर्ष]

(40) अमम × 84 = हाहांग [25695969452033992329379379343259582070784× 55 शून्य या×10^{55} प्रमाण वर्ष]

(41) हाहांग × 84 लाख = हाहा [2158461433970553556678678648338048 93945 856 × 60 शून्य या×10^{60} प्रमाण वर्ष]

(42) हाहा × 84 = हूहांग [1813107604535518498761009006 46039611091451904×60 शून्य या×10^{60} प्रमाण वर्ष]

(43) हूहांग × 84 लाख = हूहू [15230103878098355389592475654267327331681959936 × 65 शून्य या×10^{65} प्रमाण वर्ष]

(44) हूहू × 84 = लतांग [12793287257602618527257679549584554958612846346 24×65 शून्य या×10^{65} प्रमाण वर्ष] अर्थात् 114 अंक प्रमाण।

(45) लतांग × 84 लाख = लता [1074636129638619956289645082165102616523479093 08416×70 शून्य या×10^{70} प्रमाण वर्ष] अर्थात् 121 अंक प्रमाण।

(46) लता × 84 लाख = महालतांग [902694348896440763283301869018686197879722438 1906944×70 शून्य या×10^{70} प्रमाण वर्ष]

(47) महालतांग×84 लाख = महालता [758263253073010241157973569979626406218696689 80801 83296 × 75 शून्य या×10^{75} प्रमाण वर्ष]

(48) महालता × 84 लाख = श्री कल्प [636941132581328602572697798779584951223931523 8735396964 × 80 शून्य या×10^{80} प्रमाण वर्ष]

(49) श्री कल्प × 84 लाख = हस्तप्रहेलित [535030551368316026161066150974851384228103008 0053773336576 × 85 शून्य या×10^{85} प्रमाण वर्ष]

(50) हस्तप्रहेलित × 84 लाख = अचलात्म [449425663149385461975295566818875162751606526 7267245169602723 84×90 शून्य या × 10^{90} प्रमाण वर्ष] यह अचलात्म नाम का कालांश होता है

अथवा – अचलात्म = 84^{31}× 90 शून्य। यह कालांश अर्थात् अचलात्म 150 अंक प्रमाण वर्षों का है।

नोट– (1) यदि किसी संख्या में त्रुटि दिखाई दे तो उस संख्या के नम्बर को 84 पर घात चढ़ाकर तथा जो नंबर है उससे यदि सम संख्या है तो आधी करके एक जोड़े तथा संख्या को पाँच बार पाँच शून्यों से गुणाकर प्राप्त शून्यों को संख्या के आगे स्थापित करें तो संख्या प्राप्त हो जायेगी जैसे 10वें नम्बर की संख्या पश्चाङ्ग निकालना है तो 84^{10}×30 शून्य किंतु गणना लक्ष वर्ष से करना चाहिए।

यदि विषम संख्या है तो जिस नंबर की संख्या है उसे 84 पर घात लगाकर तथा जो नम्बर है उसमें एक जोड़ कर उसे सम बना ले पुनः आधा करें और पाँच शून्यों से गुणा कर दें संख्या प्राप्त हो जायेगी।

नोट– यह सूत्र महालता तक ही कार्यकारी होगा।

इस प्रकार वर्षों की गणना द्वारा जहाँ तक उत्कृष्ट संख्यात प्राप्त हो वहाँ तक इस संख्यात काल को ले जाना चाहिए। ये सारे विकल्प मध्यम संख्यात के अन्तर्गत आते हैं।

[धवला पु.–3 व 5, ति.प., रा.बा. से सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश–2 पृ.सं.–216]

दूसरे प्रकार से काल प्रमाण निर्देश

असंख्यात समय =	1 निमेष
15 निमेष =	1 काष्ठा (2 सैकण्ड)
20 काष्ठा =	1 कला (1 मिनट)
कुछ अधिक 20 कला (24 मिनट) (महाभारत की अपेक्षा 15 कला) =	1 घटिका (1 घड़ी)
2 घड़ी (महाभारत की अपेक्षा 3 कला + 3 काष्ठा) =	1 मुहूर्त
1 मिनट =	60 सैकण्ड
24 सैकण्ड =	1 पल
60 पल (24 मिनट) =	1 घड़ी
1 मिनिट =	540000 प्रतिविपलांश
60 प्रतिविपलांश =	प्रतिविपल
60 प्रतिविपल =	1 विपल
60 विपल =	1 पल
60 पल =	1 घड़ी

[पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थ वृत्ति से सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग-2, पृ.सं. 217]

इस अध्याय में द्रव्य, क्षेत्र, काल मान को जाना

आगे के अध्याय में विशेष रूप से द्रव्यमान में संख्या प्रमाण की सिद्धि करेंगे...

(i) संख्यात (ii) असंख्यात (iii) अनंत तथा अनंतानंत की व्यापकता व उसकी सिद्धि की जायेगी।

अभाव में कूलना नहीं,
प्रभाव में फूलना नहीं,
यही सच्चे साधू की पहचान है1

अध्याय – 4

संख्या प्रमाण

संख्यात, असंख्यात व अनन्त के भेद से संख्या प्रमाण तीन प्रकार का है।

(1) संख्यात – जितने विषयों को श्रुतज्ञान जानता है उसे संख्यात कहते हैं।

(2) असंख्यात – जितने विषयों को अवधिज्ञान व मन:पर्ययज्ञान प्रत्यक्ष जानता है उसे असंख्यात कहते हैं।

(3) अनंत – जितने विषयों को केवलज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है उसे अनंत कहते हैं। अनंत के दो भेद हैं – (1) सक्षय अनंत (2) अक्षय अनंत।

सक्षय अनंत – जो राशि या काल, व्यय होते–होते अन्त को प्राप्त हो जाए वह सक्षय अनंत कहलाता है।

अक्षय अनंत – आय के बिना व्यय होते रहने पर भी जिस राशि/काल का अन्त न हो वह अक्षय अनंत कहलाता है।

संख्यात एक ही प्रकार का है किन्तु परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात के भेद से असंख्यात तीन प्रकार का है तथा परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानंत के भेद से अनन्त भी तीन प्रकार का है। इस प्रकार तीनों के कुल 7 भेद हुए। ये सातों ही स्थान जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट के भेद से तीन–तीन प्रकार के हैं। अत: $7 \times 3 = 21$ भेद संख्या मान के होते हैं।

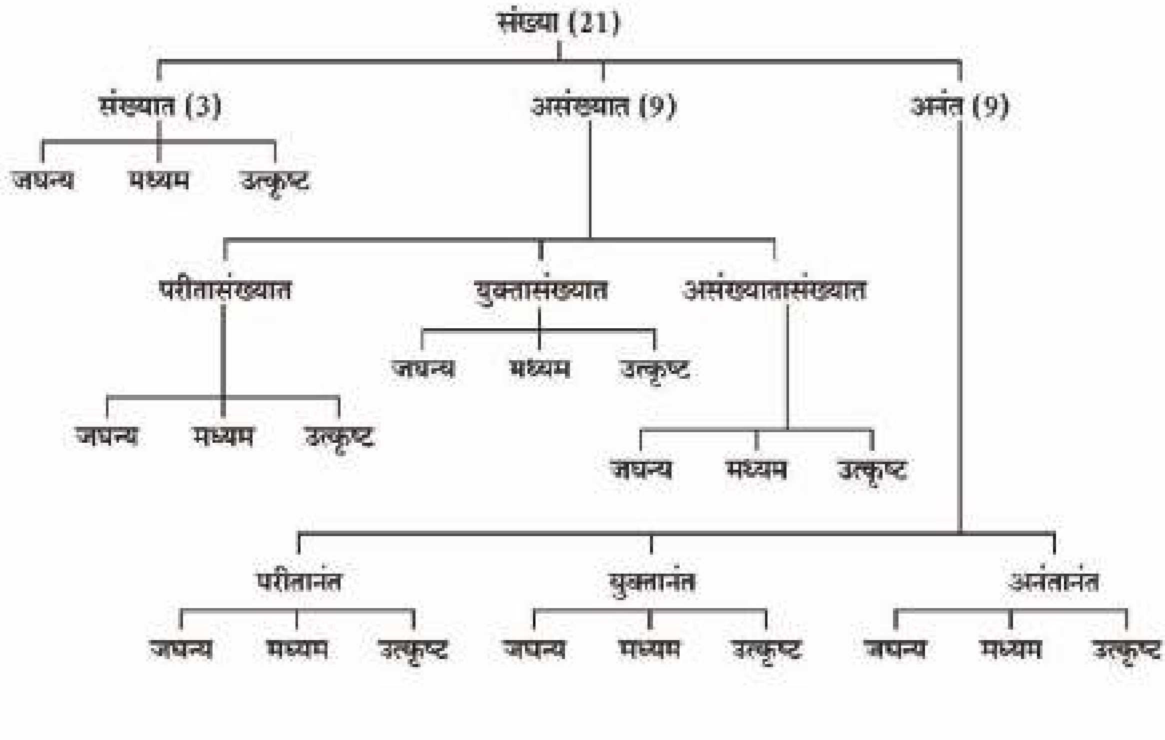

1. जघन्य संख्यात – एक में एक का भाग देने से या गुणा करने से कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती। अत: संख्या का प्रारम्भ दो के अंक से होता है और इसलिए जघन्य संख्यात का प्रमाण 2 है।

2. मध्यम संख्यात – 3, 4, 5 आदि से लेकर एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत के सम्पूर्ण भेदों को मध्यम संख्यात कहते हैं।

3. उत्कृष्ट संख्यात – एक कम जघन्य परीतासंख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं। अत: जघन्य परीतासंख्यात–1 = उत्कृष्ट संख्यात।

4. जघन्य परीतासंख्यात – जघन्य परीतासंख्यात के प्रमाण का ज्ञान कराने के लिए अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका इन चार कुण्डों की कल्पना की गई है। ये चारों कुण्ड गोल जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन व्यास एक हजार योजन गहरे होते हैं। जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड को गोल सरसों से शिखा तक भरने पर 46 अंक प्रमाण प्राप्त होता है। माना प्रथम अनवस्था कुण्ड [46 अंक प्रमाण संख्या के स्थानीय] 10 सरसों से भरा था, अत: बढ़ते हुए व्यास के साथ 10 अनवस्था कुण्डों के भर जाने पर एक बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक सरसों का दाना प्रति शलाका कुण्ड में डाला जायेगा। इसी प्रकार वृद्धिगत व्यास के साथ 10 का वर्ग अर्थात् 100 अनवस्था कुण्डों के भर जाने पर 10 बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा तब तक एक दाना महाशलाका कुण्ड में डाला जायेगा। इसी प्रकार बढ़ते हुए व्यास के साथ 10 के घन अर्थात् 1000 अनवस्था कुण्डों के भर जाने पर 10 के वर्ग अर्थात् 100 बार शलाका कुण्ड भरेगा तब 10 बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और तब एक बार महाशलाका कुण्ड भरेगा। इस प्रकार इस अन्तिम अनवस्था कुण्ड में शिखा सहित गोल सरसों की जितनी संख्या प्राप्त होती है वही संख्या जघन्य परीतासंख्यात की है।

शंका–व्यास की वृद्धि किस प्रकार होती है?

समाधान–प्रथम अनवस्था कुण्ड के सरसों के दाने किसी देव के माध्यम से एक–एक द्वीप–समुद्र में डाले जाये जहाँ पर सरसों खत्म हो जाये तो द्वितीय बार के अनवस्था कुण्ड का व्यास उतना होगा उसे गोल सरसों से शिखा तक भरें पश्चात् पुन: आगे के द्वीप समुद्रों में डालें जहाँ समाप्त हो जाएँ पुन: वहाँ से गोल व्यास वाला तृतीय अवस्था कुण्ड बनेगा पुन: उसे गोल सरसों से शिखा तक भरें और आगे के द्वीप समुद्रों में डालें जहाँ सरसों समाप्त हो जाएँ वहाँ से पुन: गोल अनवस्था बनावे इसी प्रकार अन्तिम अनवस्था तक ले जाना चाहिए। जब एक बार अनवस्था कुण्ड बनावें तो एक सरसों शलाका कुण्ड में डाले पश्चात् जब दूसरी बार अनवस्था कुण्ड बनावें तो दूसरा सरसों का दाना शलाका कुण्ड में डालें, इसी प्रकार शलाका कुण्ड को भरे तथा अनवस्था कुण्ड का व्यास अब तक संख्यात योजन का हो चुका है उसमें सरसों भी संख्यात ही भरे हैं।

शंका–त्रिलोकसार में उसे असंख्यात योजन का क्यों कहा है?

समाधान–वहाँ असंख्यात योजन वैपुल्यवाची संख्या होने के कारण कहा जा सकता है अथवा छपाई में गलती हो सकती है क्योंकि वहाँ असंख्यात संभव ही नहीं है। असंख्यात जब अन्तिम कुण्ड बनेगा उसमें गोल सरसों की संख्या होगी किन्तु वह भी संख्यात योजन का ही है, क्योंकि सरसों की संख्या जघन्य परीतासंख्यात है जिसमें से एक कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात होता है वह सरसों संख्यात योजन में ही भरी जाती है और अन्तिम कुण्ड अभी बहुत दूर है।

जब शलाका कुण्ड एक बार भर जाये तो प्रतिशलाका कुण्ड में एक दाना डाला जाए पश्चात् शलाका कुण्ड खाली करके दूसरी बार इसी प्रकार भरा जाए जब दूसरी बार भर जाए तो दूसरा दाना प्रतिशलाका में डालें, जब प्रतिशलाका भर जाए तो एक दाना महाशलाका में डालें पुन: प्रतिशलाका खाली करके दूसरी बार इसी क्रम से भरें पुन: एक दाना महाशलाका कुण्ड में डाले इस प्रकार जब महाशलाका भर जाए उस समय जो अनवस्था कुण्ड जितने व्यास का बना है उसे गोल सरसों से भरें उन सरसों को किसी देव की सहायता से गिनाया जाये वह संख्या जघन्य परीतासंख्यात होती है।

अनवस्था कुण्ड 1000 बार भरेगा, शलाका कुण्ड 100 बार भरेगा, प्रतिशलाका कुण्ड 10 बार भरेगा तब महाशलाका कुण्ड 1 बार भरेगा।

नोट-यह केवल एक मानक है किन्तु संख्यात बार भरा जाता है।

5. मध्यम परीतासंख्यात = जघन्य परीतासंख्यात से एक आदि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट परीतासंख्यात से एक अंक हीन होने तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम परीतासंख्यात हैं।

6. उत्कृष्ट परीतासंख्यात = जघन्य युक्तासंख्यात में से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट परीतासंख्यात प्राप्त होता है। **अत: जघन्य युक्तासंख्यात – 1 = उत्कृष्ट परीतासंख्यात।**

7. जघन्ययुक्तासंख्यात = जघन्य परीतासंख्यात का विरलन कर प्रत्येक एक एक अंक पर जघन्य परीतासंख्यात ही देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त होता है उतनी संख्या प्रमाण जघन्ययुक्तासंख्यात प्राप्त होता है। जो आवली सदृश है अर्थात् **जघन्ययुक्तासंख्यात = 1 आवली।**

जैसे–अंक संदृष्टि से माना कि = जघन्य परितासंख्यात = 8, इसका विरलन कर $8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1 x 8^1$ उसी को देय देकर परस्पर गुणा करने से = 16779216 (जघन्य युक्तासंख्यात)

सूत्र–जघन्ययुक्ता संख्यात = (जघन्य परीतासंख्यात)$^{(\text{जघन्य परीता संख्यात})}$ = आवली

8. मध्यमयुक्तासंख्यात = जघन्ययुक्तासंख्यात से एक अधिक और उत्कृष्ट युक्तासंख्यात से एक कम करने पर जितने विकल्प बनते हैं, वे सब मध्यम युक्तासंख्यात हैं।

9. उत्कृष्ट युक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात में से एक घटाने पर जो प्राप्त होता है, वह उत्कृष्ट युक्तासंख्यात का प्रमाण है।

सूत्र – उत्कृष्टयुक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात – 1

10. जघन्य असंख्यातासंख्यात = आवली जो जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण है, उसकी कृति [वर्ग] करने पर जघन्य असंख्यातासंख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है।

सूत्र – जघन्य असंख्यातासंख्यात = (जघन्य युक्तासंख्यात)^2 = (आवली)^2

11. मध्यम असंख्यातासंख्यात – जघन्य असंख्यातासंख्यात से एक आदि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात से एक अंक हीन तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम असंख्यातासंख्यात हैं।

12. उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात = जघन्य परीतानंत में से एक घटाने पर जो प्राप्त होता है, वह उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रमाण है।

सूत्र – उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात = जघन्य परीतानन्त – 1

13. जघन्य परीतानन्त – जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि के शलाका त्रय निष्ठापन की समाप्ति होने पर जो मध्यम असंख्यातासंख्यात राशि उत्पन्न हो उस महाराशि में धर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, अधर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, एक जीव के असंख्यात प्रदेश, लोक के असंख्यात प्रदेश, लोक से असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण एवं अप्रतिष्ठित जीव राशि से असंख्यात लोक गुणे प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण इन छह राशियों को मिलाने पर जो राशि उत्पन्न हो उसका पुन: शलाकात्रय निष्ठापन करना चाहिए। इसके बाद उत्पन्न महाराशि में बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण कल्पकाल के समय, इससे भी असंख्यात लोक गुणे स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान, इससे भी असंख्यात गुणे अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान और इनसे भी असंख्यात गुणे योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद स्वरूप ये चार राशियाँ मिलाकर पूर्वोक्त प्रकार पुन: शलाकात्रय (तीन बार) निष्ठापन करने से जो महाराशि उत्पन्न होती है, वही जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है।

शंका–शलाका त्रय किसे कहते हैं ?

समाधान–किसी भी राशि को विरलन देय व शलाका रूप से स्थापन कर लो पश्चात् विरलन के ऊपर उसी राशि को देय देकर आपस में गुणा करें और एक शलाका कम कर दें, पश्चात् जो महाराशि उत्पन्न हो उसका विरलन करें व उसी को देय देकर आपस में गुणा करें तथा एक शलाका कम करें दें। पश्चात् जो महाराशि उत्पन्न हो उसका पुन: विरलन करें व देय देकर गुणा करें तथा एक शलाका कम कर दें इसी प्रकार इसी क्रम से सम्पूर्ण शलाका समाप्त होने तक यह क्रिया करते जाएँ अन्त में जो महाराशि उत्पन्न हो उसको पुन: विरलन, देय, शलाका रूप से स्थापन करें व उसी प्रकार गुणा करते जाएँ और शलाका घटाते जाए। जब दूसरी बार भी सभी शलाका समाप्त होने पर जो महाराशि आती है उसको पुन: विरलन, देय, शलाका रूप से स्थापन करके गुणा करें व एक–एक शलाका कम करें इसी क्रम से विरलन देय रूप क्रिया व गुणा करते करते सम्पूर्ण शलाका समाप्त हो जाएँ तब जो महाराशि उत्पन्न हुई है वही राशि शलाका निष्ठापन से प्राप्त हुई है इसी को शलाकात्रय निष्ठापन कहते हैं।

14. मध्यम परीतानन्त – जघन्य परितानन्त से एकादि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट परितानन्त से एक अंकहीन तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम परीतानन्त है।

15. उत्कृष्ट परीतानन्त – जघन्य युक्तानन्त में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट परितानन्त प्राप्त होता है।

सूत्र – उत्कृष्ट परीतानन्त = जघन्य युक्तानन्त – 1

16. जघन्य युक्तानन्त – जघन्य परीतानन्त का विरलन कर प्रत्येक अंक पर जघन्य परीतानंत देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण जघन्य युक्तानन्त होता है। जो कि अभव्य राशि के सदृश है।

सूत्र – अभव्य राशि=जघन्य युक्तानन्त = (जघन्य परीतानन्त)$^{\text{जघन्य परीतानंत}}$

इसका तात्पर्य है कि जघन्य परीतानंत से जघन्य परीतानंत का जघन्य परीतानंत बार गुणा करने पर प्राप्त राशि। माना कि जघन्य परीतानंत की राशि 10 है अर्थात् $(10)^{10}$=10x10x10x10x10x10x10 x10x10x10=10000000000= अभव्य राशि

17. मध्यम युक्तानन्त – जघन्य युक्तानन्त से एक अंक अधिक और उत्कृष्ट युक्तानन्त से एक अंकहीन करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, वह सब मध्यम युक्तानन्त हैं।

18. उत्कृष्ट युक्तानन्त – जघन्य अनंतानंत में से एक घटाने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वह उत्कृष्ट युक्तानन्त है।

सूत्र – उत्कृष्ट युक्तानन्त = जघन्य अनंतानंत – 1

19. जघन्य अनंतानंत – जघन्य युक्तानन्त का वर्ग [कृति] करने पर जघन्य अनंतानंत प्राप्त होता है।

सूत्र –जघन्य अनंतानंत = (जघन्य युक्तानंत)^2

20. मध्यम अनंतानंत – जघन्य अनंतानंत से एक अंक अधिक और उत्कृष्ट अनंतानंत से एक अंकहीन तक के सभी विकल्प मध्यम अनंतानंत हैं।

21. उत्कृष्ट अनंतानंत – जघन्य अनंतानंत स्वरूप महाराशि का शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो मध्यम अनंतानंत उत्पन्न होता है, उसमें सम्पूर्ण जीव के अनंतवें भाग प्रमाण सिद्ध राशि, इससे अनंतगुणी निगोद राशि, सम्पूर्ण वनस्पतिकायिक राशि, जीव राशि से अनंत गुणी पुद्गल राशि, उससे भी अनंतगुणे तीनों काल के समय और काल राशि से अनंत गुणी अलोकाकाश की प्रदेश राशि अर्थात् अनंत स्वरूप इन छह राशियों का क्षेपण करने से जो योगफल उत्पन्न हो उसका पुन: शलाका त्रय निष्ठापन करने से उत्पन्न होने वाली महाराशि में धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद मिलाने से उत्पन्न होने वाली राशि का पुन: शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो महाराशि रूप लब्ध प्राप्त होगा वह भी केवलज्ञान के बराबर नहीं होगा, अत: केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों में से उक्त महाराशि घटा देने पर जो लब्ध उपलब्ध हो उसे वैसे का वैसा उसी में मिला देने पर केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत प्राप्त होता है।

जैसे–केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद स्वरूप महाराशि अनंत का मानक 500 है तथा सम्पूर्ण शलाका त्रय निष्ठापन से प्राप्त राशि का प्रमाण 200 है जो केवलज्ञान के अनंतवे भाग है अत: उत्कृष्ट अनंतानंत स्वरूप केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद 500–200 शलाका त्रय से प्राप्त राशि =300 पुन: उसे उसी में मिलाने पर 300+200=500 उत्कृष्ट अनंतानंत प्राप्त हुआ।

अवस्था कुण्ड में शिखा सहित सरसों का प्रमाण

अनवस्था कुण्ड का व्यास = जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् 1 लाख योजन

परिधि = 3 लाख योजन, गहराई = 1000 योजन

इस कुण्ड का क्षेत्रफल = परिधि x $\frac{\text{व्यास}}{4}$ = 3 ला. x $\frac{\text{1 ला.}}{4}$

इस कुण्ड का घनफल = परिधि x $\frac{\text{व्यास}}{4}$ x गहराई

$$= 3 \text{ ला.} \times \frac{1 \text{ ला.}}{4} \times 1000$$ घन प्रमाण योजन

प्रमाण योजन को व्यवहार योजन में बदलने के लिए–

1 प्रमाण योजन = 500 व्यवहार योजन

घन राशि होने के कारण घनरूप ही गुणकार होगा।

अत: $3 \text{ ला.} \times \frac{1 \text{ ला.}}{4} \times 1000 \times 500^3$ घन व्यवहार योजन

व्यवहार योजन को अंगुल में बदलने के लिए–

1 योजन = 4 कोस, 1 कोस = 2000 धनुष, 1 धनुष = 4 हाथ, 1 हाथ = 24 अंगुल इन सबका परस्पर गुणा करने पर 1 योजन के अंगुल प्राप्त होते है।

अत: 4x2000x4x24 = 768000 अंगुल

घनराशि का गुणकार व भागहार घनरूप ही होता है।

अत: $3 \text{ ला.} \times \frac{1 \text{ ला.}}{4} \times 1000 \times 500^3 \times 768000^3$ व्यवहार अंगुल

व्यवहार अंगुल को चौकोर सरसों में बदलने के लिए–

1 अंगुल = 8 यव, 1 यव = 8 चौकोर सरसों

अत: $8^3 \times 8^3$ से उपर्युक्त व्यवहार अंगुल से गुणा करेंगे।

अत: $3 \text{ ला.} \times \frac{1 \text{ ला.}}{4} \times 1000 \times 500^3 \times 768000^3 \times 8^3 \times 8^3$

चौकोर सरसों के प्रमाण को गोल सरसों में बदलने के लिए 9/16 भाग दिया जाता है। क्योंकि चौकोर वस्तु के घनफल में 9/16 का भाग देने पर गोल वस्तु का प्रमाण प्राप्त होता है।

नियम–भागहार का हार अंश का गुणकार हो जाता है, इस नियम के अनुसार 16 भी गुणकार हो जावेगा।

अत: $$\frac{300000 \times 100000 \times 1000 \times 500^3 \times 768000^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 16}{4 \times 9}$$

अथवा $$\frac{300000 \times 100000 \times 1000 \times 500 \times 500 \times 500 \times 768000 \times 768000 \times 768000 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 16}{4 \times 9}$$

उपरिम 8 अंकों में से एक 8 का गुणनखण्ड करने पर 2x2x2 प्राप्त होता है। 500 का गुणकार तीन बार है अत: प्रत्येक 500 को 2 से गुणा करने पर तीन स्थान पर 1000 गुणकार प्राप्त होता है।

प्रत्येक 1000 में तीन-तीन शून्य है, इसलिए तीन स्थानों के एक-एक हजार के 9 शून्य + एक हजार गहराई के 3 शून्य+तीन स्थानों पर स्थित 768000 के 9 शून्य + तीन लाख के 5 शून्य + एक लाख के 5 शून्य इन सर्व शून्यों को मिलाने पर (9+3+9+5+5) = 31 शून्य प्राप्त हुई।

शेष संख्या = $\frac{16 \times 3 \times 768 \times 768 \times 768 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8 \times 8}{9 \times 4}$ इस संख्या के आगे 31 शून्य रखना चाहिए।

उपरिम पाँच बार आठ के अंकों में से एक 8 के अंक का गुणनखण्ड करने पर 2x2x2 प्राप्त होते हैं। इन तीनों 2 को उपरिम तीन 8 के अंकों से गुणित करने पर 8x2, 8x2, 8x2 = 16x16x16 प्राप्त हुए।

इन तीनों 16 के अंकों को उपरिम 16 के अंक से गुणा करने पर 16x16x16x16=65536 प्राप्त होते है।

प्रत्येक 768 के 256x3 गुणनखण्ड होते हैं। अर्थात् 768=256x3, 768=256x3, 768 = 256x3= 256x256x256x3x3x3=65536x256x9x3 गुणनखण्ड प्राप्त हुए।

पहले के 65536 को इस 65536 से गुणा करने पर बादाल (4294967296) प्राप्त होता है। बादाल को (42=) ऐसे भी लिखा जाता है।

$\frac{(42=) \times 256 \times 9 \times 3 \times 8 \times 3}{9 \times 4}$ = (42=)x256x9x2 क्योंकि यहाँ पर अंश के 9 हर के 9 का छेद हुआ और हर के 4 से अंश के 8 का

छेद करने पर 2 का अंक प्राप्त हुआ।

अत: गोल सरसों का प्रमाण (अनवस्था कुण्ड में) = (42 = (बादाल)x256x9x2 और 31 शून्य)

अर्थात् 42 = (बादाल) x256x18 और 31 शून्य अर्थात् 4294967296x256x18 और 31 शून्य

= 19791209299968000000000000000000000000000 यह जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड के गोल सरसों का प्रमाण है।

जम्बूद्वीप सदृश कुण्ड के ऊपर की राशि के शिखाफल के गोल सरसों का प्रमाण

आकाश को व्याप्त करने वाली तिल, सरसों आदि वस्तुओं की शिखाऊ राशि परिधि के ग्यारहवें भाग प्रमाण होती है। अत: पूर्व की लब्ध राशि में 11 का भाग देने से यह प्रमाण प्राप्त होता है।

अत: $\frac{\text{बादाल x256x18x31 शून्य}}{11}$

अर्थात् $\frac{1979120929996800000000000000000000000000}{11}$

$=179920084545163636363636363636363636363636\frac{4}{11}$

यह कुण्ड की शिखा के सरसों का प्रमाण प्राप्त हुआ।

शिखा सहित अनवस्था कुण्ड के सरसों का प्रमाण =

शिखा रहित अनवस्था कुण्ड के सरसों का प्रमाण + कुण्ड की शिखा के सरसों का प्रमाण

$=199711293845131636363636363636363636363636\frac{4}{11}$

यह प्रथम अनवस्था कुण्ड के शिखा सहित सरसों के अंकों का प्रमाण है।

नोट–इन्हीं संख्यात असंख्यात अनंत की विशेष सिद्धि के लिए चौदह धाराओं की व्याख्या अगले अध्याय में करेंगे।

हितकारी वचन कठोर हो सकते हैं
पर अभद्र नहीं।

अध्याय–5

धाराएँ

संख्यात, असंख्यात और अनंत की सिद्धि करने के लिए 14 धाराएँ कही गयी हैं। वे 14 धाराएँ हैं – (1) सर्वधारा, (2) समधारा, (3) विषमधारा, (4) कृतिधारा (5) अकृतिधारा, (6) घनधारा, (7) अघनधारा, (8) वर्गमातृकधारा, (9) अवर्गमातृकधारा, (10) घनमातृकधारा, (11) अघनमातृकधारा (12) द्विरूपवर्गधारा (13) द्विरूपघनधारा, (14) द्विरूपघनाघनधारा।

1. सर्वधारा – एक अंक को आदि लेकर उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण केवलज्ञान पर्यंत संख्याओं को सर्वधारा कहते हैं।

विशेष–यहाँ केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद जो कि उत्कृष्ट अनंतानंत हैं, उनका एक मानक माना है जो कि 65536 है।

जैसे - 1, 2, 3, 4................. 65535, 65536 [अंक संदृष्टि से मान]

प्रथम स्थान =1 है। और **अन्तिम स्थान** = 65536 (केवलज्ञान स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत) सर्वधारा के कुल स्थान केवलज्ञान प्रमाण हैं। सम आदि शेष तेरह धाराएँ इसी सर्वधारा से उत्पन्न हुई हैं।

2. समधारा – 2 के अंक से आरम्भ कर दो–दो की वृद्धि को प्राप्त होते हुए केवलज्ञान पर्यंत समधारा होती है।

जैसे - 2,4,6,8 .... 65534, 65536 [अंक संदृष्टि से मान]

प्रथम स्थान = 2 व **अन्तिम स्थान** = 65536 (केवलज्ञान स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत) समधारा के कुल स्थान केवलज्ञान से आधे हैं। अर्थात् $\frac{\text{केवलज्ञान}}{2}$ अथवा $\frac{65536}{2}$ = 32768 समधारा के स्थान हैं।

नोट – अंक संदृष्टि में सर्वत्र उत्कृष्ट अनंतानंत स्वरूप केवलज्ञान का मान 65536 है।

3. विषमधारा – एक के अंक से प्रारम्भ कर 2–2 की वृद्धि को प्राप्त होते हुए केवलज्ञान से एक अंक हीन पर्यन्त विषमधारा होती है।

जैसे - 1,3,5,7 .... 65533, 65535 [केवलज्ञान से 1 अंक हीन]

प्रथम स्थान = 1 और **अन्तिम स्थान** = 65536–1 = 65535

शंका–इस धारा में अन्तिम स्थान केवलज्ञान से एक अंक हीन क्यों है?

समाधान–क्योंकि केवलज्ञान की संख्या समधारा के अन्तर्गत आती है, यदि एक अंक बढ़ाते हैं तो उत्कृष्ट का उल्लंघन होता है जो संभव नहीं है इसलिए एक अंक हीन कहें है।

शंका– विषमधारा के कुल स्थान कितने हैं?

समाधान–सर्वधारा के स्थानों में से समधारा के स्थान घटाने पर विषम धारा के स्थान प्राप्त होते हैं। अथवा विषमधारा के कुल स्थान $\frac{\text{केवलज्ञान}}{2}$ अर्थात् केवलज्ञान के आधे हैं। अर्थात् $\frac{65536}{2}$ = 32768

4. कृतिधारा – कृति नाम वर्ग का है। अत: जो संख्या वर्ग से उत्पन्न हो, अर्थात् किन्हीं भी संख्याओं का परस्पर में गुणा करने से जो संख्याऐं उत्पन्न हो उन्हें कृतिधारा कहते हैं।

जैसे - $(1)^2 = 1$, $(2)^2 = 4$, $(3)^2 = 9$ .... $(254)^2 = 64516$, $(255)^2 = 65025$, $(256)^2 = 65536$

प्रथम स्थान = 1 और **अंतिम स्थान** = 65536 [केवलज्ञान स्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत]

(5) अकृतिधारा – जो संख्याएँ स्वयं किसी के वर्ग से उत्पन्न नहीं होती वे संख्याएँ अकृतिधारा की हैं। कृतिधारा की संख्याओं के अतिरिक्त दो से प्रारम्भ कर एक कम केवलज्ञान पर्यन्त की सभी संख्याएँ इस धारा में है।

जैसे– 2,3,5,6,7, 8........ 65535।

*सर्वधारा के स्थान – कृतिधारा के स्थान = अकृतिधारा के स्थान।

प्रथम स्थान – 2, अन्तिम स्थान – 65535

(6) घनधारा – किसी भी संख्या को तीन बार परस्पर गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होती है, वह घनधारा की संख्या कहलाती है।

जैसे - $1 \times 1 \times 1 = 1$, $2 \times 2 \times 2 = 8$, $3 \times 3 \times 3 = 27$........ $40 \times 40 \times 40 = 64000$

प्रथम स्थान – 1, अन्तिम स्थान – 64000 (केवलज्ञान का आसन घनमूल)[3] (इसे आसन्न घन कहते हैं, जो केवलज्ञान के आधे 32768 के घनमूल 32 में 8 स्थानों को जोड़ने पर 40 प्राप्त हुआ। इस 40 का घन है, इससे ज्यादा 41 का घन केवलज्ञान से ज्यादा प्राप्त होता है, जो मान्य नहीं है।)

(7) अघनधारा – सर्वधारा में से घनधारा के स्थानों को कम कर देने पर केवलज्ञान पर्यन्त समस्त स्थान अघनधारा स्वरूप है।

जैसे - 2,3,4,5,6,7,9, ... 65535, 65536।

प्रथम स्थान – 2, अंतिम स्थान – 65536

(8) वर्गमातृक धारा – जो संख्या अपने वर्ग के द्वारा अन्य संख्या उत्पन्न कराने में माता के समान होती हैं उन्हें वर्ग मातृक धारा कहते हैं। जैसे 1,2,3,4,5,6...... 254, 255, 256 आदि।

प्रथम स्थान – 1, अन्तिम स्थान 256 ये सभी संख्याएँ नवीन नवीन संख्याओं को उत्पन्न कराती है।

शंका–वर्गमातृक धारा का अन्तिम स्थान 256 से आगे क्यों नहीं लिया?

समाधान–256 का वर्ग 65536 केवलज्ञान स्वरुप प्राप्त हो जाता है और एक अंक भी आगे बढ़ाते है तो वह केवलज्ञान का उल्लंघन करता है। जैसे–257 का वर्ग $(257)^2 = 66049$ प्राप्त होता है जो कि केवलज्ञान का उल्लंघन करता है।

(9) अवर्गमातृकधारा – जिन संख्याओं का वर्ग करने पर वर्ग संख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है, वे सब संख्याएँ अवर्गमातृक हैं।

जैसे - 257,258 65536

प्रथम स्थान – 257 अर्थात् एक अधिक केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल।

अंतिम स्थान – 65536 ।

(10) घनमातृकधारा – जो संख्याएँ माता के समान घन उत्पन्न करने में समर्थ हैं, उन्हें घनमातृकधारा कहते हैं।

जैसे - 1,2,3,4 40

प्रथम स्थान – 1, अन्तिम स्थान–40 (क्योंकि यह केवलज्ञान का आसन्नघनमूल स्वरूप है और 1 अंक भी अधिक लेने पर उसका घन केवलज्ञान से अधिक हो जाता है।) जैसे–41 का घन = 68291 प्राप्त होता है जो कि केवलज्ञान का उल्लंघन करता है।

(11) अघनमातृकधारा – जिन संख्याओं का घन करने पर घन रूप संख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है, वे सब संख्याएँ अघनमातृक धारा हैं।

जैसे - 41,42,43 65536

प्रथम स्थान – 41 (अर्थात् एक अधिक केवलज्ञान के आसन्नघनमूल), अंतिम स्थान – 65536 ।

(12) द्विरूपवर्गधारा – जिस धारा में दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व–पूर्व के स्थानों का वर्ग करते हुए उत्तर–उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं, उसे द्विरूपवर्गधारा कहते हैं।

जैसे - 2 का वर्ग 4, 4 का वर्ग = 16, 16 का वर्ग 256, 256 का वर्ग पणट्ठी, पणट्ठी का वर्ग बादाल, बादाल का वर्ग एकट्ठी..... केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण।

प्रथम स्थान – 4, अन्तिम स्थान – केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण।

नोट–द्विरूप वर्ग धारा के छटवें स्थान स्वरूप 2x2 4x4 16x16 256x256 पणट्ठी x पणट्ठी बादाल x बादल–1अर्थात् एकट्ठी–1 प्रमाणस्वरूप (18446744073709591616) श्रुत ज्ञान के अक्षरों का प्रमाण होता है अर्थात् एक कम अट्ठी 18446744073709591616–1=18446744073709591691 5 अक्षर सम्पूर्ण श्रुतज्ञान में होते हैं जो कि द्विरूप वर्ग धारा में प्राप्त नहीं होते हैं।

(13) द्विरूपघनधारा – द्विरूपवर्गधारा में जो–जो वर्ग राशि है, उन वर्ग रूप राशियों की जो घनरूप राशि है, वह द्विरूपघनधारा कहलाती है।

जैसे–2 का घन =8, 4 का घन = 64..............केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन।

प्रथम स्थान – 8, अन्तिम स्थान – केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन।

(14) द्विरूपघनाघनधारा – घनराशि का पुनः घन करने का नाम घनाघन है। द्विरूप वर्गधारा में जो–जो राशि वर्ग रूप है उस प्रत्येक राशि का घनाघन इस धारा में प्राप्त होता है।

जैसे - $[(2)^3]^3 = (8)^3 = 512$, ... केवलज्ञान के चतुर्थ व प्रथम वर्गमूल का गुणनफल।

प्रथम स्थान – 512, अन्तिम स्थान – केवलज्ञान का चतुर्थ व प्रथम वर्गमूल का गुणनफल।

शंका–केवलज्ञान के प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ वर्गमूल कौन–कौन से हैं?

समाधान– प्रथम वर्गमूल = 256 दूसरा वर्गमूल = 16

तृतीय वर्गमूल = 4 चतुर्थ वर्गमूल = 2 है।

शंका–द्विरूप घन धारा का अन्तिम स्थान निकालकर बताइए?

समाधान–इस धारा का अंतिम स्थान केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन बताया है। केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल =16 है इसका घन $(16)^3 = 4096$ प्राप्त होता है। इससे आगे 256 का घन केवलज्ञान का उल्लंघन करता है इसलिए 4096 को ही अन्तिम स्थान स्वीकार किया है।

शंका–द्विरूप घनाघन धारा का अंतिम स्थान निकालकर बताइए। (अंक संदृष्टि से)

समाधान–इस धारा का अंतिम स्थान केवलज्ञान का चतुर्थ व प्रथम वर्गमूल का गुणनफल कहा है। केवलज्ञान का चतुर्थ वर्गमूल=2 तथा प्रथम वर्गमूल =256 है। इनका गुणनफल (256X2) = 512 प्राप्त होता है। अत: इस धारा का प्रथम व अन्तिम स्थान 512 ही है, इससे आगे केवलज्ञान का उल्लंघन होता है।

जैसे– द्विरूपवर्ग धारा में 2 के बाद 4 आता है इसका घनाघन करने पर $(4^3)^3 = (64)^3 = 262144$ प्राप्त होता है जो केवलज्ञान का उल्लंघन करता है।

धाराओं की विशेषताएँ -

समधारा की विशेषता – समधारा में संख्यात, असंख्यात और अनन्त के जघन्य स्थान तो प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु संख्यात, असंख्यात के उत्कृष्ट स्थान प्राप्त नहीं होते हैं। जैसे – मान लीजिए – जघन्य संख्यात दो और जघन्य असंख्यात –16 है तथा जघन्य अनंत 256 है तो उत्कृष्ट संख्यात = 15, उत्कृष्ट असंख्यात 255 तथा उत्कृष्ट अनन्त 65536 है। यहाँ संख्यात, असंख्यात व अनन्त के जघन्य स्थान तो सम है इसलिए समधारा में प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु संख्यात, असंख्यात के उत्कृष्ट स्थान विषम होने से इस धारा में प्राप्त नहीं होते। किंतु अनंत का उत्कृष्ट स्थान सम होने से इस धारा में प्राप्त हो जाता है।

शंका–समधारा में केवलज्ञान के आधे ही स्थान क्यों हैं?

समाधान–सर्व संख्या में से आधे स्थान सम व आधे स्थान विषम होते हैं। जैसे – माना कि सर्वधारा की संख्या 100 है, इसमें से 50 स्थान सम व 50 स्थान विषम है।

विषमधारा की विशेषता – अंकसंदृष्टि की अपेक्षा से असंख्यात का जघन्य स्थान 16 और अनंत का जघन्य स्थान 256 है। इन दोनों में एक–एक अंक जोड़ने से विषमधारा में असंख्यात का जघन्य स्थान 16 + 1 = 17 तथा अनन्त का जघन्य स्थान 256 + 1 = 257 बन जाता है। लेकिन इस धारा में प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् सर्वधारा में संख्यात, असंख्यात के जो 15 और 255 के उत्कृष्ट स्थान थे, वही यहाँ विषमधारा में है अर्थात् इस विषमधारा में उत्कृष्ट असंख्यात और उत्कृष्ट संख्यात तो प्राप्त है; किन्तु जघन्य स्थान प्राप्त नहीं होते हैं।

※ विषमधारा के कुल स्थान केवलज्ञान के आधे अर्थात् = $\frac{\text{केवलज्ञान}}{2}$ हैं।

समधारा व विषमधारा के स्थानों का प्रमाण प्राप्त करने की विधि – दोनों धाराओं के स्थान केवलज्ञान के अर्ध प्रमाण [केवलज्ञान के आधे] होते हैं।

"आदि अन्ते सुद्धे, वड्ढिहिदे इमिजुगे ठाणा" इस करण सूत्रानुसार आदि और अन्त स्थान को शुद्ध करने अर्थात् आदि और अन्त के प्रमाण में जो अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण घटाना चाहिए। प्रत्येक स्थान

पर दो की वृद्धि हुई है, अत: 2 का भाग देकर जो लब्ध आवे उसमें एक जोड़ देने से स्थानों की प्राप्ति हो जाती है।

सम/विषम धारा के स्थान का सूत्र = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{वृद्धि (चय)}} + 1$

समधारा के स्थान = $\frac{\text{केवलज्ञान}-2}{2} + 1$

यहाँ – समधारा का अन्तिम स्थान = 65536, आदि स्थान = 2 है।
प्रत्येक स्थान पर वृद्धिचय 2 है।

अत: $= \frac{65536-2}{2} + 1$

$= \frac{65534}{2} + 1$

= 32767 + 1 = 32768 [ये केवलज्ञान के अर्धप्रमाण समधारा के स्थान हैं]

विषमधारा के स्थान = $\frac{\text{केवलज्ञान}-1}{2} + 1$

यहाँ विषमधारा का अन्तिम स्थान = 65536, आदिस्थान = 1 है।
प्रत्येक स्थान पर वृद्धिचय = 2 है।

अत: $= \frac{65536-1}{2} + 1$

$= \frac{65535}{2} + 1$

$= \frac{65536}{2} + 1 = 32768$ [ये केवलज्ञान के अर्धप्रमाण विषमधारा के स्थान हैं]

कृतिधारा की विशेषताएँ – एक से प्रारम्भ कर एक-एक की वृद्धि करते हुए केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल है। तो (256) इसके वर्गमूल प्रमाण तक के स्थान इस धारा के स्थान हैं।

❋ कृतिधारा के स्थान को तत्पद कहते हैं।

❋ कृतिधारा के कुलस्थान = केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल की संख्या प्रमाण हैं अर्थात् केवलज्ञान 65536 है तो इसका प्रथम वर्गमूल 256 होता है। अंक सदृष्टि से 256 ही इस धारा के स्थान है।

❋ इस धारा में जघन्य संख्यात, जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यतासंख्यात, जघन्य परीतानंत, जघन्य युक्तानन्त, उत्कृष्ट अनंतानंत है किन्तु उत्कृष्ट संख्यात,

उत्कृष्ट परीतासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट परीतानंत, उत्कृष्ट युक्तानंत के स्थान प्राप्त नहीं होते हैं।

शंका–उत्कृष्ट संख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात आदि संख्याएँ इस धारा में प्राप्त क्यों नहीं होती हैं ?

समाधान–क्योंकि, इस धारा में वे ही संख्याएँ प्राप्त होती हैं जो वर्ग से उत्पन्न होती हैं। उक्त सभी संख्याएँ वर्ग से उत्पन्न नहीं होती केवल 'व्यकलन विधि' से ही उत्पन्न होती है। जैसे – उत्कृष्ट संख्यात = जघन्य परीतासंख्यात – 1 है।

अंक संदृष्टि में सर्वधारा में उत्कृष्ट संख्यात 15 है और जघन्य परीतासंख्यात 16 है। अत: जघन्य परितासंख्यात – 1 अत: 16 – 1 = 15 [उत्कृष्ट संख्यात]

शेष सभी संख्याओं में इसी प्रकार लगा लेना चाहिए –

उत्कृष्ट परीतासंख्यात = जघन्य युक्तासंख्यात – 1

उत्कृष्ट युक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात – 1

उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात = जघन्य परितानंत – 1

उत्कृष्ट परीतानन्त = जघन्य युक्तानन्त – 1

उत्कृष्ट युक्तानन्त = जघन्य अनन्तानन्त – 1

ये संख्याएँ व्यकलन विधि से प्राप्त है, अत: इस धारा में नहीं आती है।

अकृतिधारा की विशेषताएँ – इस धारा में उत्कृष्ट संख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट परीतानन्त, उत्कृष्ट युक्तानंत आते हैं किन्तु उत्कृष्ट अनंतानंत और संख्यात, असंख्यात तथा अनंत के सभी जघन्य नहीं आते।

शंका–उत्कृष्ट अनंतानंत और सभी जघन्य संख्या इस धारा में प्राप्त क्यों नहीं होती ?

समाधान–क्योंकि ये सभी संख्याएँ वर्ग से उत्पन्न होती हैं और इस धारा में वर्ग से उत्पन्न होने वाली संख्याएँ नहीं आती है।

जैसे – जघन्य संख्यात = 2 [यह किसी के वर्ग से उत्पन्न नहीं हुई]

द्विरूप वर्ग धारा में संख्यात बार वर्ग करते–करते जघन्य परीतासंख्यात की प्राप्ति होती है इससे यह सिद्ध होता है कि जघन्य परीतासंख्यात वर्ग से उत्पन्न होती है।

माना जघन्य परीतासंख्यात = 16 है।

द्विरूप वर्ग धारा का प्रथम स्थान = 2 है।

$2^2 = 4, 4^2 = 16$

अत: यह संख्या अकृति धारा में उत्पन्न नहीं होती है।

इसी प्रकार जघन्य परितासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात, जघन्य परीतानन्त, जघन्य युक्तानंत, जघन्य अनंतानंत को भी जान लेना चाहिए।

घन व अघन धारा की विशेषताएँ – *64000 को केवलज्ञान का आसन्न घन कहते हैं, इसके घनमूल 40 को केवलज्ञान का आसन्न घनमूल कहते हैं।

*घनधारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के आसन्न घनमूल प्रमाण ही होते हैं।

जो राशियाँ घन से उत्पन्न नहीं होती वे राशियाँ अघन धारा में आती हैं।

*द्विरूप वर्गधारा में जिस वर्ग स्थान की वर्ग शलाका राशि सम होती है, उस वर्ग स्थान का अर्ध भाग नियम से घन रूप ही होता है।

जैसे – द्विरूपवर्ग धारा का द्वितीय स्थान 16 और चतुर्थ स्थान 65536 है, जिसकी वर्ग शलाकाएँ क्रमश: 2 और 4 हैं जो समरूप ही हैं, अत: 16 का अर्ध भाग 8 है, जो 2 के घन स्वरूप है। [2 × 2 × 2 = 8] और 65536 का अर्ध भाग 32768 है, जो 32 के घन स्वरूप है। अर्थात् [32×32× 32 = 32768]

❊ द्विरूप वर्गधारा में जिस वर्ग स्थान की वर्ग शलाकाएँ विषम होती हैं, उस राशि का (चौथाई) भाग घनरूप होता है।

जैसे – द्विरूप वर्गधारा के प्रथम स्थान 4 व तृतीय स्थान 256 की वर्ग शलाकाएँ क्रमश: 1 और 3 है जो विषम है। द्विरूप वर्गधारा का प्रथम स्थान 4 है, इसका चौथाई = 1 प्राप्त हुआ जो एक के घन स्वरूप है। तृतीय स्थान 256 है, इसका चौथाई $= \frac{256}{4} = 64$ प्राप्त हुआ जो 4 के घन स्वरूप है अर्थात् [4 × 4 × 4 = 64]।

Note – उपर्युक्त न्यायानुसार केवलज्ञान की वर्ग शलाका सम होने से केवलज्ञान का अर्धभाग घनरूप ही होता है, यह सिद्ध है।

❊ इस घनधारा के कुल स्थान केवलज्ञान के आसन्न मूल की संख्या प्रमाण हैं।

वर्गमातृक धारा की विशेषताएँ – एक से प्रारम्भ कर केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल पर्यन्त जितने स्थान हैं, उतने ही स्थान इस धारा के हैं।

❊ 21 प्रकार की संख्या प्रमाण में से इस धारा में मध्यम अनंतानंत का अन्तिम बहुभाग और उत्कृष्ट अनंतानंत नहीं पाया जाता है। शेष सभी संख्याएँ पाई जाती हैं।

अवर्गमातृक धारा की विशेषताएँ – इस अवर्गमातृक धारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल से रहित केवलज्ञान प्रमाण हैं।

❊ इस धारा में केवलज्ञान के अर्धच्छेद, वर्ग शलाका और वर्गमूल आदि नहीं पाये जाते हैं। क्योंकि ये क्रमश: 16, 4 और 256 है जो इस धारा के प्रथम स्थान से हीन है।

घनमातृक धारा की विशेषताएँ – एक से लेकर केवलज्ञान के आसन्न घनमूल पर्यन्त इस धारा के स्थान होते हैं।

❊ इस धारा में केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल तो पाया जाता है क्योंकि उसका घन केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल से गुणित द्वितीय वर्गमूल होता है, जो केवलज्ञान से कम है। किन्तु केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल नहीं पाया जाता, क्योंकि इसका घन केवलज्ञान से अधिक हो जाता है।

अघनमातृक धारा की विशेषताएँ – इस धारा के स्थान आसन्न घनमूल रहित केवलज्ञान प्रमाण हैं।

अघनमातृक धारा के स्थान = केवलज्ञान – केवलज्ञान के आसन्न घनमूल

= 65536–40 = 65496

❋ इस धारा में जघन्य संख्यात से लेकर जघन्य अनंतानंत तक का कोई भी स्थान नहीं है। उत्कृष्ट अनंतानंत है, किन्तु मध्यम अनंतानंत भजनीय है।

द्विरूप वर्ग धारा की विशेषताएँ – पूर्व–पूर्व का वर्ग करते हुए संख्यात स्थान–संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परीतासंख्यात की वर्गशलाका राशि, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है फिर उसका एक बार वर्ग करने पर जघन्य परीतासंख्यात की राशि इससे संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण आवली व आवली का वर्ग करने पर प्रतरावली की प्राप्ति होती है।

Note – जो राशि विरलन और देय के विधान से उत्पन्न होती है, उस राशि की वर्गशलाकाएँ और अर्धच्छेद इस धारा में नहीं मिलते। अर्थात् इस धारा में आवली की उत्पत्ति तो होती है किन्तु आवली की वर्गशलाकाएँ और उसके अर्धच्छेद राशियों की उत्पत्ति नहीं होती।

शंका–आवली की वर्ग शलाकाएँ व अर्धच्छेद इस द्विरूप वर्गधारा में क्यों प्राप्त नहीं होते हैं?

समाधान–माना आवली का प्रमाण = 256 है तो इसके अर्धच्छेद = 8 और वर्ग शलाकाएँ = 3 होती हैं। जो कि इस धारा में प्राप्त नहीं हैं। अत: इस धारा में आवली की वर्ग शलाकाएँ व अर्धच्छेद प्राप्त नहीं होते।

अब प्रतरावली से असंख्यात स्थान–असंख्यात स्थान आगे जाकर अद्धापल्य की वर्ग शलाकाएँ, फिर उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल, फिर अद्धापल्य प्राप्त होता है। इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर सूच्यंगुल तथा इसका वर्ग करने पर प्रतरांगुल व इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर जगत्श्रेणी का प्रथम घनमूल प्राप्त होता है। परन्तु सूच्यंगुल व प्रतरांगुल की वर्ग शलाकाएँ व अर्धच्छेद उत्पन्न नहीं होते क्योंकि ये विरलन, देय से उत्पन्न हुई राशियाँ है।

Note – जगच्छ्रेणी द्विरूप घनधारा में प्राप्त होती है, द्विरूप वर्गधारा में नहीं।

अब जगच्छ्रेणी के घनमूल से असंख्यात–असंख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परितानंत की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद फिर उसी का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है फिर इसका वर्ग करने पर जघन्य परितानंत प्राप्त होता है। इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य युक्तानंत तथा इसका वर्ग करने पर जघन्य अनंतानंत की उत्पत्ति होती है। इससे अनंत स्थान–अनंत स्थान आगे जाकर जीव राशि की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर जीवराशि का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे अनन्त–अनन्त स्थान आगे जाकर पुद्गल राशि की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर पुद्गल राशि का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे अनन्त स्थान–अनंत स्थान आगे जाकर काल के समयों की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर काल के जितने समय हैं, उनका प्रमाण प्राप्त होता है। काल के समय प्रमाण से अनन्त–अनन्त स्थान आगे जाकर श्रेणी रूप आकाश की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर आकाश श्रेणी तथा इसका वर्ग करने पर प्रतराकाश उत्पन्न होता है।

प्रतराकाश से उत्तरोत्तर अनन्त स्थान आगे-आगे जाकर क्रमश: धर्म-अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, सूक्ष्म निगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीव के पर्याय नामक जघन्य लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद, तिर्यंच गति में असंयत सम्यग्दृष्टि जीव के जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि के अविभागी प्रतिच्छेद, केवलज्ञान की वर्ग शलाकाओं का प्रमाण, उसी के अर्धच्छेद, उसी का अष्टम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर केवलज्ञान का सप्तम वर्गमूल, इस प्रकार वर्ग करते-करते षष्ठम, पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम वर्गमूल तथा इसका भी वर्ग करने पर केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। यही द्विरूपवर्गधारा का अन्तिम स्थान है।

❋ केवलज्ञान की वर्ग शलाकाओं का जितना प्रमाण है, उतना ही प्रमाण द्विरूपवर्गधारा के समस्त स्थानों का है।

❋ इस द्विरूपवर्गधारा के मध्यम स्थानों में निम्नलिखित 20 राशियाँ प्राप्त होती हैं –

(1) जघन्य परीतासंख्यात, (2) जघन्य युक्तासंख्यातप्रमाण रूप आवली, (3) जघन्य असंख्यातासंख्यात रूप प्रतरावली, (4) अद्धापल्य, (5) सूच्यंगुल, (6) प्रतरांगुल, (7) जगत्श्रेणी का घनमूल, (8) जघन्य परीतानंत, (9) जघन्य युक्तानंत (अभव्य राशि), (10) जघन्य अनंतानंत, (11) सम्पूर्ण जीव राशि, (12) सम्पूर्ण पुद्गल राशि, (13) सम्पूर्ण काल के समय, (14) श्रेणी आकाश, (15) प्रतराकाश, (16) धर्म-अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, (17) एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेद, (18) सूक्ष्म निगोदिया जीव के लब्ध्यक्षर पर्याय श्रुतज्ञान के अविभागी-प्रतिच्छेद, (19) असंयत तिर्यंच के जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व रूप जघन्य लब्धि के अविभागी प्रतिच्छेद, (20) केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद।

शंका–अविभागी प्रतिच्छेद किसे कहते हैं?

समाधान–जिस शक्त्यंश का दूसरा भाग न किया जा सके, उसे अविभागी प्रतिच्छेद कहते हैं।

(13) द्विरूपघनधारा – द्विरूपवर्गधारा में जिस सम संख्या की जो-जो वर्ग रूप राशि है उस-उस संख्या की जो घन रूप राशि है, उसकी धारा को द्विरूप घनधारा कहते हैं।

जैसे – द्विरूप वर्गधारा का प्रथम स्थान 4 है जो दो का वर्ग है इसी 2 का घन $(2 \times 2 \times 2) = 8$, अत: द्विरूप घनधारा का प्रथम स्थान 8 है।

❋ इसी प्रकार द्विरूप वर्गधारा का दूसरा स्थान 16 है जो 4 का वर्ग है, इसी 4 का घन $(4 \times 4 \times 4) = 64$ है, अत: इस धारा का दूसरा स्थान 64 है जो इसी धारा के प्रथम स्थान 8 के वर्ग स्वरूप (8×8) है।

❋ इसी प्रकार द्विरूप वर्गधारा का तीसरा स्थान 256 है जो 16 का वर्ग है, इसी 16 का घन $(16 \times 16 \times 16) = 4096$ है, अत: इस धारा का तीसरा स्थान 4096 है जो इसी धारा के दूसरे स्थान 64 के वर्ग (64×64) स्वरूप है।

इसी प्रकार पूर्व-पूर्व की राशि का वर्ग करते हुए उत्तर-उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परीतासंख्यात का घन प्राप्त होता है। इससे संख्यात स्थान आगे जाकर आवली

का घन उत्पन्न होता है। आवली के घन का एक बार वर्ग करने पर प्रतरावली का घन प्राप्त होता है अब इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर पल्य की वर्ग शलाकाओं का घन, उसी के अर्धच्छेदों का घन, उसी पल्य के प्रथम वर्गमूल का घन प्राप्त होता है। अब इसका वर्ग करने पर पल्य का घन प्राप्त होता है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर घनांगुल, जगतुश्रेणी की प्राप्ति होती है। और इसका वर्ग करने पर जगत्प्रतर उत्पन्न होता है।

जगत्प्रतर से अनन्त-अनन्त स्थान आगे जाकर जीवराशि की वर्ग शलाकाओं का घन, उसी के अर्धच्छेदों का घन, उसी के प्रथम वर्गमूल का घन प्राप्त होता है। इसका एक बार वर्ग करने पर जीवराशि के घन, इससे अनन्त स्थान आगे जाकर सर्वाकाश का प्रथम वर्गमूल, इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वाकाश की उत्पत्ति होती है। सर्वाकाश राशि के आगे निरन्तर अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन उत्पन्न होता है। यही इस धारा का अन्तिम स्थान है। यह केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल और प्रथम वर्गमूल का परस्पर गुणा करने से उत्पन्न राशि के सदृश है।

जैसे - केवलज्ञान स्वरूप 65536 के द्वितीय वर्गमूल 16 का घन 4096 है। और 65536 के प्रथम वर्गमूल 256 में द्वितीय वर्गमूल 16 का गुणा [256 × 16] करने पर भी 4096 की प्राप्ति होती है।

सूत्र – केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन = केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल x द्वितीय वर्गमूल

शंका–केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल का घन ही इस धारा का अन्तिम स्थान कैसे है ?

समाधान–द्विरूप वर्गधारा की चरम राशि केवलज्ञान है और द्विचरमराशि केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल है। इन दोनों राशियों के घन को यहाँ ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि इनके घन को ग्रहण करने से केवलज्ञान से अधिक प्रमाण वाली राशि की प्राप्ति होने का प्रसंग प्राप्त होता है। अत: इस धारा के अन्तिम स्थान केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन ही ग्रहण किया गया है।

❊ इस धारा के समस्त स्थान दो कम केवलज्ञान की वर्गशालाका प्रमाण है।

❊ इस धारा का प्रथम स्थान = 8, अन्त स्थान - केवलज्ञान के वर्गमूल का घन है।

और द्विरूपवर्गधारा के सभी मध्यम स्थान घन स्वरूप होकर इस धारा के मध्यम स्थान बन जाते हैं।

(14) द्विरूपघनाघन धारा – द्विरूप वर्गधारा में जिन-जिन संख्याओं की वर्गरूप राशियाँ हैं, उन-उन संख्याओं का घनाघन ही इस धारा में प्राप्त होता है। घन के घन को घनाघन कहते हैं। जैसे – द्विरूपवर्ग धारा का प्रथम स्थान (2) है। इस दो का घनाघन 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 × 2 = 512 है, जो इस धारा का प्रथम स्थान है। इसी 512 का वर्ग [512 × 512] = 262144 इस धारा का दूसरा स्थान है, जो द्विरूप वर्गधारा का दूसरा स्थान 4 के घनाघन [4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4 × 4] = 262144 स्वरूप है।

इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण स्वरूप लोक उत्पन्न होता है। इस लोक की वर्गशलाकादि इस धारा में नहीं आती। लोक के प्रमाण से असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर गुणकार शलाका राशि उत्पन्न होती है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर तेजस्काय जीव राशि की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर तेजस्कायिक जीव राशि की संख्या उपलब्ध होती है।

शंका–तेजस्कायिक जीव राशि कैसे उत्पन्न होती है ?

समाधान–लोक प्रमाण राशि तथा लोक प्रमाण ही शलाका राशि है तब लोक प्रमाण राशि का विरलन कर उसी को देय देकर परस्पर गुणा करना चाहिए, तब शलाका राशि में से एक अंक घटा देना चाहिए। यहाँ पर गुणकार शलाकाएँ एक कम लोक प्रमाण मात्र होती है। अत: पुन: प्राप्त राशि का विरलन कर उसी को देकर परस्पर गुणा करना चाहिए, तब फिर शलाका राशि में से एक अंक घटा देना चाहिए। इस प्रकार पुन: पुन: विरलन, देय, गुणन और ऋण की क्रिया करते हुए लोक प्रमाण शलाका राशि समाप्त करने को एक बार शलाका निष्ठापन कहते हैं।

इस प्रकार जो महाराशि उत्पन्न हुई है उस महाराशि की शलाका रूप में स्थापन करें, उसका विरलन देय देकर गुणा करें व शलाका में एक शलाका कम करें उसके पश्चात् जो राशि उत्पन्न हो उसका विरलन देय देकर गुणा करें और शलाका में से एक शलाका कम करें इस प्रकार सम्पूर्ण शलाका इसी विधि से समाप्त करें।

इसी विधि से तीन बार शलाका त्रय निष्ठापन करके पुन: चतुर्थ बार प्राप्त हुई। महाराशि को विरलन और देय देकर परस्पर गुणा करने पर प्राप्त हुई महाराशि में से अन्योन्याभ्यस्त राशि को घटाने पर प्राप्त हुई महाराशि को शलाका रूप में स्थापित करना चाहिए तथा जो पूर्व में (चतुर्थ बार) प्राप्त राशि का विरलन, देय, गुणन के द्वारा शलाका निष्ठापन करने पर जितनी गुणकार राशि उत्पन्न होगी वही राशि तेजस्कायिक जीव राशि है।

शंका–गुणकार शलाकाएँ किसे कहते हैं ?

समाधान–तेजस्कायिक जीव राशि का प्रमाण प्राप्त करने के विधान में लोक का जितनी बार परस्पर गुणा किया गया है, उतनी गुणाकार शलाकाएँ होती हैं।

शंका–अन्योन्याभ्यस्त राशि किसे कहते हैं ?

समाधान–जितनी बार शलाका निष्ठापन होती है उतने अंक प्रमाण राशि को अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे – प्रथम शलाका त्रय निष्ठापन में लोक प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि है, द्वितीय शलाका त्रय निष्ठापन में असंख्यात लोक प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि हो जाती है, तृतीय में भी असंख्यात लोक प्रमाण राशि हो जाती है। अथवा शलाका प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है।

संवर्गित – 1 को भी गुणकार शलाका कहते हैं।

जैसे – $(\text{लोक})^{\text{लोक}} - 1$ [यह 1 अन्योन्याभ्यस्त राशि हुई]

$= [\text{असंख्यात लोक}]^{\text{असंख्यात लोक}}$

इससे असंख्यात–असंख्यात स्थान आगे जाकर तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति की वर्गशलाकाएँ, उसी की अर्धच्छेद शलाकाएँ, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है।

शंका–तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान–पृथ्वी, जल आदि अन्य काय से आकर तेजस्कायिक में उत्पन्न हुए किसी एक जीव का

उत्कृष्ट रूप से तेजस्कायिक पर्याय को छोड़े बिना उसी में अवस्थित रहने का जितना काल है अर्थात् उस काल के जितने समय है वह तेजस्कायिक जीव की काय स्थिति है।

इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर सर्वावधि ज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्र की वर्ग शलाकाएँ, उसी क्षेत्र की अर्धच्छेद शलाकाएँ, उसी क्षेत्र का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वावधि ज्ञान के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र के प्रदेशों का प्रमाण प्राप्त होता है। [जो असंख्यात लोक प्रमाण है। यद्यपि अवधिज्ञान रूपी पदार्थ को जानता है और रूपी पदार्थ लोक के बाहर नहीं है, अत: अवधिज्ञान का क्षेत्र लोक मात्र है, तथापि शक्ति की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण क्षेत्र कहा गया है।] इस सर्वावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र प्रमाण से असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर स्थितिबंध के कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर कषाय परिणामों के स्थानों की उत्पत्ति होती है अर्थात् आठों कर्मों के स्थितिबन्ध के कारणभूत परिणामों का जितना प्रमाण है उतनी संख्या प्राप्त होती है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका वर्ग करने पर ज्ञानावरणादि कर्मों के तीव्रादि शक्ति लक्षण वाले अनुभाग बन्ध में कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर निगोद शरीरों की वर्गशलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर निगोद जीवों के समस्त शरीरों की उत्कृष्ट संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे असंख्यात-असंख्यात स्थान आगे जाकर निगोदकाय स्थिति की वर्ग शलाकाएँ उसी के अर्धच्छेद, उसी के प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर निगोदकाय स्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है।

शंका-निगोद कायस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान-निगोद शरीर रूप से परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं का उस आकार को छोड़े बिना उत्कृष्ट काल तक निगोद शरीरपने से अवस्थित रहने का नाम निगोद काय स्थिति है अर्थात् उस उत्कृष्ट काल के समयों का ग्रहण करना चाहिए।

निगोद काय स्थिति के प्रमाण से असंख्यात लोक प्रमाण वर्ग स्थान-असंख्यात लोक प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों की वर्ग शलाकाएँ, उसी के अर्धच्छेद, उसी का प्रथम वर्गमूल तथा इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है। इससे अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान के चतुर्थ वर्गमूल (2) के घन (8) को इसी चौथे वर्गमूल के घन के वर्ग [$2 \times 2 \times 2 = 8^2 = 64$] से गुणा करने पर [$8 \times 64$] = 512 इस धारा का अन्तिम स्थान प्राप्त होता है।

अर्थात् केवलज्ञान का चतुर्थ वर्गमूल × केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल

$2 \times 256 = 512$ इस धारा का अन्तिम स्थान है।

* घनाघन धारा के समस्त स्थानों का प्रमाण = केवलज्ञान की वर्गशलाओं से चार कम स्थान होते हैं।

शंका-512 ही इस द्विरूप घनाघन धारा का अन्तिम स्थान क्यों है ?

समाधान-केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल [256], दूसरा वर्गमूल [16], तीसरा वर्गमूल [4] और

अन्तिम स्थान स्वयं केवलज्ञान [65536] इन चारों स्थानों का घनाघन इस धारा में संभव नहीं है, क्योंकि इन चारों का घनाघन का प्रमाण केवलज्ञान के प्रमाण से अधिक हो जाता है। *1

द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा, द्विरूपघनाघन इन तीनों धाराओं में पाये जाने वाले विशेष नियम :-

नियम नं. 1-जिस धारा में विरलन, देयक्रम से जो राशि उत्पन्न होती है, उस राशि की वर्गशलाका और अर्धच्छेद उसी धारा में नहीं प्राप्त हो सकते।

जैसे - माना अंक संदृष्टि में विरलन राशि = 16, देयराशि = 16 अत: 16 का विरलन कर, देय देकर गुणा करने पर एकट्ठी का प्रमाण प्राप्त होता है।

16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16×16

1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1 1

=18446744070616

इस एकट्ठी के अर्धच्छेद = 64 हैं, वर्गशलाकाएँ = 6 हैं, जो कि द्विरूप वर्गधारा में नहीं मिलेगी किन्तु एकट्ठी मिलेगी। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

*1 यहाँ संख्या का मान बहुत छोटा होने के कारण घनाघन धारा के स्थान बनाने में असमर्थ हैं अन्यथा घनाघन धारा के प्रथम स्थान 512 है और इसके आगे अनंत स्थान है जो ऊपर दर्शाये गये हैं।

नियम नं. 2 तीनों धाराओं के स्वस्थान में, वर्ग से ऊपर वाले वर्ग मे अर्धच्छेद नियम से दुगुने-दुगुने होते हैं और परस्थान में तिगुने-तिगुने होते हैं।

स्वस्थान - जहाँ निजधारा की अपेक्षा होती है, उसे स्वस्थान कहते हैं।

परस्थान - जहाँ परधारा की अपेक्षा होती है, उसे परस्थान कहते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा अर्धच्छेद दुगुने-दुगुने होते हैं - जैसे - द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान 4 है और इसके अर्धच्छेद 2 हैं। इसके ऊपर दूसरा स्थान 16 है, जिसके अर्धच्छेद 4 हैं जो दो के दुगुने हैं। इसके ऊपर तीसरा स्थान 256 है, जिसके अर्धच्छेद 8 हैं जो 4 के दुगुने हैं। इसी प्रकार आगे जानना चाहिए। द्विरूपघनधारा का प्रथम स्थान 8 है, अर्धच्छेद 3 है। इसी धारा का दूसरा स्थान 64 है, अर्धच्छेद 6 हैं जो प्रथम स्थान से दुगुने हैं। आगे-आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

द्विरूपघनाघन धारा का प्रथम स्थान 512 है, अर्धच्छेद 9 हैं। इसी धारा का दूसरा स्थान 2,62,144 हैं, अर्धच्छेद 18 हैं जो प्रथम स्थान से दुगुने हैं। इसी प्रकार आगे जानना चाहिए।

परस्थान की अपेक्षा अर्धच्छेद तिगुने-तिगुने होते हैं - जैसे - द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान 4 के अर्धच्छेद 2 हैं तथा द्विरूप घनधारा के दूसरे स्थान 64 के अर्धच्छेद 6 हैं जो 2 से तिगुने है। द्विरूपवर्गधारा के दूसरे स्थान 16 के अर्धच्छेद 4 हैं तथा द्विरूपघनधारा के तीसरे स्थान 4096 के अर्धच्छेद 12 हैं, जो 4 के तिगुने है। इसी प्रकार परस्थानापेक्षा नीचे के स्थान से ऊपर के स्थान के अर्धच्छेद नियम से तिगुने-तिगुने होते हैं।

यह नियम तीनों धाराओं में जानना चाहिए। विशेष यह है कि द्विरूपघनधारा से द्विरूपघनाघन धारा में

उसी स्थान पर अर्धच्छेद तिगुने होते हैं। द्विरूपघनधारा का प्रथम स्थान 8 उसके अर्धच्छेद 3 हैं और द्विरूपघनाघन धारा का प्रथम स्थान 512 है, उसके अर्धच्छेद 9 हैं जो 3 से तिगुने हैं।

नियम नं. 3– वर्ग स्थान से ऊपर के वर्ग स्थान की वर्गशलाकाएँ स्वस्थान में नियम से एक अधिक होती है तथा परस्थान में अपने सदृश ही होती है। जैसे द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान 2 का वर्ग 4 है। सब की वर्गशलाका 1 है, इसका स्थान 4 इसका वर्ग 16 है। इसकी वर्गशलाकाएँ 2 हैं, उसी प्रकार द्विरूपघनधारा में द्वितीय स्थान 8 के वर्ग 64 की वर्गशलाका 1 है, तीसरे स्थान 64 के वर्ग 4096 की वर्गशलाकाएँ 2 हैं। द्विरूपघनाघन धारा में द्वितीय स्थान 512 के वर्ग 262144 की एक वर्गशलाका एक और 262144 के वर्ग की दो वर्ग शलाकाएँ होती हैं। इस प्रकार स्वस्थान में उत्तरोत्तर स्थान की वर्गशलाका 1 अधिक है। परस्थान में वर्गशलाकाएँ समान होती हैं। अर्थात् द्विरूपवर्गधारा के प्रथम स्थान की वर्गशलाका 1, द्विरूपघनधारा के द्वितीय स्थान की वर्गशलाका 1 और द्विरूपघनाघन धारा के द्वितीय स्थान की वर्गशलाका 1 है, जो की परस्पर समान है।

नियम नं. 4– अर्धच्छेद निकालने का नियम-जितनी वर्ग शलाकाएँ हैं, उतनी बार 2 लिखकर परस्पर में गुणा करने से उसी राशि के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं। जैसे – 256 की 3 वर्ग शलाकाएँ हैं अत: $2 \times 2 \times 2 = 8$ अर्धच्छेद प्राप्त हुए अर्थात् 256 के आठ अर्धच्छेद होते हैं।

यह नियम केवल द्विरूपवर्गधारा के लिए ही है, द्विरूपघनधारा व द्विरूपघनाघन धारा के लिए नहीं है।

नियम नं. 5– राशि निकालने का नियम – राशि के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनी बार 2 लिखकर परस्पर गुणा करने से विवक्षित राशि प्राप्त होती है। जैसे – 256 के 8 अर्धच्छेद हैं, अत: 2 को (8 बार) $2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 256$ अथवा $2^8 = 256$ विवक्षित राशि प्राप्त हुई। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

नियम नं. 6– दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व-पूर्व का जितनी बार वर्ग करने पर विवक्षित राशि उत्पन्न हो उस राशि की वे वर्गित बार वर्गशलाकाएँ कहलाती हैं। जैसे – दो को एक बार वर्ग करने पर $[2^2 = 2 \times 2] = 4$ की उत्पत्ति हुई, अत: 4 की एक वर्गशलाका कहलाई। दो को दो बार वर्ग करने पर $(2)^2 = 2 \times 2 = 4$, $(4)^2 = 4 \times 4 = 16]$ 16 की उत्पत्ति हुई, अत: 16 की दो वर्गशलाकाएँ हुई। दो का तीन बार वर्ग करने से $(2)^2 = 2 \times 2 = 4$, $(4)^2 = 4 \times 4 = 16$, $(16)^2 = 16 \times 16 = 256$ की उत्पत्ति हुई, अत: 256 की तीन वर्गशलाकाएँ हुई। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है। विशेषता यह है कि द्विरूपघनधारा में दो के घन से तथा द्विरूपघनाघन धारा में दो के घनाघन से प्रारम्भ कर पूर्व-पूर्व का जितनी बार वर्ग किया जाएगा उतनी वर्गशलाकाएँ होती हैं। जैसे – दो का घन 8 है, अत: 8 का एक बार वर्ग करने से $8 \times 8 = 64$ की उत्पत्ति हुई, अत: 64 की एक वर्ग शलाका हुई। 8 का दो बार वर्ग करने पर $(8^2)^2 = 8 \times 8 = 64$, $(64)^2 = 64 \times 64 = 4096$ की उत्पत्ति हुई, अत: 4096 की दो वर्गशलाकाएँ हुई। इसी प्रकार घनाघन धारा में दो का घनाघन 512 है, अत: 512 का एक बार वर्ग करने से $(512)^2 = 512 \times 512 = 262144$ की उत्पत्ति हुई। अत: इसकी एक वर्गशलाका हुई, क्योंकि एक बार वर्ग से उत्पन्न हुई है।

नियम नं. 7– विवक्षित राशि के अर्धच्छेदों के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनी ही उस राशि की वर्ग

शलाकाएँ होती हैं। जैसे – 256 के अर्धच्छेद 8 और 8 के अर्धच्छेद 3 हुए, अत: 256 की तीन वर्ग शलाकाएँ हुई। यह नियम मात्र द्विरूपवर्गधारा में ही है, अन्य दो धाराओं में नहीं है।

नियम नं. 8– विवक्षित राशि को जितनी बार आधा करते–करते एक अंक रह जाय, उतने उस राशि के अर्धच्छेद कहलाते हैं। जैसे – 256 को 8 बार अथवा आधा–आधा करने पर एक अंक रहता है, अत: 256 के 8 अर्धच्छेद हुए। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

नियम नं. 9– तीनों धाराओं में क्रम से संख्यात, असंख्यात और अनन्त वर्ग स्थान आगे जाकर संख्यात, असंख्यात और अनन्त की उत्पत्ति होती है। अर्थात् जघन्य असंख्यातासंख्यात रूप राशि पर्यन्त तो संख्यात वर्ग स्थान आगे जाते हैं, इसके ऊपर जघन्य अनंतानंत रूप राशि पर्यन्त असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाते हैं। इसके ऊपर केवल ज्ञान पर्यन्त अनंत वर्ग स्थान आगे जाते हैं। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

शंका–जिस राशि की वर्गशलाकाएँ 4 हैं तो वह विवक्षित राशि कौन सी है तथा उसके अर्धच्छेद कितने हैं?

समाधान–उस राशि के अर्धच्छेद – $2 \times 2 \times 2 \times 2 = 16$ [जितनी वर्गशलाकाएँ होती हैं उतनी बार 2 लिखकर गुणा करने पर अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं।]

वह विवक्षित राशि है – $2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 65536$ (जितने अर्धच्छेद है उतनी बार 2 लिखकर गुणा करने पर) अथवा $(2)^{16} = 65536$ अथवा 2 का उत्तरोत्तर अर्थात् जितनी वर्ग शलाकाएँ हैं, उतनी बार वर्ग करने पर –

$(2)^2 = 4, (4)^2 = 16, (16)^2 = 256, (256)^2 = 65536$

शंका–किसी राशि के अर्धच्छेद 12 हैं तो वह राशि कौन सी है तथा उसकी वर्ग शलाकाएँ कितनी हैं?

समाधान–विवक्षित राशि – $2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 = 4096$

अथवा – $(2)^{12}$ – 4096

❉ विवक्षित राशि की वर्ग शलाकाएँ – विवक्षित राशि 4096 द्विरूपघनधारा की है। अत: 2 का घन 8 है, 8 का दो बार वर्ग करने पर $8 \times 8 = 64$, $64 \times 64 = 4096$ प्राप्त होता है, अत: 4096 की 2 वर्ग शलाकाएँ हुई।

शंका– 4096 की वर्गशलाकाएँ व अर्धच्छेद बताइए।

समाधान–16 राशि द्विरूपघनधारा की है इसकी वर्गशलाकाएँ = 2 का 2 बार वर्ग करने पर अर्थात् $[(2)^2]^2 = 16$ की उत्पत्ति होती है, अत: 16 की 2 वर्गशलाकाएँ हुई क्योंकि 2 बार वर्ग से उत्पन्न हुई है।

❉ विवक्षित राशि के अर्धच्छेद = $16 \div 2 = 8$, $8 \div 2 = 4$, $4 \div 2 = 2$, $2 \div 2 = 1$ अर्थात् विवक्षित राशि को आधा–आधा करने पर एक रह जाए, जितनी बार आधा किया उतनी बार को अर्धच्छेद

कहते हैं। अत: विवक्षित राशि चार बार आधा करने पर 1 प्राप्त हुई तो विवक्षित राशि के अर्धच्छेद = 4 हुए।

※ 4096 द्विरूपघनधारा की राशि है इसकी वर्गशलाकाएँ = 2 का घन 8 है, 8 का दो बार वर्ग करने पर अर्थात् $[(8)^2]^2 = 4096$ की उत्पत्ति होती है अत: 4096 की 2 वर्गशलाकाएँ हुई क्योंकि 2 बार वर्ग करने से उत्पन्न हुई है।

※ विवक्षित राशि के अर्धच्छेद = 4096 को 12 बार आधा-आधा करने पर 1 प्राप्त हुआ अत: विवक्षित राशि के 12 अर्धच्छेद हुए।

※ 262144 द्विरूपघनाघनधारा की राशि है इसकी वर्गशलाकाएँ = 2 का घनाघन 512 है, 512 का एक बार वर्ग करने पर $[512]^2 = 262144$ की उत्पत्ति हुई अत: 262144 की एक वर्गशलाका हुई क्योंकि एक बार वर्ग से उत्पन्न हुई है।

※ 262144 को 18 बार आधा-आधा करने पर 1 प्राप्त हुआ अत: विवक्षित राशि के 18 अर्धच्छेद हुए।

नोट- संख्या प्रमाण का कथन करने के बाद अब आगे उपमा प्रमाण का कथन करेंगे।

स्वाद स्वस्थता को खत्म करता है
और स्वार्थ निर्मलता को खत्म करता है।

अध्याय – 6

उपमा प्रमाण

उपमा शब्द की परिभाषा– प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। उनके स्वरूप निर्णय करने के लिए हम जो कुछ भी दृष्टान्त देकर शब्दों द्वारा उसे मापने का प्रयास करते हैं, उस मापने को उपमा प्रमाण कहते हैं। 'उप' अर्थात् उपचार से, 'मा' अर्थात् माप करे, अर्थात् उपचार से जो माप करे वह उपमा है।

उपचार से मापने का भाव यह है कि एक वस्तु के गुण–धर्म किसी दूसरी वस्तु में तो पाये नहीं जाते हैं, इसलिए आकार, दीप्ति, स्वभाव आदि धर्मों में थोड़ी बहुत समानता होने पर भी किसी एक वस्तु के द्वारा दूसरी वस्तु का ठीक कथन तो नहीं हो सकता है फिर भी दृष्टान्त द्वारा दूसरी वस्तु का कुछ न कुछ अनुभव या परिज्ञान अवश्य हो जाता है। इसलिए इस प्रक्रिया को उपमा कहते हैं।

'उप' का अर्थ पास भी होता है अर्थात् ऐसा कोई पदार्थ जिसके लिए उसकी उपमा दी जाती है, पास का अर्थात् उसका ठीक तरह से बोध कराने वाला होना चाहिए।

उपमा प्रमाण आठ प्रकार का होता है – (1) पल्य, (2) सागर, (3) सूच्यंगुल, (4) प्रतरांगुल, (5) घनांगुल, (6) जगच्छ्रेणी, (7) जगत्प्रतर, (8) लोक।

(1) पल्य के भेद – पल्य के तीन भेद हैं – (1) व्यवहार पल्य, (2) उद्धार पल्य, (3) अद्धा पल्य।

(i) व्यवहार पल्य – आदि के पल्य को व्यवहार पल्य कहते हैं। क्योंकि यह आगे के दो पल्यों का मूल है। एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े और एक ही योजन गहरे कुण्ड को उत्तम भोग-भूमि में जन्मा सात दिन की आयु के मेमने के रोमों के अग्र भाग के बराबर खण्डों से भरने पर, तथा प्रत्येक 100 वर्ष बाद एक-एक रोम निकालने पर जितने काल में सम्पूर्ण रोम समाप्त हो उतने काल के समयों की संख्या व्यवहार पल्य के समयों की संख्या है। इस व्यवहार पल्य की संख्या का माप किया जाता है। वह निम्न प्रकार से है–

व्यवहार पल्य में वर्ष = 1 प्रमाण योजन गोल व गहरे गर्त में 1–7 दिन तक के उत्तम भोगभूमिया भेड़ के बच्चे के बालों के अग्रभागों का प्रमाण × 100 वर्ष = $\times 4^3 \times 2000^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 6^3 \times 500^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3$ = 45 अंक प्रमाण बालाग्र × 100 वर्ष अथवा 4134, 5263, 0308, 2031, 7774, 9512, 192000000000000000000 × 100 वर्ष

अथवा

नोट–पल्य के रोमखण्ड निकालने की बृहद् विधि आगे पृष्ठ संख्या 61 पर दी जा रही है वहाँ से जानें।

(ii) उद्धार पल्य – असंख्यात वर्षों के जितने समय है उतने-उतने खण्ड व्यवहार पल्य के प्रत्येक रोम के करना। इन समस्त रोम के खण्डों का समूह ही उद्धार पल्य के रोमों का प्रमाण है तथा जितना उद्धार पल्य के रोमों का प्रमाण है उतना ही उद्धार पल्य के समयों का प्रमाण है। अथवा यों कहें कि एक-एक समय में

एक-एक रोम निकालते हुए जितने समयों में उद्धार पल्य के सम्पूर्ण रोम खण्ड समाप्त हो उतने ही समयों का एक उद्धार पल्य होता है। व्यवहार पल्य × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि = उद्धार पल्य। इस उद्धार पल्य से द्वीप समुद्रों का माप किया जाता है।

उद्धार पल्य के समय = उपरोक्त 45 अंक प्रमाण रोमों की संख्या x100 = 47 अंक प्रमाण वर्षों के समय x असंख्यात वर्षों के समय।

(iii) अद्धापल्य – उद्धार पल्य के सम्पूर्ण रोमों में से प्रत्येक रोम के असंख्यात वर्षों के समय प्रमाण खण्ड करने से अद्धापल्य के रोम खण्डों का प्रमाण प्राप्त होता है तथा अद्धापल्य के रोमखण्डों का जितना प्रमाण है उतने ही समयों का एक अद्धापल्य होता है। अथवा-एक-एक समय में एक-एक रोमखण्ड ग्रहण करते हुए जितने काल में अद्धापल्य के समस्त रोम समाप्त हो जाय, उतना ही काल अद्धापल्य का है। यहाँ पर मध्यम असंख्यात प्रयोजनीय है।

अद्धा और काल स्थिति ये एकार्थवाची शब्द हैं।

उद्धार पल्य × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि = अद्धा पल्य। इस अद्धा पल्य से नारकी, तिर्यंच, देव व मनुष्यों की कर्म स्थिति, भव स्थिति, आयु स्थिति, काय स्थिति का माप किया जाता है।

अद्धा पल्य के समय = उद्धार पल्य के उपरोक्त समय × असंख्यात वर्षों के समय।

(2) सागर – सागर भी काल को मापने की एक इकाई है, सागर पल्यों से बहुत बड़ा होता है। सागर के तीन भेद हैं – (i) व्यवहार सागर, (2) उद्धार सागर, (3) अद्धा सागर।

(i) व्यवहार सागर – व्यवहार पल्य × 10 कोड़ा कोड़ी = एक व्यवहार सागर।

(ii) उद्धार सागर – उद्धार पल्य × 10 कोड़ा कोड़ी = एक उद्धार सागर।

2½ उद्धार सागर (25 कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्य) में जितने समय खण्ड होते हैं उतने ही सब द्वीप-समुद्रों की संख्या हैं।

(iii) अद्धा सागर – अद्धा पल्य × 10 कोड़ा कोड़ी = एक अद्धा सागर।

10 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर = 1 अवसर्पिणी काल या 1 उत्सर्पिणीकाल, 1 अवसर्पिणीकाल और 1 उत्सर्पिणीकाल = 1 कल्पकाल अर्थात् 20 कोड़ा कोड़ी सागर का एक कल्प काल कहलाता है जिनके दो भेद हैं- 1. उत्सर्पिणी 2. अवसर्पिणी

एक अवसर्पिणी = छह काल [सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा, दुषमा-दुषमा]

सुषमा-सुषमा काल	= 4 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर
सुषमा काल	= 3 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर
सुषमा-दुषमा काल	= 2 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर

दुषमा–सुषमा काल	= 42000 वर्ष कम 1 कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर
दुषमा काल	= 21000 वर्ष
दुषमा–दुषमा काल	= 21000 वर्ष

उत्सर्पिणी के छह काल = दु:षमा–दु:षमा, दु:षमा, दु:षमा–सुषमा, सुषमा–दु:षमा, सुषमा, सुषमा, सुषमा।

शंका–उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं?

समाधान–जिसमें मनुष्य तिर्यंचों की आयु, बल, शरीरावगाहना, संहनन शक्ति आदि क्रमश: बढ़ते हुए होते हैं उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। जैसे–उत्सर्पिणी के प्रथमकाल में मनुष्यों की अवगाहना एक हाथ की होगी तो द्वितीय काल में 7 हाथ की हो जायेगी। इसी प्रकार तृतीय काल में उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष हो जायेगी। इसी प्रकार संहनन शक्ति आदि भी जानना चाहिए। आयु क्रमश: 20, 120, एक कोटि पूर्व वर्ष, एक पल्य, दो पल्य, तीन पल्य जानना चाहिए।

शंका–अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं?

समाधान–जिसमें आयु, बल, शरीरावगाहना का क्रमश: ह्रास होता जाता है। जैसे–अवसर्पिणी के प्रथम काल में जीवों की अवगाहना तीन कोश फिर घटते–घटते द्वितीय काल में दो कोश, तृतीय काल में एक कोश, चतुर्थ काल में 525 धनुष, पंचम काल में 7 हाथ, छटवें काल एक हाथ इसी प्रकार बल, आयु भी लगा लेना चाहिए। आयु क्रमश: तीन, दो, एक पल्य, एक कोटि पूर्व वर्ष, 120 वर्ष, 20 वर्ष जानना चाहिए।

छहों कालों की परिभाषा–

सुषमा सुषमा	= जिसमें जीवों को सुख ही सुख होता है।
सुषमा	= जिसमें जीवों को सुख होता है।
सुषमा दु:षमा	= पहले सुख होता है पश्चात् किंचित् दु:ख होता है।
दु:षमा सुषमा	= पहले दु:ख बाद में सुख होता है।
दु:षमा	= दु:ख होता है।
दु:षमा दु:षमा	= दु:ख ही दु:ख होता है।
1 कल्पकाल	= 20 कोड़ा कोड़ी सागर
1 सागर	= 10 कोड़ा कोड़ी पल्य

1 कल्पकाल में पल्यों की संख्या = 20 कोड़ा कोड़ी×10 कोड़ा कोड़ी अर्थात् $20x10^{30}$ या दो नील शंख पल्य (2000000000000000000000000000000) यह संख्या 31 अंक प्रमाण है। अथवा 20 लाख कोड़ी कोड़ा कोड़ी।

(3) सूच्यंगुल – जो द्रव्य आदि, मध्य व अन्त से रहित हो, एक प्रदेशी हो, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य एवं विभाग से रहित हो, उसे परमाणु कहते हैं, ऐसे अनंतानंत परमाणु द्रव्यों से एक अवसन्नासन्न स्कंध उत्पन्न होता है।

8 अवसन्नासन्न = 1 सन्नासन्न, 8 सन्नासन्न = 1 त्रुटिरेणु,

8 त्रुटिरेणु = 1 त्रसरेणु, 8 त्रसरेणु = 1 रथरेणु,
8 रथरेणु = एक उत्तम भोगभूमि के मनुष्य का बालाग्र,
8 उत्तम भोगभूमि का बालाग्र = 1 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र,
8 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र = 1 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र,
8 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र = 1 कर्मभूमि का बालाग्र,
8 कर्मभूमि के बालाग्र = 1 लीक,
8 लीक = एक जूं [चौकोर सरसों]
8 जूं = एक जौ, 8 जौ = 1 अंगुल।

अंगुल के भेद व लक्षण – अंगुल के तीन भेद हैं – (i) उत्सेधांगुल, (ii) प्रमाणांगुल, (iii) आत्मांगुल।

(i) उत्सेधांगुल/व्यवहारांगुल/सूच्यंगुल – 8 जौ का जो एक अंगुल बताया अर्थात् लगभग पौन इंच लम्बी एक प्रदेश चौड़ी आकाश प्रदेशों की पंक्ति को सूच्यंगुल कहते हैं। वही उत्सेधांगुल है। इससे देव, मनुष्य, तिर्यंच व नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण, देवों के निवास स्थान व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है।

पल्य के जितने अर्धच्छेद हैं उतनी बार पल्य रखकर परस्पर गुणा करके जो राशि उत्पन्न हो, वही सूच्यंगुल है। जो कि एक अंगुल लम्बे क्षेत्र में जितने प्रदेश हैं, उतने प्रमाण हैं।

सूत्र – सूच्यंगुल = [पल्य × पल्य × .... पल्य के अर्धच्छेद प्रमाण बार]

शंका– एक अंगुल लम्बाई व एक प्रदेश चौड़ाई वाले आकाश प्रदेश पंक्ति में कितने आकाश प्रदेश होते हैं?

समाधान–उपरोक्त पल्य के अर्धच्छेद जितने हो उनका विरलन करों फिर एक एक संख्या पर पल्य देय देकर आपस में गुणा करो जो संख्या प्राप्त हो उतने आकाश प्रदेश उक्त प्रदेश में आ जाते हैं। जैसे–माना पल्य = 16, इसके अर्धच्छेद = 4 हुए, इनका विरलन = 1 1 1 1

देय = 16x16x16x16=65536 अथवा $(\text{पल्य})^{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}$

अत: 65536 यह सूच्यंगुल क्षेत्र में आकाश प्रदेशों की संख्या है।

नोट– यहाँ अंक संदृष्टि से मात्र एक मानक है अर्थ संदृष्टि में पल्य असंख्यातासंख्यात वर्षों का होता है उसके अर्धच्छेद भी असंख्यात ही होते हैं।

शंका–इतने छोटे स्थान में इतने आकाश प्रदेश कैसे आ सकते हैं?

समाधान–यह कोई दोष नहीं है क्योंकि कालाणु की अपेक्षा आकाश का प्रदेश अत्यंत सूक्ष्म होता है, इसलिए आ जाते हैं।

कहा भी है–

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुर्भिन्नै हन्यते।
आज्ञा सिद्धं तु तद्ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिना:।।

ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है आचार्यों ने लिपिबद्ध किया है अत: जिनेन्द्र का तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है तर्क से और प्रतिवादियों से खण्डित नहीं हो सकता है आगम और अनुभव से इसे जाना जा सकता है क्योंकि जिनेन्द्र अन्यथावादी नहीं होते।

(ii) प्रमाणांगुल – पाँच सौ उत्सेधांगुलों का एक प्रमाणांगुल होता है। यह प्रमाणांगुल अवसर्पिणी काल के (प्रथम) भरत चक्रवर्ती का एक अंगुल है। द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड या सरोवर, जगती और भरतादिक क्षेत्रों का माप इसी अंगुल से होता है।

(iii) आत्मांगुल – जिस-जिस काल में भरतैरावत क्षेत्रों में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है। झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट, हल, मूसल, शक्ति, तोमर, सिंहासन, वाण, नालि, अक्ष, चामर, दुंदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास स्थान व नगर और उद्यानादिकों का माप आत्मांगुलों से होता है। मनुष्यों की अवगाहना में वृद्धि-ह्रास होने से इनके नगरादिक का माप आत्मांगुल से होता है।

6 अंगुल = 1 पाद, 2 पाद = 1 बितस्ति
2 बितस्ति = 1 हस्त, 2 हस्त = 1 किष्कु
2 किष्कु = 1 दंड/युग/धनुष/मूसल/नाली/नाड़ी
2000 दण्ड/धनुष = 1 कोस
4 कोश = 1 योजन।

(4) प्रतरांगुल – सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों का प्रमाण है।

सूत्र – सूच्यंगुल × सूच्यंगुल अथवा (सूच्यंगुल)^2 = प्रतरांगुल।

(5) घनांगुल – सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल चौड़े व एक अंगुल ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के बराबर है।

सूत्र – सूच्यंगुल × सूच्यंगुल × सूच्यंगुल अथवा (सूच्यंगुल)^3 = घनांगुल।

(6) जगच्छ्रेणी – पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुल स्थापन कर परस्पर गुणा करने से जगच्छ्रेणी की प्राप्ति होती है। जो मध्यलोक से ऊर्ध्व एवं अधोलोक पर्यंत 7-7 राजू के प्रदेशों के प्रमाण है। अर्थात् 7 राजू लम्बी एक प्रदेश चौड़ी आकाश प्रदेशों की पंक्ति जगत् श्रेणी कहलाती है।

सूत्र – [घनांगुल × घनांगुल × घनांगुल × .... पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यात भाग प्रमाण बार]

(7) जगत्प्रतर – जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं। जो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे व चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण है। अर्थात् प्रतर = फैलाना जगत्श्रेणी प्रमाण लंबे जगत्श्रेणी प्रमाण चौड़े आकाश प्रदेशों

की पंक्ति को जगत् प्रतर कहते हैं।

सूत्र – $(\text{जगच्छ्रेणी})^2$ = जगत्प्रतर।

(8) घनलोक – जगच्छ्रेणी के घन को जगत् घन या घनलोक कहते हैं। जो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे, चौड़े ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण हैं अर्थात् 343 घनराजू प्रमाण हैं। पूर्वोक्त लम्बे+चौड़े+ऊँचे क्षेत्र को घन लोक कहते हैं।

सूत्र – घनलोक = $(\text{जगच्छ्रेणी})^3$

पल्य के रोमों की संख्या निकालने की संख्या विधि

एक योजन लम्बे, 1 योजन चौड़े और 1 योजन गहरे वृत्ताकार कुण्ड की सूक्ष्म परिधि =

वृत्ताकार क्षेत्र की सूक्ष्म परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 \times 10}$

$= \sqrt{(1)^2 \times 10}$

$= \sqrt{1 \times 10} = \sqrt{10} = 3\frac{1}{6} = \frac{19}{6}$ प्रमाण योजन

इसी कुण्ड का सूक्ष्म क्षेत्रफल–

सूक्ष्म क्षेत्रफल $= \text{सूक्ष्म परिधि} \times \frac{\text{व्यास}}{4}$

$= \frac{19}{6} \times \frac{1}{4} = \frac{19}{24}$ प्रमाण वर्ग योजन

इसी कुण्ड का सूक्ष्म घनफल–

सूक्ष्म घनफल = सूक्ष्म क्षेत्रफल x वेध (गहराई)

$= \frac{19}{24} \times 1 = \frac{19}{24}$ प्रमाण घन योजन

प्रमाण घन योजन को व्यवहार घन योजन में बदलना है–

जब 1 प्रमाण योजन क्षेत्र में 500 व्यवहार योजन होते है

तब $\frac{19}{24}$ प्रमाण योजन क्षेत्र में कितने व्यवहार योजन होंगे?

त्रैराशिक करने पर प्रमाण राशि=1, फल राशि=500, इच्छा राशि $= \frac{19}{24}$

"घन राशि का गुणकार या भागहार घनात्मक ही होता है" इस नियम के अनुसार $\frac{19}{24}$ को तीन बार 500 से गुणा करने पर $= \frac{19}{24} 500 \times 500 \times 500$ व्यवहार घन योजन

व्यवहार घन योजन को अंगुल में बदलना है–

एक व्यवहार योजन में 768000 अंगुल होते हैं।

तब $\frac{19}{24}$ x500x500x500 व्यवहार योजन में कितने अंगुल होंगे है ?

उपरोक्त नियम के अनुसार = $\frac{19}{24}$x500x500x500x768000x768000x768000 घनांगुल

घनांगुल को रोम में बदलना है–

एक अंगुल में 8 यव, 1 यव के 8 तिल, 1 तिल की 8 लीख, 1 लीख के 8 कर्मभूमिज रोम, एक कर्मभूमिज रोम के 8 जघन्य भोगभूमिज रोम, एक जघन्य भोगभूमिज रोम के 8 मध्यम भोगभूमिज रोम और 1 मध्यम भोगभूमिज रोम के 8 उत्तम भोगभूमिज रोम होते हैं। यहाँ 7 बार 8 हुए, इन्हें घनात्मक करने पर 8 की संख्या (7x3) = 21 बार प्राप्त हुई।

जब एक घनांगुल में 8 (21 बार) प्रमाण रोम है तब उपर्युक्त घनांगुलों में कितने–कितने रोम होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर–

$\frac{19}{24}$ x500x500x500x768000x768000x768000x8x8x8x8x8x8x8x8x8x8x8x8

x8x8x8x8x8x8x8x8x8=413452630308203177749512192000000000000000000 यह पल्य के रोमों की संख्या है।

अथवा

सभी शून्यों को अलग करने पर अर्थात् 15 शून्य

अत: $\frac{19}{24}$ 125x256x3x256x3x256x3x256x256x2x512x512x512x512x512x512 x512 आपस में गुणा करने पर उक्त संख्याएँ प्राप्त होती है।

अक्षर संज्ञा से अंकों का ज्ञान कराने वाली गाथा सूत्र–

''कटपयपुरस्थ वर्णैर्नवनपञ्चाष्टकल्पितैः क्रमशः।
स्वरञन शून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं।।''

अर्थ–क अक्षर से झ अक्षर पर्यन्त (9 अक्षर), ट अक्षर से ध अक्षर पर्यन्त (9 अक्षर) तथा प वर्ग 5 अक्षर और य से प्रारम्भ कर ह पर्यन्त (आठ) अक्षरों में क्रम से जो अक्षर जितने नम्बर का हो वही अंक समझना चाहिए तथा अकारादि स्वर, ञ और न जहाँ हों उनका शून्य ग्रहण करना चाहिए। तथा मात्राओं और संयोगी अक्षरों को छोड़ देना चाहिए।

यथा–	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	(ये नौ)
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	
	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	(ये नौ)
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	
	प	फ	ब	भ	म					(ये पाँच)

1	2	3	4	5				
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	(ये आठ)
1	2	3	4	5	6	7	8	

उपर्युक्त गाथा के अनुसार उल्लिखित अक्षरों से पल्य के अंकों को ग्रहण करना चाहिए।

त्रिलोकसार ग्रन्थ गाथा नं. 98 से पल्य के रोमों की संख्या निकालने के लिए अक्षर संज्ञा से अंक प्राप्त किए गये हैं।

गाथा- **वटलवणरोचगोनग – नजरनगंकाससससघधमपरकधरं।**

विगुणणव सुण्णसहिया, पल्लस्स दु रोम परिसंखा।98।।

अर्थ– व (4), ट (1), ल (3), ण (5), र (2), च (6), ग (3), न (0), ग (3), न (0), ज (8), र (2), न (0), ग (3), क (1), स (7), स (7), स (7), घ (4), ध (9), म (5), प (1), र (2), क (1), ध (9), र (2) अर्थात् 413452630308203177749512192 इस संख्या को 18 शून्यों सहित करने पर (413452630308203177749512192000000000000000000) पल्य के रोमों की संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या 45 अंक प्रमाण है।

यहाँ तक उपमा प्रमाण को जाना अगले अध्याय में नवीन विषय प्रमाद के विषय में अध्ययन करेंगे प्रमाद के पाँच भेद होते हैं उन पाँच भेदों के आपस में गुणा करके 80 भेद हो जाते हैं वे किस प्रकार होते हैं? उनको आगे जानने का प्रयास करते है...

अशुभोपयोग से कर्मों का बंध,
शुभोपयोग से कर्मों का संवर और
शुद्धोपयोग से कर्मों की निर्जरा होती है।

अध्याय-7

अक्षसंचार गणित निर्देश

अक्ष संचार विषयक शब्दों का परिचय –

संखा तह पत्थारो, परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं

एदे पंचपयारा, पमदसमुक्कित्तणे णेया ।। [गो.जी.गा.नं.-35]

संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्दिष्ट इन पाँच प्रकारों द्वारा प्रमाद के विषय में जानना चाहिए। [ऐसे ही साधु के 84,00,000 उत्तर गुण अथवा 18000 शील के गुण इत्यादि सर्वत्र भी ये पाँच बातें जानने योग्य है। यहाँ प्रमाद का प्रकरण होने से केवल प्रमाद के आधार पर कथन किया गया है।]

❋ आलापों के भेदों की गणना को **संख्या** कहते हैं।

❋ संख्या के रखने या निकालने के क्रम को **प्रस्तार** करते हैं।

❋ एक भेद से दूसरे भेद पर पहुँचने के क्रम को **परिवर्तन** कहते हैं।

❋ संख्या के द्वारा भेद के निकालने को **नष्ट** कहते हैं।

❋ भेद को रखकर संख्या निकालने को **समुद्दिष्ट** कहते हैं।

संख्या (भंग का जोड़) निकालने का तरीका

प्रमाद	विकथा × कषाय × इन्द्रियविषय × निद्रा × प्रणय
संख्या	4 × 4 × 5 × 1 × 1 = 80

सव्वे पि पुव्वभंगा, उपरिम भंगेसु एक्कमेक्केसु ।

भेलंति त्ति य कमसो, गुणिदे उप्पज्जदे संखा ।। (गो.जी.गा.नं.-36)

पूर्व के सब ही भंग आगे के प्रत्येक भंग में मिलते हैं, इसलिए क्रम से गुणा करने पर संख्या उत्पन्न होती है।

प्रस्तार निकालने का तरीका नं. 1

पढमं पमदपमाणं, कमेण णिक्खिवि य उवरिमाणं च ।

पिंडं पडि एक्केक्कं, णिक्खित्ते होदि पत्थारो ।। [गो.जी.गा.नं.-37]

अर्थ – प्रथम प्रमाद के प्रमाण का विरलन कर क्रम से निक्षेपण करके उसके एक-एक रूप के प्रति आगे के पिण्ड रूप प्रमाद के प्रमाण का निक्षेपण करने पर प्रस्तार होता है।

विकथा 4 = 1 1 1 1 = 4

कषाय 4 = 4 + 4 + 4 + 4 = 16

। । । ।

इन्द्रिय विषय 5=5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 + 5 = 80

। । । । । । । । । । । । । । । ।

प्रस्तार निकालने का तरीका नं. 2

णिक्खित्तु विदियमेत्तं, पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं ।

पिंडं पडि णिक्खेओ, एवं सव्वत्थ कायव्वो ।। [गो.जी.गा.नं.-38]

अर्थ - दूसरे प्रमाद का जितना प्रमाण है उतनी जगह पर प्रथम प्रमाद के पिण्ड को रखकर उसके ऊपर एक-एक पिण्ड के प्रति आगे के प्रमाद में से एक-एक का निक्षेपण करना और आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार जानना चाहिए।

विकथा 4 -	। । । ।
कषाय 4 -	। । । ।
	4 + 4 + 4 + 4 = 16
इन्द्रिय विषय 5 -	। । । । ।
	16 + 16 + 16 + 16 + 16 = 80

प्रथम प्रस्तार का परिवर्तन

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।

दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ।। [गो.जी.गा.नं.-39]

अर्थ - प्रमाद का तृतीय स्थान अन्त को प्राप्त होकर जब फिर से आदिस्थान को प्राप्त हो जाय तब प्रमाद का दूसरा स्थान भी बदल जाता है। इसी प्रकार जब दूसरा स्थान भी अन्त को प्राप्त होकर फिर आदि को प्राप्त हो जाए तक प्रथम प्रमाद का स्थान बदलता है। निद्रा और स्नेह इनका दूसरा भेद नहीं है, इसलिए इनमें अक्षसंचार नहीं होता।

स्त्री	→ भक्त →	राष्ट्र →	अवनिपाल	
क्रोध	→ मान →	माया →	लोभ	
स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	कर्ण

जब इन्द्रिय स्थान कर्ण तक होकर पुनः स्पर्शन पर आता है, तब क्रोध का स्थान बदलकर मान होता है। इसी प्रकार जब कषाय स्थान लोभ से बदलकर क्रोध पर आता है तब विकथा में स्त्री कथा का स्थान छूटकर भक्त कथा का स्थान आता है।

दूसरा प्रस्तार का परिवर्तन

पढमक्खो अन्तगदो, आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।

दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ।।

अर्थ - प्रथमाक्ष जो विकथा रूप प्रमाद स्थान है वह घूमता हुआ जब क्रम से अंत तक पहुँचकर फिर स्त्री कथा रूप आदि स्थान पर आता है तब दूसरा कषाय स्थान क्रोध को छोड़कर मान पर आता है। इसी प्रकार जब दूसरा कषाय स्थान भी अंत तक प्राप्त होकर फिर आदि [क्रोध] स्थान पर आता है तब तीसरा इन्द्रिय स्थान बदलता है अर्थात् स्पर्शन को छोड़कर रसना पर आता है।

स्पर्शन	रसना →	घ्राण →	चक्षु →	कर्ण
क्रोध	मान →	माया →	लोभ	
स्त्री	भक्त	राष्ट्र	अवनिपाल	

नष्ट लाने की विधि

सगमाणेहिं विभत्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं।

लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंते ण रूपपक्खेवो ॥ [गो.जी.गा.नं.-41]

अर्थ - किसी ने जितनेवाँ प्रमाद का भंग पूछा हो उतनी संख्या को रखकर उसमें क्रम से प्रमाद प्रमाण का भाग देना चाहिए। भाग देने पर जो शेष बचे उसको अक्ष स्थान जो लब्ध आवे उसमें एक मिलाकर दूसरे प्रमाद के प्रमाण का भाग देना चाहिए और भाग देने से जो शेष रहे उसको अक्षस्थान समझना चाहिए। किन्तु शेष स्थान में यदि शून्य हो तो अन्त का अक्षस्थान समझना चाहिए और उसमें एक नहीं मिलाना चाहिए।

उदा. (1) संख्या = 20वां भंग [प्रथम प्रस्तार से भंग निकालना]

* $\frac{20}{5}$ (इन्द्रिय का जोड़) = 4   शेष = 0 ↓ अंतिम इन्द्रिय = कर्ण

* $\frac{4}{4}$ (कषाय का जोड़) = 1   शेष = 0 ↓ अंतिम कषाय = लोभ

* 1 ↓ पहली कथा = स्त्री कथा

अत: 20वें भंग का आलाप - स्नेहवान निद्रालु कर्ण इन्द्रिय के वशीभूत लोभी स्त्री कथालापी।

उदा. (2) संख्या = 20वाँ भाग [दूसरे प्रस्तार से भंग निकालना]

* $\frac{20}{4}$ (विकथा का जोड़) = 5 शेष = 0 → अंतिम विकथा = अवनिपाल

* $\frac{5}{4}$ (कषाय का जोड़) = 1 शेष = 0 → प्रथम कषाय = क्रोध

* 1+1=2 → दूसरी इन्द्रिय = रसना

अत: 20वें भंग का आलाप–अवनिपाल कथालापी क्रोधी रसना इन्द्रिय के वशीभूत निद्रालु स्नेहवान।

उद्दिष्ट लाने की विधि

संठाविदूण रूवं, उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे।

अवणिज्ज अणंकिदयं, कुज्जा एमेव सव्वत्थ ।। [गो.जी.गा.नं.–42]

अर्थ – एक का स्थापन करके आगे के प्रमाद का जितना प्रमाण है उसके साथ गुणाकार करना चाहिए। उसमें जो अनंकित (शेष रहे प्रमाद) हो, उसको घटाएँ। इसी प्रकार आगे भी करने से उद्दिष्ट का प्रमाण निकलता है।

उदा. – राष्ट्रकथालापी मायावी घ्राण इन्द्रियवश निद्रालु स्नेहवान कौन सा भंग है?

(1) प्रथम प्रस्तार से–

1 × 4 (विकथा का जोड़) = 4–1 (राष्ट्रकथा के बाद 1 कथा रही) = 3

3 × 4 (कषाय का जोड़) = 12–1 (मायावी कषाय के बाद 1 कषाय रही) = 11

11 × 5 (इन्द्रिय का जोड़) = 55–2 (घ्राण के बाद 2 इन्द्रिय रही) = **53वाँ भंग**

(2) दूसरे प्रस्तार से –

1 × 5 (इन्द्रिय का जोड़) = 5–2 (शेष इन्द्रिय) = 3

3 × 4 (कषाय का जोड़) = 12 – 1 (शेष कषाय) = 11

11 × 4 (विकथा का जोड़) = 44 – 1 (शेष विकथा) = **43वाँ भंग**

प्रथम प्रस्तार का गूढ़ यंत्र

इगवितिचपणखपणदशपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य ।

संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ।। [गो.जी.गा.नं.-43]

अर्थ - तीन प्रमाद स्थानों में क्रम से प्रथम पाँच इन्द्रियों के स्थान पर 1, 2, 3, 4, 5 को क्रम से तथा चार कषायों के स्थान पर क्रम से 0, 5, 10, 15 तथा विकथाओं के स्थान पर क्रम से 0, 20, 40, 60 स्थापन करना।

ऐसा करने से नष्ट व उद्दिष्ट अच्छी तरह समझ में आ सकते हैं। क्योंकि जो भंग विवक्षित हो उसके स्थानों पर रखी हुई संख्या को परस्पर जोड़ने से यह कितनेवां भंग है अथवा इस संख्या वाले भंग में कौन-कौन सा प्रमाद आता है। यह समझ में आ सकता है।

स्पर्शन 1	रसना 2	घ्राण 3	चक्षु 4	कर्ण 5
क्रोध 0	मान 5	माया 10	लोभ 15	
स्त्री 0	भक्त 20	राष्ट्र 40	अवनिपाल 60	

दूसरे प्रस्तार का गूढ़ यंत्र

इगिवितिचखचडवारम् खसोलरागट्ठदालचउसट्ठिं।

संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ।। [गो.जी.गा.नं.-44]

अर्थ - दूसरे प्रस्तर की अपेक्षा तीनों प्रमाद स्थानों में क्रम से प्रथम विकथाओं के स्थान पर 1/2/3/4 स्थापन करना तथा कषायों के स्थान पर 0/4/8/12 स्थापन करना और इन्द्रियों के स्थान पर 0/16/32/48/64 स्थापन करना ऐसा करने से दूसरे प्रस्तार की अपेक्षा भी पूर्व की तरह नष्ट व उद्दिष्ट समझ में आ सकते हैं।

स्त्री 1	भक्त 2	राष्ट्र 3	अवनिपाल 4	
क्रोध 0	मान 4	माया 8	लोभ 12	
स्पर्शन 0	रसना 16	घ्राण 32	चक्षु 48	कर्ण 64

इन यंत्रों का उपयोग करने की विधि नीचे है -

❋ नष्ट निकालने के लिए - संख्या से भंग

जिन कोठों का जोड़ मिलाने से वह संख्या मिले उन कोठों के प्रमादों का भंग होगा।

❋ उद्दिष्ट निकालने के लिए - भंग से संख्या

जिन कोठों में वह प्रमाद के उत्तर भेद हो उन कोठों के अंक को जोड़ने पर संख्या प्राप्त होगी।

नोट - यहाँ हमने प्रमाद के 80 भंगों का विवेचन किया है। प्रमाद के विस्तृत रूप से 37500 भंग भी होते हैं, उनका विवेचन भी इसी प्रकार से किया जा सकता है।

प्रमाद के 37500 भंग का यंत्र

0	स्त्री	0	अनंतानुबंधी क्रोध	0	स्पर्शन	0	स्त्यानगृद्धि	1	स्नेह
1500	अर्थ	60	अनंतानुबंधी मान	10	रसना	2	निद्रानिद्रा	2	मोह
3000	भोजन	120	अनंतानुबंधी माया	20	घ्राण	4	प्रचलाप्रचला		
4500	राजा	180	अनंतानुबंधी लोभ	30	चक्षु	6	निद्रा		
6000	चोर	240	अप्रत्याख्यान क्रोध	40	कर्ण	8	प्रचला		
7500	वैर	300	अप्रत्याख्यान मान	50	मन				
9000	परपाखंड	360	अप्रत्याख्यान माया						
10500	देश	420	अप्रत्याख्यान लोभ						
12000	भाषा	480	प्रत्याख्यान क्रोध						
13500	गुणबंध	540	प्रत्याख्यान मान						
15000	देवी	600	प्रत्याख्यान माया						
16500	निष्ठुर	660	प्रत्याख्यान लोभ						
18000	परपैशून्य	720	संज्वलन क्रोध						
19500	कंदर्प	780	संज्वलन मान						
21000	देशकालानुचित	840	संज्वलन माया						
22500	भंड	900	संज्वलन लोभ						
24000	मूर्ख	960	हास्य						
25500	आत्मप्रशंसा	1020	रति						
27000	परपरिवाद	1080	अरति						
28500	परजुगुप्सा	1140	शोक						
30000	परपीड़ा	1200	भय						
31500	कलह	1260	जुगुप्सा						
33000	परिग्रह	1320	पुरुषवेद						
34500	कृष्याद्यारंभ	1380	स्त्रीवेद						
36000	संगीत वाद्य	1440	नपुंसक वेद						

इस अध्याय में हमने प्रमाद को समझा अलगे अध्याय में- एक, दो, तीन आदि संयोगी भंग जो कि मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में एक जीवादि के माध्यम से दोष लगते हैं उनमें भंगों का ज्ञान कराया है पश्चात् श्रेणी व्यवहार अत्यंत महत्वपूर्ण विधि जिसे त्रैराशिक या लौकिक भाषा में (चूंकि) विधि कहा जाता है इसका परिचय अगले अध्याय में कराया जा रहा है।

अध्याय–8

एक–द्वि–त्रि आदि संयोगी भंग प्राप्ति की विधि/त्रैराशिक गणित विधि

जहाँ प्रत्येक, द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी इत्यादि भेद करने हो वहाँ विवक्षित का जो प्रमाण है उस प्रमाण से लेकर एक–एक घटता हुआ 1 अंक तक अनुक्रम से लिखना भाज्य है। और उनके नीचे एक आदि एक–एक बढ़ता हुआ उस प्रमाण के अंक तक क्रम से लिखना भागहार है।

क्रम से पूर्व अंश को अगले अंश से तथा पूर्व हार को अगले हार से गुणा करने पर जो–जो अंश व हर का प्रमाण हो, वहाँ अंश के प्रमाण में हार के प्रमाण का भाग देना चाहिए फिर जो–जो प्रमाण आवें, उतने–उतने ही उसके भंग जानना चाहिए।

उदाहरण – षट्काय जीवों की हिंसा के प्रकरण में किसी जीव को एक काल में किसी एक काय की हिंसा होती है, किसी को एक काल में दो काय की हिंसा होती है, किसी को 3 की इत्यादि। वहाँ एक–द्वि–त्रि आदि संयोगी भंग निम्न प्रकार निकाले जा सकते हैं–

भाज्य या अंश	6	5	4	3	2	1
भाजक या हार	1	2	3	4	5	6

एक संयोगी/प्रत्येक भंग = $\dfrac{\text{अंश नं} = 1}{\text{हर नं.} = 1} = \dfrac{6}{1} = 6$

द्वि. संयोगी भंग = $\dfrac{\text{अंश नं} = 1\times2}{\text{हर नं.} = 1\times2} = \dfrac{6\times5}{1\times2} = \dfrac{30}{2} = 15$

त्रि संयोगी भंग = $\dfrac{\text{अंश नं} = 1\times2\times3}{\text{हर नं.} = 1\times2\times3} = \dfrac{6\times5\times4}{1\times2\times3} = \dfrac{120}{6} = 20$

चतु. संयोगी भंग = $\dfrac{\text{अंश नं} = 1\times2\times3\times4}{\text{हर नं.} = 1\times2\times3\times4} = \dfrac{6\times5\times4\times3}{1\times2\times3\times4} = \dfrac{360}{24} = 15$

पंच संयोगी भंग = $\dfrac{\text{अंश नं} = 1\times2\times3\times4\times5}{\text{हर नं.} = 1\times2\times3\times4\times5} = \dfrac{6\times5\times4\times3\times2}{1\times2\times3\times4\times5} = \dfrac{720}{120} = 6$

छः संयोगी भंग = $\dfrac{\text{अंश नं} = 1\times2\times3\times4\times5\times6}{\text{हर नं.} = 1\times2\times3\times4\times5\times6} = \dfrac{6\times5\times4\times3\times2\times1}{1\times2\times3\times4\times5\times6} = \dfrac{720}{720} = 1$

कुल भंग = 6 + 15 + 20 + 15 + 6 + 1 = 63 भंग

[गोम्मटसार कर्मकाण्ड 799 तथा जीव प्रबोधिनी टीका में 977 का भावार्थ]

[सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग–2 पृ. 228]

त्रैराशिक गणित विधि

त्रैराशिक का जहाँ-तहाँ प्रयोजन जानकर स्वरूप मात्र कहते हैं। जहाँ तीन राशियाँ होती हैं [प्रमाण, फल व इच्छा] वहाँ त्रैराशिक विधान किया जाता है। विवक्षित राशि का प्रमाण = प्रमाण राशि, जो फल प्राप्त होता है वह = फल राशि, अपने इच्छित प्रमाण को = इच्छा राशि जानना चाहिए।

फल राशि का इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि का भाग देने पर अपने इच्छित प्रमाण राशि का प्रमाण प्राप्त होता है।

उदाहरण - 5 रु. का 7 मण अन्न आता है तो 7 रु. का कितना अन्न आयेगा?

त्रैराशिक करना है - यहाँ प्रमाण राशि - 5 रुपया, फल राशि - 7 मण, इच्छा राशि = 7 रुपया है।

अब फल राशि को इच्छा राशि से गुणा करके प्रमाण राशि का भाग देना है।

$$\text{अर्थात्} = \frac{\text{फल राशि} \times \text{इच्छा राशि}}{\text{प्रमाण राशि}} = \text{लब्ध}$$

$$\frac{7 \times 7}{5} = \frac{49}{5} = 9\frac{4}{5} \text{ मण}$$

[गोम्मटसार जीवकाण्ड पूर्व परिचय पृ. 70/13, सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग-2 पृ. 28]

अब आगे के अध्याय में हम श्रेणी व्यवहार में संकलन व गुणन व्यवहार विधि के बारे में जानने का प्रयास करते हैं। जिसे लौकिक भाषा में समान्तर और गुणोत्तर श्रेणी आदि भी कहते हैं।

प्रार्थना, याचना, भावना इन सबसे श्रेष्ठ है
आराधना

अध्याय–9

श्रेणी व्यवहार गणित

श्रेणी व्यवहार परिचय – संकलन व्यकलन आदि पूर्वोक्त आठ बातों का प्रयोग दो–चार राशियों तक सीमित न रखकर धारावाही रूप से करना श्रेणी व्यवहार गणित कहलाता है। अर्थात् समान वृद्धि या हानि के लिए अनेकों अंकों या राशियों की लम्बी अटूट धारा या श्रेणी में यह गणित काम आता है।

श्रेणी व्यवहार गणित दो प्रकार है – (1) संकलन व्यवहार श्रेणी

(2) गुणन व्यवहार श्रेणी

प्रथम विधि में 1,2,3,4....$\propto$ इस प्रकार एक वृद्धि क्रमवाली या 2,4, 6, 8....$\propto$ इस प्रकार दो वृद्धि क्रमवाली या इसी प्रकार 3,4,5 संख्यात, असंख्यात, अनन्त वृद्धि क्रमवाली धाराओं का ग्रहण किया जाता है, जो सर्वधारा, समधारा आदि अनेकों भेद रुप है।

द्वितीय विधि में 1, 2, 4, 8....$\propto$ इसी प्रकार दो गुणकार वाली, या 1, 3, 9, 27..... $\propto$ इस प्रकार तीन गुणकार वाली, या इसी प्रकार 4, 5, 6 संख्यात, असंख्यात, व अनन्त गुणकार वृद्धि क्रम वाली धाराओं का ग्रहण किया जाता है जो कृति धारा, घनधारा आदि अनेक भेद रूप है। इन सब धाराओं का परिचय इस अधिकार में दिया जायेगा।

दो–चार अंकों या राशियों का संकलन या गुणन तो सामान्य विधि से भी किया जाना सम्भव है, परन्तु पचास, सौ, संख्यात, असंख्यात व अनन्त राशियों वाली अटूट श्रेणियों का संकलन आदि सामान्य विधि से किया जाना सम्भव नहीं है। इसके लिए जिन विशेष प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है, उनका वर्णन भी यहाँ किया जायेगा। यहाँ हम संकलन व्यवहार श्रेणी को समझेंगे।

सर्वधारा आदि श्रेणियों का सामान्य परिचय–

धारेत्थ सव्व समदि घणमाउगइदरवेकदीविंदं ।

तस्स घणाघणमादी अंतं ठाणं च सव्वत्थ ।। [त्रि.सा.गा.नं.–53]

अर्थ– यहाँ धाराओं का वर्णन करते हैं। 1. सर्वधारा, 2. समधारा, 3. कृतिधारा, 4. घनधारा, 5. कृतिमातृक धारा, 6. घनमातृक धारा, तथा इनकी प्रतिपक्षी 7. विषमधारा, 8. अकृतिधारा, 9. अघनधारा, 10. अकृतिमातृक धारा, 11. अघनमातृक धारा, 12. द्विरूप वर्गधारा, 13. द्विरूप घनधारा, 14. द्विरूप घनाघनधारा। ये चौदह धाराएँ हैं। इनके आदि स्थान, अन्त स्थान और स्थान भेद धाराओं में सर्वत्र कहते हैं।

संकेत – $\propto$ = केवलज्ञान प्रमाण उत्कृष्ट अनंतानंत

क्र.सं.	धारा का नाम	विशेषता	कुल स्थान
(1)	सर्वधारा	1, 2, 3, 4, ... $\propto$	$\propto$
(2)	समधारा	2, 4, 6, 8 .... $\propto$	$\propto/2$
(3)	विषमधारा	1, 3, 5, 7 .... $\propto$	$\propto/2$
(4)	कृतिधारा	1, 4, 9, 16 $(1^2, 2^2, 3^2, 4^2)$ .....$(\propto^{1/2})^2$	$\propto^{1/2}$
(5)	अकृतिधारा	कृतिधारा की राशियों से हीन (रहित) सर्वधारा	
		अर्थात् × 2, 3, × 5, 6, 7, 8, × 10.......$\propto$	$\propto^{1/2}$
(6)	घनधारा	1, 8, 27 $(1^3, 2^3, 3^3)$ .... $(\propto^{1/3})^3$	$\propto^{1/3}$
(7)	अघनधारा	घनधारा की राशियों से हीन (रहित) सर्वधारा	
		अर्थात् × 2, 3, 4, 5, 6, 7, × 9, 10 ..... $\propto$	$\propto - \propto^{1/3}$
(8)	कृतिमातृक धारा	1, 2, 3 $\{(1^2)^{1/2}, (2^2)^{1/2}, (3^2)^{1/2}\}$.....$\propto^{1/2}$	$\propto^{1/2}$
(9)	अकृतिमातृकधारा	$\propto^{1/2} + 1, \propto^{1/2} + 2, \propto^{1/2} + 3$ ....$\propto$	
		(कृतिमातृक से आगे जितने स्थान $\propto$ तक शेष रहे वे सर्व)	$\propto - \propto^{1/2}$
(10)	घनमातृकधारा	1, 2, 3, $\{1^3\}^{1/3}, (2^3)^{1/3}, (3^3)^{1/3}\}$.....$\propto^{1/3}$	$\propto^{1/3}$
(11)	अघनमातृक धारा	घनमातृक से आगे जितने स्थान $\propto$ तक शेष रहे वे सब	
		अर्थात् $\propto^{1/3} + 1, \propto^{1/3} + 2, \propto^{1/3} + 3$ .....$\propto^{1/3}$	$\propto - \propto^{1/3}$
(12)	द्विरूप वर्गधारा	$2^2, 2^{2x2}, 2^{2x2x2}$ ..... लरि लरि $\propto$	लरि लरि $\propto$
(13)	द्विरूप घनधारा	$2^3, 2^{2x3}, 2^{2x2x3}$ ..... या $2^{2+1}, 2^{2x2+2}, 2^{2x2x2+4}$,	
		$2^{2x2x2x2+8}$ .....2 लरि लरि $\propto$	लरि (लरि–लरि$\propto$)
(14)	द्विरूपघनाघनधारा	$(2^9)^2, (2^9)^{2x2}, (2^9)^{2x2x2}$	लरि लरि $-\propto-4$
(15)	अर्धच्छेद राशि	2, 4, 8, 16, 32, 64	लरि $\propto$
(16)	वर्गशलाका राशि	4, 16, 256 पणट्ठी ..... $\propto$	लरि लरि $\propto$

संकलन व्यवहार श्रेणी

सर्वधन आदि शब्दों का परिचय

सर्वधन – समान वृद्धि क्रमवाली ये धाराएँ कहीं से भी प्रारम्भ होकर तत्पश्चात् नियमित समान वृद्धि क्रम से कहीं तक भी जा सकती हैं। उस धारा या श्रेणी के सर्व स्थानों में ग्रहण किए गए अंकों या राशियों का संकलन या गुणनफल 'सर्वधन' कहलाता है।

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 + 32 = 144 [सर्वधन]

❊ **गच्छ, पद, स्थान** – प्रथम अंक से लेकर अन्तिम अंक तक पृथक्–पृथक् अंकों का अपना–अपना स्थान होता है। स्थानों का प्रमाण 'गच्छ', 'पद', अथवा 'स्थान' कहलाता है। यहाँ पद या गच्छ का प्रमाण = 8

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 + 32 = 144

❊ **चय, वृद्धि** – प्रति स्थान पर जितना–जितना बढ़ें अर्थात् समान वृद्धि को 'चय' / 'वृद्धि' कहते हैं।

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 + 32 = 144

उपर्युक्त श्रेणी में 4–4 की वृद्धि हुई है।

❊ **मुख, आदि, प्रथम** – आदि स्थान में जो प्रमाण होता है वह मुख/आदि स्थान/प्रथम कहलाता है।

जैसे – उपरोक्त श्रेणी में मुख/आदि/प्रथम 4 है।

❊ **भूमि या अन्त** – अन्त स्थान में जो प्रमाण होता है वह भूमि/अन्त स्थान कहलाता है।

जैसे – उपरोक्त श्रेणी में भूमि/अन्त = 32

❊ **मध्यधन** – सर्व स्थान के बीच का स्थान मध्यधन है। जहाँ स्थान का प्रमाण सम होता है, वहाँ बीच के दो स्थान का द्रव्य जोड़कर आधा करने पर प्राप्त प्रमाण मध्यधन है।

जैसे – उपरोक्त संकलन व्यवहार श्रेणी के बीच के दो स्थान = 16, 20 है।

अतः $\frac{16+20}{2} = \frac{36}{2} = 18$

❊ **आदिधन** – विवक्षित संख्या का जितना मुख होता है उतना–उतना जितने स्थान हैं उतनी बार रखकर जोड़ने पर जो संख्या प्राप्त हो वह आदिधन कहलाता है।

जैसे – मुख = 4, स्थान = 8 है तो

4 + 4 + 4 + 4 + 4 + 4 + 4 + 4 अथवा 4 × 8 = 32

❊ **उत्तरधन/चयधन** – सर्व स्थानों में जो–जो चय बढ़ता है, उन सब स्थानों के चयों को जोड़कर जो राशि प्राप्त हो, वह चयधन कहलाती है।

❊ सर्वधन में से आदिधन घटाने पर जो संख्या प्राप्त हो वह उत्तरधन कहलाती है।

सर्वधन = 144, आदिधन= 32

जैसे – 4 + 8 + 12 + 16 + 20 + 24 + 28 = 112

अथवा उत्तरधन = सर्वधन – आदिधन

= 144−32 = 112

* **मध्यचयधन/मध्यधन**– बीच के स्थान पर प्रथम स्थान की अपेक्षा वृद्धि को मध्यधन कहते हैं।

जैसे – उपरोक्त संकलन श्रेणी में मध्यधन 18 है तो प्रथम स्थान की अपेक्षा अर्थात् प्रथम स्थान 4 की अपेक्षा 14 की वृद्धि हुई।

संकलन व्यवहार श्रेणी संबंधी प्रक्रियाएँ

सर्वधन निकालने की विधियाँ–

(1) यदि आदि धन और उत्तर धन दिया है तब आदि धन व उत्तर धन को जोड़ने पर सर्वधन प्राप्त होता है।

जैसे – यहाँ आदि धन=32, उत्तर धन= 112 है तब

सूत्र– सर्वधन = आदि धन + उत्तर धन

= 32+112

= 144

(2) यदि मध्यधन और गच्छ का प्रमाण दिया है तब मध्यधन को गच्छ से गुणा करने पर सर्वधन प्राप्त होता है।

जैसे–यहाँ मध्यधन = 18, गच्छ = 8 है तब

सूत्र– सर्वधन = मध्यधन x गच्छ

= 18 x 8

= 144

(3) यदि मुख,गच्छ और चय दिया है तब, यहाँ मुख =4, गच्छ = 8, चय =4

''पदमेगेण विहीणं दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं ।

पभवजुंद पदगुणिदं पदगुणिदं तं विजाणीहि ।। [त्रि.सा.गा.नं. 164]

सूत्र– $\left[\left\{\frac{\text{गच्छ}-1}{2} \times \text{चय}\right\} + \text{मुख}\right] \times \text{गच्छ} = \text{सर्वधन}$

$\left[\left\{\frac{8-1}{2} \times 4\right\} + 4\right] \times 8 = \text{सर्वधन}$

$\left[\frac{7}{2} \times 4 + 4\right] \times 8 = \text{सर्वधन}$

$\left[\frac{28}{2} + 4\right] \times 8 = (14+4) \times 8$ सर्वधन

18 x 8 = सर्वधन

144 = सर्वधन

(4) यदि मुख, भूमि और गच्छ दिया हो तब यहाँ मुख = 4, भूमि = 32, गच्छ/पद = 8

''मुखभूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि'' [त्रि.सा.गा.नं. – 163]

सूत्र– $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2} \times$ **गच्छ = सर्वधन**

$\frac{4+32}{2} \times 8$ = सर्वधन

$\frac{36}{2} \times 8$ = सर्वधन

18×8 = सर्वधन

144 = सर्वधन

(5) यदि मुख, भूमि, गच्छ दिया हो तब

[सर्वधन = S_n, गच्छ = n, मुख = T_1, भूमि = T_n]

यहाँ $S_n = ?$, $n = 8$, $T_1 = 4$, $T_n = 32$

सूत्र– $S_n = \frac{T_1+T_n}{2} x n$ $= \frac{4+32}{2} x\ 8$

$= \frac{36}{2} x\ 8$

$= 18x8 = 144$

<u>गच्छ निकालने की विधि</u> – यदि मुख, भूमि और चय दिया हो तब

''आदी अंत्ते सुद्धे वड्ढिहिदे इगिजुदे ठाणा।'' [त्रि.सा.गां.नं.–57]

यहाँ मुख = 4, भूमि = 32, चय = 4

सूत्र– गच्छ = $\frac{\text{भूमि–मुख}}{\text{चय}} + 1$

गच्छ = $\frac{32-4}{4} + 1$

गच्छ = $\frac{28}{4} + 1$

गच्छ = 7+1

गच्छ = 8

चय निकालने की विधि–

(1) यदि सर्वधन, आदिधन व गच्छ दिया हो तब

"आदिधनोन गुणितं पदोनपदकृतिदलेन सभाजतं पचयं।" [गो.जी./भाषा/49/123]

यहाँ सर्वधन : 144, आदिधन = 32, गच्छ = 8

सूत्र–चय = (सर्वधन–आदिधन) $\div \frac{\text{गच्छ}^2 - \text{गच्छ}}{2}$

चय = $(144 - 32) \div \frac{8^2 - 8}{2}$

चय = $112 \div \frac{8^2 - 8}{2}$

चय = $112 \div \frac{64 - 8}{2}$

चय = $112 \div \frac{56}{2}$

चय = $112 \div 28$

चय = $\frac{112}{28}$

चय = 4

अत: चय = 4

(2) यदि सर्वधन, मुख व गच्छ दिया हो तब चय कितना होगा?

यहाँ सर्वधन = 144, मुख = 4, गच्छ = 8

सूत्र–चय= $\left\{\frac{\text{सर्वधन}}{\text{गच्छ}} - \text{मुख}\right\} \frac{\text{गच्छ}-1}{2}$

अथवा $d = \left\{\frac{S_n}{n} - T_1\right\} \div \frac{n-1}{2}$

$d = \left\{\frac{144}{8} - 4\right\} \div \frac{8-1}{2}$

$d = \left\{18 - 4\right\} \div \frac{7}{2}$

$d = \frac{14 \times 2}{7}$

$d = \frac{28}{7}$

$d = 4$

मुख या आदि निकालने की विधि – (1) यदि सर्वधन, उत्तरधन व गच्छ दिया हो तब

"वेगपदं चयगुणिदं भूमिम्हि रिणधणं चकए। [त्रि.सा.गा.नं.–163]

यहाँ सर्वधन = 144, उत्तरधन = 112, गच्छ = 8, भूमि = 32, चय = 4, गच्छ = 8

(i) भूमि – चय (गच्छ – 1) अथवा $T_n - d\,(n-1) = $ **मुख** (T_1)

$$32 - 4\,(8-1) = T_1$$

$$32 - 32 + 4 = T_1$$

$$0+4 = T_1$$

$$4 = T_1 \text{ (मुख)}$$

(2) $\dfrac{\text{सर्वधन}-\text{उत्तरधन}}{\text{गच्छ}} = \text{मुख}$ [गो.जी./भाषा/49/122/6]

$$\frac{144-112}{8} = \text{मुख}$$

$$\frac{32}{8} = \text{मुख}$$

$$\text{मुख} = 4$$

अन्त या भूमि निकालने की विधि – यदि गच्छ, चय व मुख दिया हो तब

"व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं अंतधनं।" [गो.जी./भाषा/49/122]

यहाँ गच्छ =8, चय = 4, मुख = 4, अन्त/भूमि = ?

सूत्र– **भूमि = मुख+चय (गच्छ – 1) अथवा** $T_1 + d\,(n-1)$

$$\text{भूमि} = 4 + 4\,(8-1)$$

$$\text{भूमि} = 4 + 32 - 4$$

$$\text{भूमि} = 4 + 28$$

$$\text{भूमि} = 32$$

उत्तरधन निकालने की विधि – (1) यदि गच्छ व चय दिया हो तब

"व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं।" [गो.जी./भाषा/49/123]

यहाँ गच्छ (n) = 8, चय (d) = 4, उत्तरधन/चयधन = ?

सूत्र– $\frac{\text{गच्छ}-1}{2}$ x चय x गच्छ अथवा $\frac{n-1}{2}$ nd = चयधन/उत्तरधन

$$\frac{8-1}{2} \times 8 \times 4 = \text{उत्तरधन}$$

$$\frac{7}{2} \times 32 = \text{उत्तरधन}$$

$$\frac{224}{2} = 112 = \text{उत्तरधन}$$

(2) यदि गच्छ, चय व मुख दिया हो तब

"पदमेगेण विहीणं दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं।

पभवजुदं पदगुणिदं पदगुणिदं होदि सव्वत्थ ॥" [गो.क./भाषा/904/1081]

सूत्र– $\left\{\frac{\text{गच्छ}-1}{2} \times \text{चय}\right\} \times \text{गच्छ} = \text{उत्तरधन}$

यहाँ गच्छ = 8, चय = 4 तब उत्तरधन/चयधन = ?

$$\left\{\frac{(8-1)}{2} \times 4\right\} \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$\left\{\frac{7}{2} \times 4\right\} \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$\frac{28}{2} \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$14 \times 8 = \text{उत्तरधन}$$

$$112 = \text{उत्तरधन}$$

आदिधन निकालने की विधि – यदि गच्छ व मुख दिया हो तब –

"पदहतमुखमादिधनं।" [गो.जी./भाषा/49/122]

यहाँ मुख = 4, गच्छ = 8, आदिधन = ?

सूत्र– **मुख × गच्छ = आदिधन**

4 × 8 = आदिधन

आदिधन = 32

व्यकलन विधि

$$\text{संकलन धन} = \left[\left\{\frac{\text{पद}-1}{2} \times \text{चय}-\text{आदि धन}\right\} \times \text{पद}\right]$$

यहाँ पद=1000
चय=1, आदिधन=1000

$$= \left[\left\{\frac{1000-1}{2} \times 1-1000\right\} \times 1000\right]$$

$$= \left[\left\{\frac{999}{2} \times 1-1000\right\} \times 1000\right]$$

$$= \left[\{499.5-1000\} \times 1000\right]$$

$$= \left[\ 500.5 \times 1000\right]$$

$$= 500500.0$$

$$= 500500$$

नोट–यहाँ हमने व्यकलन बिधि को दर्शाया है इसी को यदि संकलन बिधि से करना है तो इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि जहाँ हमने आदि धन भूमि (1000) को लिया है वहाँ आदिधन मुख (1) को लेना चाहिए।

यथा– $$\text{संकलन धन} = \left[\left\{\frac{\text{पद}-1}{2} \times \text{चय}\right\} + \text{आदि धन}\right] \times \text{पद}$$

$$= \left[\left\{\frac{1000-1}{2} \times 1\ \right\} + 1\right] \times 1000$$

$$= \left[\left\{\frac{999-1}{2} \times 1\ \right\} + 1\right] \times 1000$$

$$= \left[499.5+1\right] \times 1000$$

$$= 500.5\times 1000$$

$$= 500500.0$$

$$= 500500$$

इसी प्रकार हम स्वर्गों विमानों व नरकों के बिलों का अथवा और भी किन्हीं का भी संकलन हम कम समय में आसानी से प्राप्त कर सकते हैं और 1–1 चय वृद्धि के लिए 1 से लेकर एक लाख, 10 लाख, 1 करोड़ आदि की संख्याओं को जोड़ा जा सकता है। यहाँ एक से 100 तक की संख्या को जोड़ना है।

$$\text{मध्यधन} = \frac{100+1}{2} \times \text{पद} = \frac{101}{2} \times 100 = 50.5 = \times 100 = 5050.0$$

$$= 5050$$

नियम– इसी प्रकार इन नियमों/सूत्रों द्वारा हम सम–विषम कोई भी संख्या हो, बड़ी से बड़ी संख्याओं का संकलन निकाल सकते है।

जैसे–1 से 1000 तक संख्या का संकलन निकालना है तो मध्यधन निकालकर पद से गुणा करने पर 1 से 1000 की संख्या का जोड़/संकलन प्राप्त होगा।

मध्यधन = $\frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2}$ (यहाँ मुख =1000, भूमि = 1)

$\frac{1000+1}{2} = \frac{1001}{2}$ = 500.5 (मध्यधन)

संकलन धन = मध्य धन x पद (यहाँ पद = 1000)

= 500.5 x 1000

= 500500.0

= 500500

नोट–अगले अध्याय में विभिन्न शास्त्रों में उद्धृत सहनानियों के बारे में जानने का प्रयास करते हैं...

दूसरों को भोजन कराये तो–फल
अपने को भोजन कराये तो–मल
और न स्वयं करे, ना किसी को कराये तो–विमल।

अध्याय - 10

सहनानियाँ

लौकिक संख्याओं की अपेक्षा सहनानियाँ

❈ जहाँ जिस पदार्थ का नाम लिखा हो वहाँ उस पदार्थ की जितनी संख्या होती है उतनी ही संख्या जानना चाहिए।

त्रिलोकसार ग्रन्थ की गाथा नं. २१ में कहा भी है -

विधुणिधिणगणवर विणभणिधिणयण बलर्द्धि णिधिखर हस्तिनः।

अर्थात् विधु अर्थात् चन्द्रमा = १, निधि = ९, नग अर्थात् पर्वत = ७, रवि = १२ (राशि की अपेक्षा

नभ = ०, नयन = २, बल अर्थात् बलभद्र = ९, ऋद्धि = ९, निधि = ९, खर = ६

हाथी = ८ (दिग्गज की अपेक्षा) आदि। इस प्रकार अन्य जगह भी जानना चाहिए।

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपञ्चाष्टकल्पितैः क्रमशः।
स्वर-व्यंजन शून्यं संख्यामात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम्।।

अर्थात्	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ये नौ
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	ये नौ
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
	प	फ	ब	भ	म					ये पाँच
	१	२	३	४	५					
	य	र	ल	व	श	ष	स	ह		ये आठ
	१	२	३	४	५	६	७	८		

अकारादि स्वर, ञ तथा न को बिन्दी ० जानना चाहिए तथा अक्षर की मात्रा और ऊपर कोई अक्षर हो तो उसे छोड़ देना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि अंक के स्थान पर कोई अक्षर दिया हो तो वहाँ व्यंजन का अर्थ तो उपरोक्त प्रकार १, २ आदि जानना चाहिए। जैसे ङ, ण, म, श इन सबका अर्थ ५ है। और स्वरों का तथा ञ, न, का अर्थ बिन्दी [0] जानना चाहिए। मात्रा तथा संयोगी अक्षरों को सर्वथा छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार से अंक प्राप्त हो जायेगा।

गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि

लक्ष	= ल.	जघन्य ज्ञान	= ज.ज्ञा.
कोटि	= को.	मूल	= मू.
लक्ष कोटि	= ल.को.	जघन्य को आदि लेकर अन्य भी	= ज=
कोड़ा कोड़ी	= को.को.	६५ को आदि लेकर अन्य भी	= ६५=

अन्त: कोटा कोटि	= अं. को.को.	एकट्ठी	= १८=
जघन्य	= ज०	बादाल	= ४२=
उत्कृष्ट	= उ०	पणट्ठी	= ६५=
अजघन्य	= अज०		
साधिक जघन्य	= ज०		

Note – इसी प्रकार सर्वत्र प्रकृत नाम के आदि अक्षर उस उसकी सहनानी है।

अलौकिक संख्याओं की अपेक्षा सहनानियाँ [गोम्मटसार जीवकाण्ड जी से]

अलौकिक संख्याएँ	अर्थ संदृष्टि (सहनानी)
संख्यात	१
असंख्यात	ↄ$^{(a)}$
अनन्त	ख
जघन्य संख्यात	२
जघन्य असंख्यात	२
उत्कृष्ट असंख्यात	१५
जघन्य अनंत	१६
उत्कृष्ट अनंत	के (केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद)
उत्कृष्ट संख्यात	१५
जघन्य परितासंख्यात	१६
उत्कृष्ट परितासंख्यात	$२^{१६}$
जघन्य युक्तासंख्यात	२
उत्कृष्ट युक्तासंख्यात	$४^{१६}$
जघन्य असंख्यासंख्यात	४
उत्कृष्ट असंख्यासंख्यात	$२५६^{१६}$
जघन्य परितानन्त	२५६
उत्कृष्ट परितानन्त	$ज.जु.अ.^{१६}$
जघन्य युक्तानन्त	ज.जु.अ.
उत्कृष्ट युक्तानन्त	$ज.जु.अ.व.^{१६}$
जघन्य अनन्तानन्त (जघन्य युक्तानन्त का वर्ग)	ज.जु.अ.व.
उत्कृष्ट अनन्तानन्त (केवलज्ञान)	के
मध्यम अनंतानंत (सम्पूर्ण जीव राशि)	१६

केवलज्ञान का प्रथम मूल	के.मू.[1]
केवलज्ञान का द्वितीय मूल	के.मू.[2]
केवलज्ञान	के
ध्रुव राशि	२५६/१३
असंख्यात लोक प्रमाण राशि	६
π (१६२२ या १६/६)	$\sqrt{१०}$

द्रव्य गणना की अपेक्षा सहनानियाँ – (गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि)

सम्पूर्ण जीव राशि	१६
संसारी जीव राशि	१३
मुक्त (सिद्ध) जीव राशि	३
पुद्गल राशि	१६ ख.
काल समय राशि	१६ ख.ख.
आकाश प्रदेश राशि	१६ ख.ख.ख.

पुद्गल परिवर्तन निर्देश की अपेक्षा सहनानियाँ – (गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि)

गृहीत द्रव्य	१
अग्रहीत द्रव्य	०
मिश्र द्रव्य	×

एकेन्द्रियादि जीव निर्देश की अपेक्षा सहनानियाँ – (गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि)

एकेन्द्रिय	ए
विकलेन्द्रिय	वि
पंचेन्द्रिय	पं
असंज्ञी	अ
संज्ञी	सं
पर्याप्त	२
अपर्याप्त	३
सूक्ष्म	सू.
बादर	बा.

कर्म व स्पर्धकादि निर्देश की अपेक्षा – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

समय प्रबद्ध	स$_{a}$
उत्कृष्ट समय प्रबद्ध	स$_{१२}$
जघन्य वर्गणा	व
स्पर्धक शलाका	९
एक स्पर्धक विषै वर्गणाऐं	४

यहाँ ९ व ४ के अंक दिये हैं वे संकेत मात्र इनके होने पर यह पहचान जो जाती है कि यहाँ क्या कहना चाहते हैं किन्तु एक स्पर्धक में अनंत वर्गणाएँ हैं जिसका प्रतीक चार माना है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीव राशि को १६ माना है वह संकेताक्षर मात्र है।

क्षेत्र प्रमाणों की अपेक्षा सहनानियाँ – [तिल्लोय पण्णति, गोम्मटसार व लब्धिसार से]

सूच्यंगुल	सू.	सू.	२
प्रतरांगुल	सू.^{२}	प्र	४
घनांगुल	सू.^{३}	घ	६
जगत्श्रेणी		ज	—
जगत्प्रतर	ज^{२}	ज.प्र.	=
लोकप्रतर	ज^{२}	लो.प्र.	=
घनलोक	ज^{३}	घ. लो.	≡
रज्जू	$\frac{\text{जगुत्श्रेणी}}{७}$	$\overline{\text{र}}$	$\frac{—}{७}$
रज्जू प्रतर	रज्जू^{२}	$\overline{(७^{२})}$	$\frac{=}{४९}$
रज्जू घन	रज्जू^{३}	$\overline{(७^{३})}$	$\frac{≡}{३४३}$

सूंच्यगुल की अर्धच्छेद राशि	(पल्य की अर्धच्छेद राशि)^{२}	छे छे
सूच्युंगल की वर्गशलाका राशि	(पल्य की वर्गशलाका राशि)^{१}	व$_{२}$
प्रतरांगुल की अर्धच्छेद राशि	(सूच्यंगुल की अर्धच्छेद राशि × २)	छे छे$_{२}$
प्रतरांगुल की वर्गशलाका राशि	(सू. व. +१)	व$_{२}^{१-}$
घनांगुल की अर्धच्छेद राशि		छे छे$_{३}$
घनांगुल की वर्गशलाका राशि		व$_{२}$
जगत्श्रेणी की अर्धच्छेद राशि	(पल्य की अर्धच्छेद राशि ÷ अंस.) × (घनांगुल की अर्धच्छेद राशि)	७छे छे छे$_{३}$ या वि छे छे$_{३}$

(यहाँ वि = विरलन राशि)

शंका–प्रथम वर्गमूल किसे कहते हैं व द्वितीय वर्गमूल किसे कहते है ?

समाधान–किसी भी संख्या का पहली बार वर्गमूल निकालना प्रथम वर्ग मूल है उसी संख्या का दूसरी

बार वर्गमूल निकालना द्वितीय वर्गमूल है जैसे माना 65536 संख्या है इसका प्रथम वर्गमूल 256 है तथा इसी का द्वितीय वर्गमूल 16 है।

जगत्श्रेणी की वर्गशलाका राशि	घनांगुल की वर्गशलाका + $\frac{\text{पल्य की वर्ग शलाका}}{\text{ज.परीअसं.x२अ.}}$	
	या व$_2$ + $\frac{\text{व}}{\text{१६x२}}$	व १६x२
जगत्प्रतर की अर्धच्छेद राशि	जगत्श्रेणी की अर्द्धच्छेद राशि × २	७छे छे छे$_2$
जगत्प्रतर की वर्गशलाका राशि	जगत्श्रेणी की वर्गशलाका + 1	[व^1 १६/२ व$_2$]
घनलोक की अर्धच्छेद राशि	७छे छे छे$_2$	वि छे छे$_2$
घनलोक की वर्गशलाका राशि		[व १६/२ व$_2$]

काल प्रमाणों की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

आवली	आ	२
अन्तर्मुहूर्त	संख्यात आ	२$_0$
पल्य	प.	६५५३६
सागर	सा.	
प्रतरावली	आवली^{2} / २^2	४
घनावली	आवली^{3} / २^3	८
पल्य की अर्धच्छेद राशि	छे	
पल्य की वर्गशलाका राशि	व अथवा	हे^{0}
सागर की अर्धच्छेद राशि	$\frac{\text{प}}{\text{हे}}$	
संख्यात आवली		२$_0$

गणित की प्रक्रियाओं की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

नोट – यहाँ '×' को सहनानी का अंग न समझना। केवल आँकड़ों का अवस्थान दर्शाने को ग्रहण किया है।

व्यकलन (घटाना)	× (ऊपर बिन्दु)	गुणा	x^1
संकलन (जोड़ना)	×	मूल	मू.
किंचिदून	×-	वर्गमूल	व.मू.

एक घाट	१$^{\frown}$	प्रथम वर्गमूल	मू^{1}
किंचिदधिक	1x	द्वितीय वर्गमूल	मू^{2}
संकलने में एक दो तीन आदि राशियाँ	I, II, III	घनमूल	घमू
		विरलन राशि	वि.
ऋण राशि	$\times^{0}$		
पाँच घाट लक्ष या ल$_{५}$	ल−५		

लघुरिक्थ गणित की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

संकेत – अ.छे – अर्धच्छेद राशि

व.श. – वर्गशलाका राशि

पल्य की अर्धच्छेद राशि	$\log_2$ of पल्य	प$_{1}$–छे
पल्य की व.श. (जघन्य वर्गणा)	$\log_2 \log_2$ of पल्य	व
सागर की अ.छे.	पल्य की ≃ अर्धच्छेद + संख्यात	$\frac{४}{छे}$
सूच्यंगुल की अ.छे.	(पल्य की अर्धच्छेद राशि)^{2}	छे छे
सूच्यंगुल की व.श.	पल्य की व.श. × २	व$_{२}$
प्रतरांगुल की अ.छे.	सूच्यंगुल की अ.छे. ×२	छे छे
प्रतरांगुल की व.श.	सूच्यंगुल की व.श. +१	व$_{२}^{१-}$
घनांगुल की अ.छे.	सूच्यंगुल की अ.छे × ३	छे छे$_{३}$
घनांगुल की व.श.	द्विरूप वर्गधारा में जितने स्थान आगे जाकर सूच्यंगुल प्राप्त होता है उतने ही स्थान आगे जाकर द्विरूप घनधारा में घनांगुल प्राप्त होता है।	व$_{२}$
जगत्श्रेणी की अ.छे.	पल्य की अ.छे + अंस.	छे छे छे$_{३}$ ७वा वि छे छे$_{३}$
जगत्श्रेणी की व.श.	(घनांगुल की व.श.+ज. परीता संख्यात)×२	{व / १६/२ / व$_{२}$}
जगत्प्रतर के अ.छे.	जगत्श्रेणी की अ.छे. × २	छे छे छे$_{२}$
जगत्प्रतर की व.श.	जगत्श्रेणी की व.श. +१	{१− / व / १६/२ / व$_{२}$}
घनलोक के अ.छे.	सूच्यंगुल की अ.छे. × 3	छे छे छे$_{३}$

घनलोक की व.श.	द्विरूप वर्ग धारा में जितने स्थान जाने पर जगत्श्रेणी प्राप्त होती है, उतने ही स्थान जाने पर द्विरूप घनधारा में घनलोक प्राप्त होता है।	{व / १६/२ / व₂}

श्रेणी गणि की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

एक गुणहानि	८
एक गुणहानि के स्पर्धक	६
डेढ़ गुणहानि	१२
दो गुणहानि (निषेकाहार)	१६
नाना गुणहानि	ना
[किंचिदून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध	३
उत्कृष्ट समयप्रबद्ध	स ३२

षट् गुणवृद्धि हानि की अपेक्षा सहनानियाँ – [गोम्मटसार जीवकाण्ड की अर्थ संदृष्टि]

अनन्त भाग वृद्धि/हानि	उ (उरबंक)
असंख्यात भाग वृद्धि/हानि	४ (चतुरंक)
संख्यात भाग वृद्धि/हानि	५ (पंचक)
संख्यात गुण वृद्धि/हानि	६ (षडंक)
असंख्यात गुण वृद्धि/हानि	७ (सप्तंक)
अनन्त गुणवृद्धि/हानि	८ (अष्टंक)

पूर्वोक्त सभी सहनानियों के आधार पर अब अक्षर क्रम की अपेक्षा सहनानियों को कहते हैं –

अको को	अन्त: कोटा कोटी
अ	असंज्ञी
उ	उत्कृष्ट 'अनन्तभाग, अपकर्षण भागहार'
ए	एकेन्द्रिय
के	केवलज्ञान 'उत्कृष्ट अनन्तानन्त'
के मू^{1}	केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल
के मू^{2}	केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल
को	कोटि
को.को.	कोटाकोटी
ख	अनन्त

ख ख ख	अनन्तानन्त लोकाकाश
घ	घन, घनांगुल
घ मू	घनमूल
घ लो	घनलोक
छे	अर्द्धच्छेद तथा पल्य की अ.छे. राशि
छे छे	सूच्यंगुल के अ.छे.
छे छे$_{१}$	प्रतरांगुल के अ.छे.
छे छे$_{२}$	घनांगुल के अ.छे.
$\left[{\text{छे}\atop ७}\right.$ छे छे$_{१}$	जगत्श्रेणी के अ.छे.
$\left[{\text{छे}\atop ७}\right.$ छे छे$_{४}$	जगत्प्रतर के अ.छे.
$\left[{\text{छे}\atop ७}\right.$ छे छे$_{६}$	घनलोक के अ.छे.
ज	जघन्य, जगत्श्रेणी
ज^{१}	साधिक जघन्य
ज =	जघन्य को आदि लेकर अन्य भी
ज जु अ	ज. युक्तानन्त
ज जु अ$^{१\square}$	उ. परीतानन्त
ज जु अ व	ज. युक्तानन्त का वर्ग, ज. अनन्तानन्त
ज जु अ व$^{१\square}$	उत्कृष्ट युक्तानन्त
ज.ज्ञा.	जघन्य ज्ञान
ज.प्र.	जगत्प्रतर
ना	नाना गुण हानि
प	पल्य
प्र	प्रतरांगुल
बा	बादर
मू	मूल
मू^{१}	प्रथम मूल
मू^{२}	द्वितीय मूल
ल	लक्ष
ल को	लक्ष कोटि

लो	लोक
लो.प्र.	लोक प्रतर
व	वर्ग, जघन्य वर्गणा, पल्य की वर्ग शलाका
व,	प्रतरांगुल की व.श.
व,	घनांगुल की व.श.
व १६/२	सूच्यंगुल की व.श. जगत्श्रेणी की व.श.
[व १६/२ व,	जगत्प्रतर की व.श.
[व १६/२ व,	घनलोक की व.श.
व.मू.	वर्गमूल
व.मू.^{१}	प्रथम वर्गमूल
व.मू.^{२}	द्वितीय वर्गमूल
वि	विरलन राशि
सं	संज्ञी
स७	समय प्रबद्ध
स ३२	उत्कृष्ट समयप्रबद्ध
सा	सागर
सू	सूक्ष्म, सूच्युंगल
सू^{२}	(सूच्युंगल)^{२}, प्रतरांगुल
सू^{३}	(सूच्यंगुल)^{३}, घनांगुल

पूर्वोक्त सभी सहनानियों के आधार पर अब अंक क्रम की अपेक्षा से सहनानियों को कहते हैं –

१	गृहीत पुद्‌गल प्रचय
२	जघन्य संख्यात, जघन्य असंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, सूच्यंगुल, आवली
२०	अन्तर्मुहूर्त, संख्यात आवली
२$^{\text{ख}}$	उत्कृष्ट परीतासंख्यात
३	सिद्ध जीवराशि
४	असंख्यात भाग, जघन्य असंख्यातासंख्यात, एक स्पर्धक में वर्गणा, प्रतरांगुल, प्रतरावली

५	संख्यात भाग
६	संख्यात गुण, घनांगुल
७	असंख्यात गुण
$\overline{\text{७}}$	रज्जू
$\overline{\text{७}}^{2}$	रज्जू प्रतर
$\overline{\text{७}}^{3}$	रज्जू घन
८	अनन्त गुण, एक गुणहानि, घनावली
९	एक गुणहानि में स्पर्धक, स्पर्धक शलाका
१२	डेढ़ गुणहानि
१३	संसारी जीव राशि
१५	उत्कृष्ट असंख्यात
१६	जघन्य अनन्त, सम्पूर्ण जीव राशि, दो गुणहानि, निषेकाहार
१६ ख	पुद्‌गल राशि
१६ ख ख	काल समय राशि
१६ ख ख ख	आकाश प्रदेश
१८	एकट्‌ठी
४२	बादाल
$\overline{\text{४९}}$	जगत् प्रतर
६५	पणट्‌ठी
$\overline{\text{३४३}}$	रज्जूघन
$\overline{\text{२५६}}^{\text{१}\frown}$	जघन्य परीतानन्त
$\text{२५६}^{\text{१}}$	उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात
२५६/१३	ध्रुव राशि

पूर्वोक्त सभी सहनानियों के आधार पर अब आँकड़ों की अपेक्षा सहनानियों को कहते हैं –

Note – यहाँ '×' को सहनानी का अंग न समझना। केवल आँकड़ों का अवस्थान दर्शाने को ग्रहण किया है।

$\overline{\times}$	संकलन जोड़ना
$\times_$	किंचिदून
$\times^{\frown}$	व्यकलन (घटाना)
$\text{१}^{\frown}$	एक घाट
$\times^{\text{।}}$	किंचिदधिक
I, II, III	संकलन में एक, दो, तीन आदि राशियाँ

0	अग्रहीत वर्गणा
×	मिश्र वर्गणा
$२^{१०}$	उत्कृष्ट परीतासंख्यात
$४^{१०}$	उत्कृष्ट युक्तासंख्यात
$२५६^{१०}$	उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात
ज जु $अ^{१०}$	उत्कृष्ट युक्तानंत
$ज^{१}$	साधिक जघन्य
$व_{२}^{१६}$	सूच्युंगल की वर्गशलाका
[$व^{१-}$ 16/2 $व_{२}$	जगत्प्रतर की वर्गशलाका
—	जगत्श्रेणी
=	जगत्प्रतर
≡	घनलोक
$\overline{७}$	रज्जू
$\overline{\overline{४९}}$	रज्जू प्रतर
$\overline{\overline{\overline{३४३}}}$	रज्जू घन
♀	संख्यात
ә	असंख्यात
[♀ छे	सागर की अर्धच्छेद राशि
[छे छे $छे_{९}$]	जगत्श्रेणी की अर्धच्छेद राशि
[छे छे $छे_{६}$]	जगत्प्रतर की अर्धच्छेद राशि
[छे छे $छे_{८}$]	घनलोक की अर्धच्छेद राशि
$ә^{१२}_{२}$♀	किंचिदून द्वयर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध अन्तर्मुहूर्त, संख्यात आवली

कर्मों की स्थिति व अनुभाग की अपेक्षा सहनानियाँ [लब्धिसार की अर्थ संदृष्टि]

अचलावली या आबाधा काल

क्रमिक हानिगत निषेक, उदयावली, उच्छिष्टावली

कर्म स्थिति [आबाधावली के ऊपर निषेक रचना]

आबाधा काल + उदयावली + उपरितन स्थिति + उच्छिष्टावली

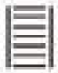
अनुभाग में अविभाग प्रतिच्छेद के प्रमाण की समानता लिए एक वर्ग वर्गणा में पाई गई वर्गणा की संदृष्टि

वर्ग का प्रमाण वर्गणा में क्रम से हानि रूप होता है।

कर्मानुभाग

[गो.जी की अर्थ संदृष्टि, जीव तत्त्व प्रदीपिका, ति.प., लब्धि सार की अर्थ संदृष्टि सम्प्रति जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-2 पृ.सं. 218-222]

नोट-आगे के अध्याय में तिलोय पण्णत्ति व त्रिलोकसार ग्रंथ से लोक के क्षेत्रफल-घनफल-परिधि को विभिन्न प्रकारसे जानेंगे...

अध्याय–11
लोक का क्षेत्रफल व घनफल

लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है। इसका आधा $\frac{14}{2}$ = 7 राजू प्रमाण दक्षिणोत्तर आयाम अर्थात् चौड़ाई है। दक्षिणोत्तर दिशा में लोक के अधोभाग से ऊपर 14 राजू ऊँचाई पर्यंत लोक सर्वत्र 7 राजू चौड़ा है, कहीं भी हीनाधिक नहीं है। पूर्व पश्चिम दिशाओं का व्यास अध: व मध्य लोक में क्रम से भूमि 7 राजू, मुख 1 राजू तथा उर्ध्व लोक के मध्य में भूमि 5 राजू और मुख अध: एवं शिखर पर एक राजू प्रमाण है। इन दोनों (मुख और भूमि) के बीच में हानि और वृद्धि चय को साधना चाहिए। आदि प्रमाण का नाम – मुख, अन्त प्रमाण का नाम – भूमि तथा घटने का नाम हानि और क्रम से बढ़ने का नाम चय है।

हानि और चय – मुख और भूमि में जिसका प्रमाण अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण को घटाकर ऊँचाई का भाग देने से भूमि और मुख की हानि तथा चय प्राप्त होता है। भूमि और मुख के योग को आधा कर पद (ऊँचाई) से गुणा करने पर क्षेत्रफल की प्राप्ति होती है, तथा उसी क्षेत्रफल में वेध का गुणा करने से घनफल होता है।

सूत्र– (1) हानि अथवा चय = $\frac{\text{भूमि}-\text{मुख}}{\text{ऊँचाई}}$

(2) त्रिभुज या चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2}$ × ऊँचाई (अर्थात् पद)

(3) घनफल = क्षेत्रफल × वेध (अर्थात् मोटाई)

सम्पूर्ण लोक का क्षेत्रफल

अधोलोक का क्षेत्रफल = भूमि = 7 राजू, मुख – 1 राजू, उत्सेध = 7 राजू।

$$\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2} \times \text{ऊँ.} = \frac{1+7}{2} \times 7 = \frac{8}{2} \times 7 = 4\times 7$$

= 28 वर्ग राजू

उर्ध्वलोक का क्षेत्रफल = भूमि = 1 राजू, मध्य में = 5 राजू, मुख = 1 राजू, उत्सेध = 7 राजू।

$$\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2} \times \text{ऊँ.} = \frac{1+5}{2} \times 7 = \frac{6}{2} \times 7 = 3\times 7$$

= 21 वर्ग राजू

सम्पूर्ण लोक का क्षेत्रफल = 28 + 21 = 49 वर्ग राजू

अधोलोक का घनफल = क्षेत्रफल × वेध

= 28×7 = 196 घन राजू (अर्थात् अधोलोक के एक एक राजू प्रमाण लम्बे, चौड़े और ऊँचे खण्ड किये जाए तो 196 खण्ड हो सकते है।

ऊर्ध्वलोक का घनफल = क्षेत्रफल × वेध

= 21×7 = 147 घन राजू

सम्पूर्ण लोक का घनफल = क्षेत्रफल × वेध (मोटाई)= 49 × दक्षिणोत्तर सर्वत्र 7 राजू

49 × 7 = 343 घन राजू।

अथवा अधोलोक का घनफल + ऊर्ध्वलोक का घनफल = सम्पूर्ण लोक का घनफल

196 + 147 = 343 घन राजू

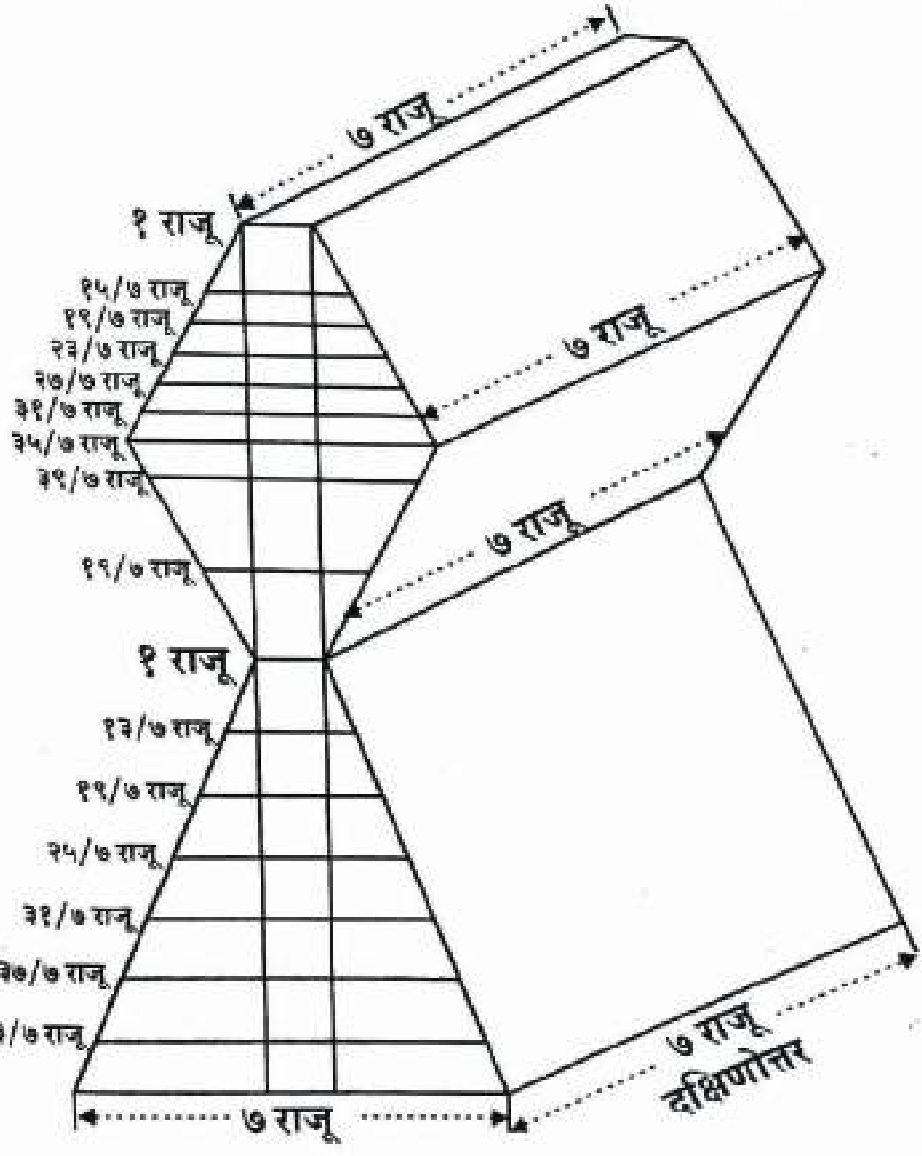

नोट– इस अध्याय में लोक के क्षेत्रफल और घनफल को जाना आगे के अध्याय में अधोलोक के क्षेत्रफल को विभिन्न प्रकार से जानेंगे।

अध्याय–12

अधोलोक का क्षेत्रफल

अधोलोक का क्षेत्रफल आठ प्रकार से कहते हैं – (1) सामान्य, (2) ऊर्ध्वायत, (3) तिर्यगायत, (4) यवमुरज, (5) यवमध्य, (6) मन्दर, (7) दूष्य, (8) गिरिकटक।

(1) सामान्य अधोलोक का क्षेत्रफल = मुख और भूमि को जोड़कर उसका आधा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसमें पद अर्थात् ऊँचाई का गुणा करने पर सामान्य अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

अधोलोक का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2} \times$ ऊँचाई (पद)

भूमि = 7 राजू, मुख = 1 राजू, ऊँचाई (पद) = 7 राजू

$$\frac{7+1}{2} \times 7 = \frac{8}{2} \times 7 = 4 \times 7 = 28 \text{ वर्ग राजू}$$

(2) उर्ध्वायत अधोलोक का क्षेत्रफल – ऊर्ध्वता अथवा लम्बे और चौकोर क्षेत्र के क्षेत्रफल को ऊर्ध्वायत क्षेत्रफल कहते हैं। अधोलोक की चौड़ाई के मध्य में अ और ब नाम के दो खण्ड करके अ खण्ड के समीप ब खण्ड को उल्टा रखने से आयत चतुरस्र क्षेत्र प्राप्त होता है। जैसे –

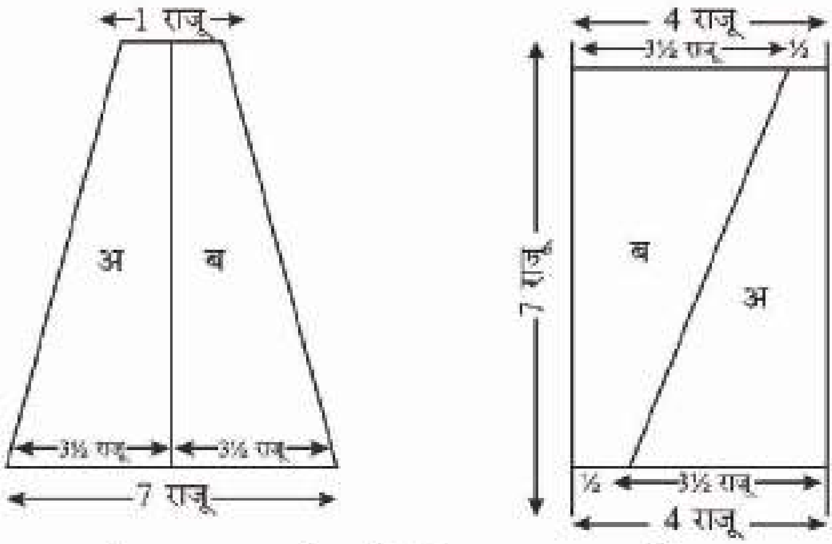

आयत चतुरस्र का क्षेत्रफल = लम्बाई x चौड़ाई अथवा भुजा x कोटि

यहाँ लम्बाई = 7 राजू, चौड़ाई = 4 राजू अथवा भुजा = चौड़ाई, कोटि = लम्बाई

अत: 7 राजू x 4 राजू = 28 वर्ग राजू

नोट–घनफल प्राप्त करने के लिए सर्वत्र क्षेत्रफल का 7 राजू से गुणा करें अर्थात् चौड़ाई सर्वत्र 7 राजू है।

(3) तिर्यगायत अधोलोक का क्षेत्रफल – जिस क्षेत्र की लम्बाई अधिक और ऊँचाई कम हो उसे तिर्यगायत क्षेत्र कहते हैं। अधोलोक 7 राजू ऊँचा है। भूमि 7 राजू और मुख 1 राजू है। 7 राजू ऊँचाई के बराबर दो भाग करने पर नीचे (क्र. 1) का भाग 3½ राजू ऊँचा, और 7 राजू भूमि तथा 4 राजू मुख वाला हो जाता है। ऊपर के भाग की चौड़ाई की अपेक्षा दो भाग करने पर प्रत्येक भाग 3½ राजू ऊँचा, 2 राजू भूमि और ½ राजू मुख वाला हो जाता है। इन दोनों (क्र. 2 और 3) भागों को नीचे वाले (क्र. 1) भाग के दायीं बायीं ओर उलट कर स्थापन करने से 3½ राजू ऊँचा और 8 राजू लम्बा तिर्यक् आयत क्षेत्र बन जाता है। जैसे –

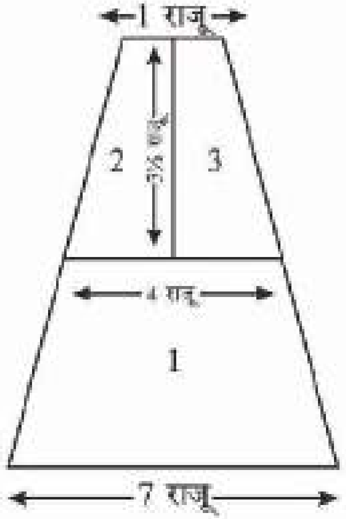

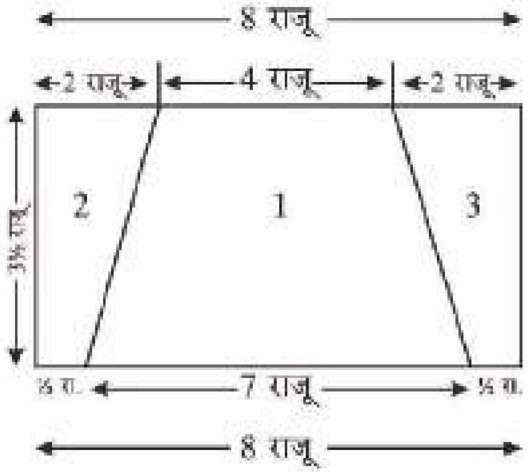

आयत का क्षेत्रफल = लम्बाई X चौड़ाई

यहाँ ल. = 8 राजू चौ. = 3½ राजू

अतः $8 \times 3\frac{1}{2} = \frac{8}{1} \times \frac{7}{2} = \frac{56}{2} = 28$ वर्ग राजू

(4) यवमुरज अधोलोक का क्षेत्रफल – अधोलोक को यव (जौ अन्न) व मुरज (मृदङ्ग) के आकार में विभाजित करने का नाम यवमुरजाकार है।

अधोलोक के दोनों पार्श्वभागों में 18 अर्धयव प्राप्त होते हैं और 1 मुरज प्राप्त होता है।

एक अर्धयव की भूमि 1 राजू, मुख 0, उत्सेध $= \frac{7}{3}$ राजू [एक ओर 3 राजू घटने पर 7 राजू की ऊँचाई प्राप्त होती है तो एक राजू के घटने पर कितनी होगी? $\frac{7}{3}$ राजू]

यहाँ अर्धयव की ऊँचाई $= \frac{7}{3} \times \frac{1}{2}$

$= \frac{7}{6}$ राजू

अर्धयवों का क्षेत्रफल = अर्धयवों का आकार त्रिकोणाकार है।

सूत्र = त्रिभुज का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}$ × ऊं.$\frac{1+0}{2} = \frac{1}{2} \times \frac{7}{6} = \frac{7}{12}$ = वर्ग राजू

अत: एक अर्धयव का क्षेत्रफल $\frac{7}{12}$ वर्ग राजू है।

तब 18 अर्धयवों का क्षेत्रफल होगा $= \frac{7}{12} \times 18 = \frac{126}{12} = 10\frac{1}{2}$ वर्ग राजू

मूरज का क्षेत्रफल – दोनों पार्श्व भागों के 18 अर्धयवों को अलग कर देने के बाद अधोलोक का आकार एक मुरज सदृश अवशेष रहता है। इसे ऊंचाई में से आधा कर देने पर दो अर्धमूरज प्राप्त होते हैं।

यहाँ मुख = 1 राजू, भूमि = 4 राजू, उत्सेध = 3½ राजू,

इस अर्धमूरज का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}$ × ऊं.

$$\frac{4+1}{2} \times \frac{7}{2} = \frac{5}{2} \times \frac{7}{2} = \frac{35}{4}$$ = वर्ग राजू

जब अर्धमूरज क्षेत्रफल $= \frac{35}{4}$ वर्ग राजू है तब एक मूरज का क्षेत्रफल होगा

$$\frac{35}{4} \times 2 = \frac{70}{4} = \frac{35}{2} = 17\frac{1}{2}$$ वर्ग राजू

सम्पूर्ण यवमूरज अधोलोक का क्षेत्रफल = $17\frac{1}{2} + 10\frac{1}{2} = \frac{35}{2} + \frac{21}{2}$

$$= \frac{35+21}{2} = \frac{56}{2}$$ = 28 वर्ग राजू

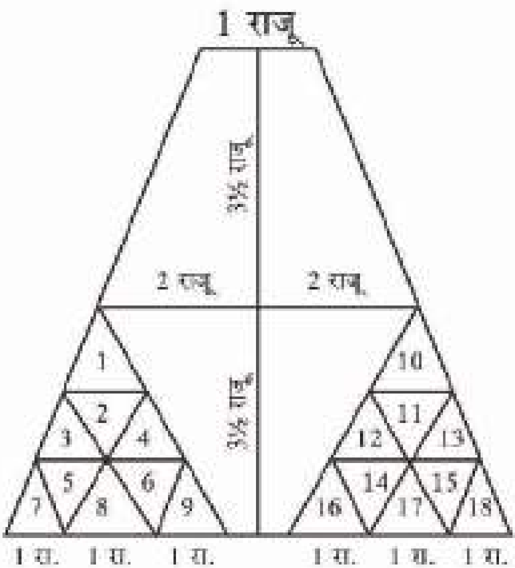

(5) यवमध्य अधोलोक – अधोलोक के सम्पूर्ण क्षेत्र में यवों की रचना करने को यवमध्य कहते हैं। जिस प्रकार यवमुरज के दोनों पार्श्व भागों में अर्धयव की रचना की थी उसी प्रकार सम्पूर्ण अधोलोक में यव की रचना करने से 20 पूर्ण यव और 8 अर्धयव प्राप्त होते हैं। इन 8 अर्धयवों के 4 पूर्ण यव बनाकर सम्पूर्ण अधोलोक में 24 पूर्ण यव की प्राप्ति हुई।

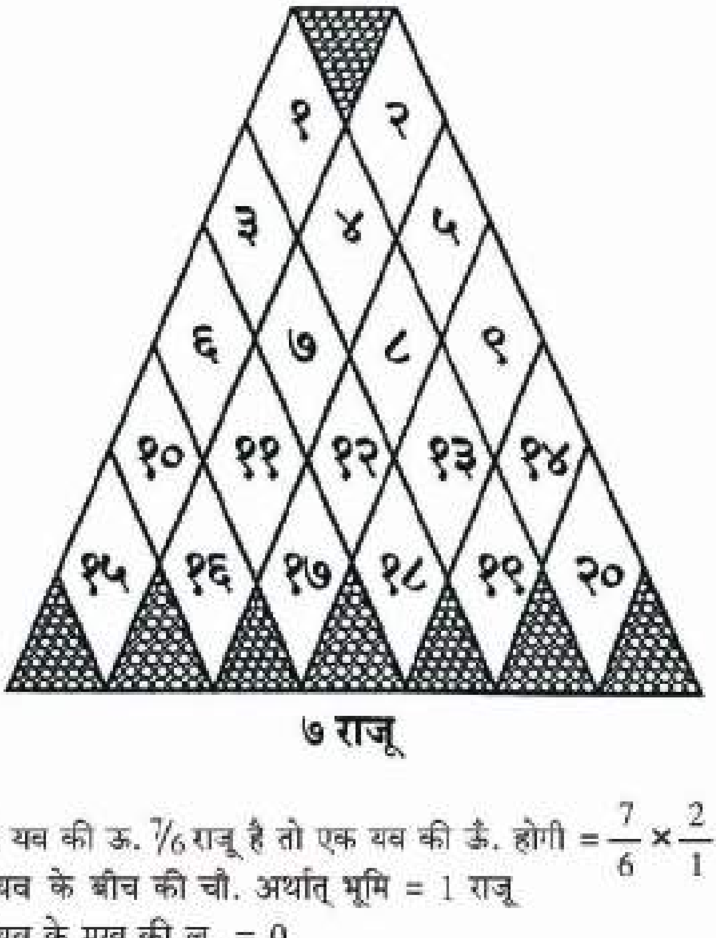

क्षेत्रफल - यदि ½ यव की ऊ. 7/6 राजू है तो एक यव की ऊँ. होगी $= \frac{7}{6} \times \frac{2}{1} = \frac{14}{6} = \frac{7}{3}$ राजू

प्रत्येक यव के बीच की चौ. अर्थात् भूमि = 1 राजू

प्रत्येक यव के मुख की ल. = 0

एक यव का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2} \times$ ऊँ.

$= \frac{1+0}{2} \times \frac{7}{3} = \frac{1}{2} \times \frac{7}{3} = \frac{7}{6}$ वर्ग राजू

24 पूर्ण यव का क्षेत्रफल $= \frac{7}{6} \times 24 = \frac{168}{6} = 28$ वर्ग राजू

(6) मन्दर अधोलोक – अधोलोक में सुदर्शन मेरु के आकार की रचना करके क्षेत्रफल प्राप्त करने को मन्दर क्षेत्रफल कहते हैं।

इस मन्दराकृति अधोलोक के छः खण्ड किए गए हैं। इसमें दो आयत चतुरस्र और चार विषम चतुर्भुज बने हैं।

विषम चतुर्भुज का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}$ × उत्सेध (ऊँ)

आयत चतुरस्र का क्षेत्रफल = भुजा × कोटि अर्थात् ल. × चौ.

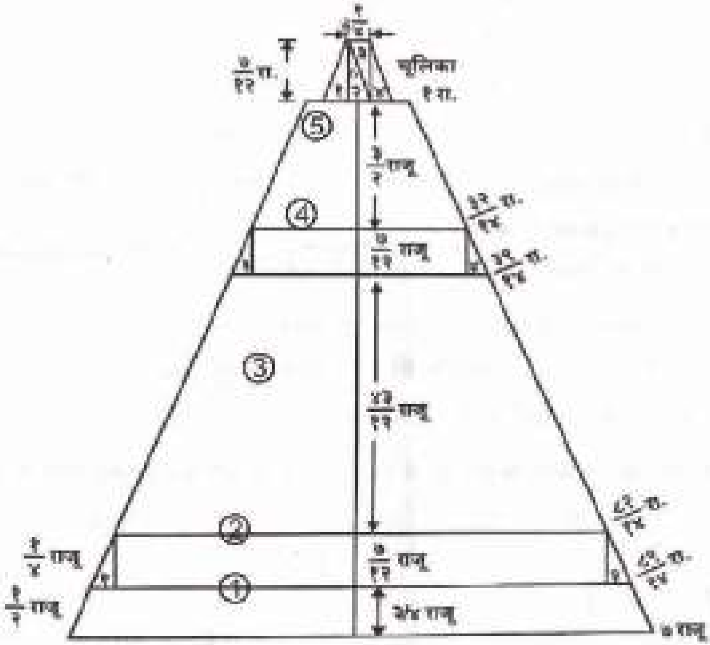

प्रथम खण्ड का क्षेत्रफल = प्रथम खण्ड की भूमि = 7 राजू

प्रथम खण्ड का मुख निकालते हैं – अधोलोक 7 राजू ऊँचा है। नीचे से ऊपर $\frac{3}{4}$ राजू का पहला भाग बनाया है। जो 1000 योजन (सुदर्शन मेरु की जड़) और 500 योजन के स्थानीय है (नन्दनवन तल भाग से 500 यो. ऊपर जाकर है। सम्पूर्ण अधोलोक में भूमि 7 राजू, मुख 1 राजू है। भूमि से मुख घटा देने पर [7-1] = 6 अवशेष रहा। जब 7 राजू की ऊँ. पर 6 राजू की हानि होती है तो ¾ राजू पर कितनी हानि होगी? त्रैराशिक करने पर = $\frac{6}{7} \times \frac{3}{4} = \frac{18}{28} = \frac{9}{14}$ राजू की हानि होगी।

इसे 7 राजू आयाम में से घटाने पर = $\frac{7}{1} - \frac{9}{14} = \frac{14 \times 7 - 9 \times 1}{14} = \frac{98-9}{14} = \frac{89}{14}$ राजू (मुख)

उत्सेध = ¾ राजू है।

अतः प्रथम खण्ड का क्षे. = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}$ × (ऊँ.)

लघुत्तम लेने पर

$$\frac{\frac{89}{14}+\frac{7}{1}}{2}\times\frac{3}{4}=\frac{\frac{89+98}{14}}{2}=\frac{187}{14}\times\frac{1}{2}\times\frac{3}{4}=\frac{561}{112}\text{ वर्ग राजू}$$

$$=\frac{561}{112}=5\frac{1}{112}\text{ वर्ग राजू}$$

दूसरे खण्ड का क्षेत्रफल – ¾ राजू से ऊपर $^7/_{12}$ राजू ऊँचे जाकर दूसरा खण्ड है जो 11000 योजन प्रमाण समरुन्द्र क्षेत्र के स्थानीय है। इसका उपरितन आयाम –

जब 7 राजू की ऊँ. पर 6 राजू की हानि होती है तब $^7/_{12}$ राजू की ऊँ. पर कितनी हानि होती है –

त्रैराशिक करने पर $\frac{6}{7}\times\frac{7}{12}=\frac{42}{84}=\frac{7}{14}$ राजू इसे $\frac{89}{14}$ राजू आयाम में से घटा देने पर

$\frac{89}{14}-\frac{7}{14}=\frac{89-7}{14}=\frac{82}{14}$ राजू

आयत चतुरस्र दूसरे खण्ड की भूमि व मुख दोनों $\frac{82}{14}$ राजू तथा उत्सेध = $\frac{7}{12}$ राजू

अतः आयत चतुरस्र का क्षे. = भुजा × कोटि अथवा ल. × चौ.

$$\frac{82}{14}\times\frac{7}{12}=\frac{574}{168}=\frac{41}{12}=3\frac{5}{12}\text{ वर्ग राजू}$$

तीसरे खण्ड का क्षेत्रफल – दूसरे खण्ड से $\frac{43}{12}$ राजू ऊपर तीसरा खण्ड है जो 51½ हजार योजन के स्थानीय है क्योंकि नन्दनवन से सौमनस वन 62½ हजार योजन ऊँचा है। उसमें 11,000 योजन समरुन्द क्षेत्र है और 51500 योजन क्रमहीन क्षेत्र है। इसका उपरितन आयाम –

जब 7 राजू की ऊँ. पर 6 राजू की हानि होती है तब $\frac{43}{12}$ राजू की ऊँ. पर कितनी हानि होती है –

त्रैराशिक करने पर $=\frac{6}{7}\times\frac{43}{12}=\frac{258}{84}=\frac{43}{14}$ राजू इसे $\frac{82}{14}$ राजू आयाम से घटाने पर

$\frac{82}{14}-\frac{43}{14}=\frac{82-43}{14}=\frac{39}{14}$ राजू

विषम चतुर्भुज तीसरे खण्ड की भूमि = $\frac{82}{14}$ राजू, मुख = $\frac{39}{14}$ राजू, उत्सेध = $\frac{43}{12}$ राजू

अतः विषम चतुर्भुज का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}\times$ उत्सेध

$$=\frac{\frac{39}{14}+\frac{82}{14}}{2}\times\frac{43}{12}\qquad\frac{39+82}{14}\times\frac{1}{2}\times\frac{43}{12}$$

$$=\frac{121}{14}\times\frac{1}{2}\times\frac{43}{12}=\frac{5203}{336}=15\frac{163}{336}\text{ वर्ग राजू}$$

चतुर्थ खण्ड का क्षेत्रफल – तीसरे खण्ड से $7/_{12}$ राजू ऊँचा चतुर्थ खण्ड है। जो 11000 योजन प्रमाण समरुन्द स्थानीय है। इसका उपरितन आयाम –

जब 7 राजू की ऊँ. पर 6 राजू की हानि होती है तो $7/_{12}$ राजू की ऊँ. पर कितनी हानि होगी ?

त्रैराशिक करने पर $= \frac{6}{7} \times \frac{7}{12} = \frac{42}{84} = \frac{1}{2}$ राजू इसे $\frac{39}{14}$ राजू से घटा देने पर

$$\frac{39}{14} - \frac{1}{2} = \frac{39-7}{14} = \frac{32}{14} \text{ राजू}$$

आयत चतुरस्र चौथे खण्ड की भूमि व मुख दोनों= $\frac{32}{14}$ राजू तथा उत्सेध = $\frac{7}{12}$ राजू

अतः आयत चतुरस्र का क्षे. = भुजा × कोटि अथवा ल. × चौ.

$$\frac{32}{14} \times \frac{7}{12} = \frac{224}{168} = \frac{4}{3} = 1\frac{1}{3} \text{ वर्ग राजू अथवा}$$

पाँचवें खण्ड का क्षेत्रफल – चौथे खण्ड से 3/2 राजू ऊँचा पाँचवाँ खण्ड है। इसके ऊपर पाण्डुक वन है जो सौमनस वन से 36 हजार योजन ऊँचा है। इसमें 11000 योजन समरुन्द क्षेत्र है और 25000 योजन क्रमहीन क्षेत्र है। अधोलोक ऊपर में एक राजू चौड़ाई वाला है, जो पाण्डुक वन के स्थानीय है। इसका उपरितन आयाम –

जब 7 राजू की ऊँ. पर 6 राजू की हानि होती है तो $3/_2$ राजू की ऊँ. पर कितनी हानि होती है ?

त्रैराशिक करने पर $= \frac{6}{7} \times \frac{3}{2} = \frac{18}{14} = \frac{9}{7}$ राजू इसे $\frac{32}{14}$ राजू से घटा देने पर

$$\frac{39}{14} - \frac{9}{7} = \frac{32-18}{14} = \frac{14}{14} = 1 \text{ राजू}$$

विषम चतुर्भुज पांचवें खण्ड की भूमि $= \frac{32}{14}$ राजू, मुख =1 राजू, उत्सेध = $\frac{3}{2}$ राजू

अतः विषम चतुर्भुज का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2} \times$ उत्सेध

$$\text{लघुत्तम लेने पर} = \frac{\frac{1}{1} + \frac{32}{14}}{2} \times \frac{3}{2} = \frac{14+32}{14} \times \frac{1}{2} \times \frac{3}{2}$$

$$\frac{46}{14} \times \frac{1}{2} \times \frac{3}{2} = \frac{138}{56} = \frac{69}{28} = 2\frac{13}{28} \text{ वर्ग राजू}$$

छठवें खण्ड चूलिका का क्षेत्रफल – नन्दन वन और सौमनस वन पर सुदर्शन मेरु सीधा अर्थात् आयत चतुरस्र स्वरूप है। अंक संदृष्टि में इन दोनों की ऊँ. $\frac{7}{12}$, $\frac{7}{12}$ राजू प्रमाण है।

इन दोनों को आयत चतुरस्र स्वरूप करने के लिए = नन्दन वन की भूमि – मुख

$$\frac{89}{14}-\frac{82}{14}=\frac{7}{14}=\frac{1}{2} \text{ राजू}$$

प्राप्त होता है। इसी प्रकार सौमनस वन भूमि–मुख

$$\frac{39}{14}-\frac{32}{14}=\frac{7}{14}=\frac{1}{2} \text{ राजू प्राप्त होता है।}$$

जब दो खण्डों पर ½ राजू प्राप्त होता है तो 1 खण्ड पर क्या प्राप्त होगा?

त्रैराशिक करने पर $\frac{1}{2}\times\frac{1}{2}=\frac{1}{4}$ राजू। ऐसे एक खण्ड का ¼ भाग प्राप्त हुआ।

अत: दोनों वनों के चार कोनों के चार खण्ड ¼ राजू भूमि, 0 मुख, $^7/_{12}$ राजू ऊँचाई वाले प्राप्त होते हैं। इन चारों खण्डों में से एक खण्ड की भूमि ऊपर और मुख नीचे करके तथा तीनों खण्डों की भूमि नीचे मुख ऊपर करके स्थापन करने से तल में ¾ राजू, चोटी पर ½ राजू, ऊँचाई = $^7/_{12}$ राजू वाली चूलिका प्राप्त होती है।

अत: विषम चतुर्भुजाकार चूलिका का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2}\times$ ऊँ

$$=\frac{\frac{3}{4}+\frac{1}{4}}{2}\times\frac{7}{12}=\frac{3+1}{4}\times\frac{1}{2}\times\frac{7}{12}$$

$$\frac{4}{4}\times\frac{1}{2}\times\frac{7}{12}=\frac{28}{96}=\frac{7}{24} \text{ वर्ग राजू}$$

सम्पूर्ण मन्दराकार अधोलोक का क्षे. = $\frac{561}{112}+\frac{41}{12}+\frac{5203}{336}+\frac{4}{3}+\frac{69}{28}+\frac{7}{24}$

$$=\frac{1683+1148+5203+448+828+98}{336}=\frac{9408}{336}=28 \text{ वर्ग राजू}$$

(7) दूष्य (अधोलोक) – दूष्य का अर्थ डेरा [TENT] होता है। अधोलोक के मध्य क्षेत्र में डेरों की रचना करके क्षेत्रफल निकालने को दूष्य क्षेत्रफल कहते हैं।

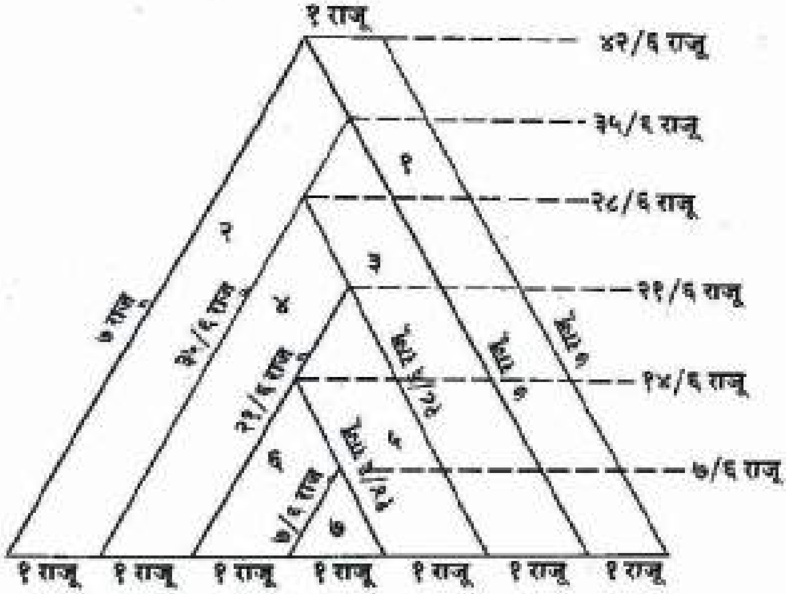

इस दूष्य क्षेत्र में प्रथम क्षेत्र आयत चतुरस्र है, जिसकी भुजा = 7 राजू, कोटि = 1 राजू है।

प्रथम आयत चतुरस्र क्षेत्र का क्षे. = ल. × ऊँ. अथवा भुजा × कोटि

$$7 \times 1 = 7 \text{ वर्ग राजू}$$

दूसरे विषम चतुरस्र क्षेत्र का क्षे. $= \frac{\text{भूमि+मुख}}{2} \times$ **उत्सेध**

यहाँ भूमि = 7 राजू, मुख = जब 7 राजू ऊपर जाने पर 6 की हानि होती है तो 1 राजू ऊपर जाने पर हानि होगी = $\frac{7}{6}$ राजू इसे 7 राजू में से घटाने पर $\frac{7}{1} - \frac{7}{6} = \frac{42-7}{6} = \frac{35}{6}$ राजू यह मुख हुआ।

उत्सेध (ऊँ.) = 1 राजू अतः $\frac{\frac{35}{6}+\frac{7}{1}}{2} \times 1$ $\qquad \frac{35+42}{6} \times \frac{1}{2} \times 1 = \frac{77}{6} \times \frac{1}{2} = \frac{77}{12}$ वर्गराजू

तीसरे विषम चतुरस्र क्षेत्र का क्षे. = यहाँ भूमि = 35/6 राजू, उत्सेध (ऊँ.) – 1 राजू

मुख – दूसरे क्षेत्र के मुख 35/6 राजू में से 7/6 घटाने पर = $\frac{35}{6} - \frac{7}{6} = \frac{35-7}{6} = \frac{28}{6}$ राजू

$$\frac{\text{भूमि+मुख}}{2} \times \text{उत्सेध (ऊँ.)}$$

$$\frac{\frac{28}{6}+\frac{35}{6}}{2} \times 1 \quad = \quad \frac{28+35}{6} \times \frac{1}{2} \times 1 = \frac{63}{6} \times \frac{1}{2} = \frac{63}{12} \text{ वर्गराजू}$$

चतुर्थ विषम चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल – यहाँ भूमि= $\frac{28}{6}$ राजू, मुख $\left[\frac{28}{6}-\frac{7}{6}\right]=\frac{21}{6}$ राजू

उत्सेध = 1 राजू।

$$\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2} \times \text{उत्सेध}$$

$$\frac{\frac{28}{6}+\frac{21}{6}}{2} \times 1 = \frac{28+21}{6} \times \frac{1}{2} \times 1 = \frac{49}{6} \times \frac{1}{2} = \frac{49}{12} \text{ वर्गराजू}$$

पंचम विषम चतुर्भुज का क्षेत्रफल – यहाँ भूमि = $\frac{21}{6}$ राजू, मुख $\left[\frac{21}{6}-\frac{7}{6}\right]=\frac{14}{6}$ राजू

उत्सेध = 1 राजू।

$$\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2} \times \text{उत्सेध}$$

$$\frac{\frac{21}{6}+\frac{14}{6}}{2} \times 1 = \frac{21+14}{6} \times \frac{1}{2} \times 1 = \frac{35}{6} \times \frac{1}{2} = \frac{35}{12} \text{ वर्गराजू}$$

षष्ठम विषम चतुर्भुज का क्षेत्रफल – यहाँ भूमि = $\frac{14}{6}$ राजू, मुख $\left[\frac{14}{7}-\frac{7}{6}\right]=\frac{7}{6}$ राजू

उत्सेध = 1 राजू।

$$\frac{\text{भूमि}+\text{मुख}}{2} \times \text{उत्सेध}$$

$$\frac{\frac{14}{6}+\frac{7}{6}}{2} \times 1 = \frac{14+7}{6} \times \frac{1}{2} \times 1 = \frac{21}{6} \times \frac{1}{2} = \frac{21}{12} \text{ वर्गराजू}$$

अन्तिम सातवाँ क्षेत्र त्रिकोणाकार का क्षेत्रफल = $\frac{1}{2} \times$ आधार $\times$ ऊँ.

यहाँ आधार = 1 राजू, ऊँचाई = $^7/_6$ राजू

$$\frac{1}{2} \times \frac{1}{1} \times \frac{7}{6} = \frac{7}{12} \text{ वर्गराजू}$$

सम्पूर्ण दृष्य अधोलोक का क्षेत्रफल = $\frac{7}{1}+\frac{77}{12}+\frac{63}{12}+\frac{49}{12}+\frac{35}{12}+\frac{21}{12}+\frac{7}{12}$

$$\frac{84+77+63+49+35+21+7}{12} = \frac{336}{12} = 28 \text{ वर्गराजू}$$

(8) गिरिकटक (अधोलोक) – गिरि पहाड़ी को कहते हैं। पहाड़ी नीचे से चौड़ी और ऊपर सँकरी अर्थात् चोटी युक्त होती है। कटक इससे विपरीत अर्थात् नीचे सँकरा और ऊपर चौड़ा होता है। अधोलोक में गिरिकटक की रचना करने से 27 गिरि और 21 कटक प्राप्त होते हैं। जैसे –

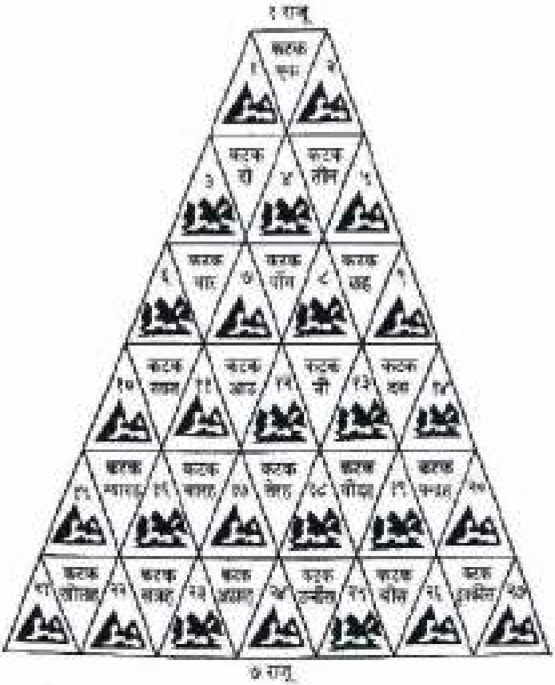

प्रत्येक गिरि व कटक की भूमि = 1 राजू, मुख = 0, उत्सेध = $\frac{7}{6}$ राजू

एक गिरि अथवा कटक का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}$ x उत्सेध

$$= \frac{1+0}{2} \times \frac{7}{6} = \frac{1}{2} \times \frac{7}{6} = \frac{7}{12} \text{ वर्गराजू}$$

जब एक गिरि का क्षे. $^7/_{12}$ राजू है तो 27 गिरि का क्षेत्रफल होगा

$$= \frac{7}{12} \times 27 = \frac{189}{12} = \frac{63}{4} \text{ वर्गराजू}$$

इसी प्रकार जब एक कटक का क्षेत्रफल $^7/_{12}$ राजू है तो 21 कटक का क्षेत्रफल होगा

$$= \frac{7}{12} \times 21 = \frac{147}{12} = \frac{49}{4} \text{ वर्गराजू}$$

सम्पूर्ण गिरि कटक अधोलोक का क्षेत्रफल $= \frac{63}{4} + \frac{49}{4} = \frac{63+49}{4} = \frac{112}{4}$

$= 28$ वर्गराजू

नोट-घनफल लाने के लिए वेध (मोटाई से सर्वत्र गुणा करें- वेध सर्वत्र 7 राजू है।

सूत्र - घनफल = क्षेत्रफल x वेध

अतः अधोलोक का घनफल = क्षेत्रफल x वेध (मोटाई)

28 x 7 = 196 घन राजू

नोट- ❋ जिस प्रकार त्रिलोकसार ग्रन्थ में अधोलोक का क्षेत्रफल आठ प्रकार से निकाला गया है ठीक उसी प्रकार तिलोय पण्णत्ति में अधोलोक का घनफल आठ प्रकार से निकाला गया है। यहाँ सिर्फ आठ प्रकार से क्षेत्रफल को ही दर्शाया गया है।

❋ आगे के अध्याय में ऊर्ध्वलोक के क्षेत्रफल को विभिन्न प्रकार से जानने का प्रयास करते हैं...

समय मूल्यवान है लेकिन सत्य समय से भी अधिक मूल्यवान है। सत्य के लिये सब कुछ छोड़ा जा सकता है पर सत्य किसी के लिये भी नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि सभी प्रकार के गुण पुष्पों की नींव सत्य ही है और सत्य की बेल ही मंजिल तक ले जाती है।

अध्याय–13
ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल

ऊर्ध्वलोक के क्षेत्र की अपेक्षा से पाँच भेद होते हैं – (1) सामान्य, (2) प्रत्येक, (3) अर्धस्तम्भ, (4) स्तम्भ और (5) पिनष्टि।

(1) सामान्य ऊर्ध्वलोक – जिस क्षेत्र की हीनाधिक चौड़ाई को समान करके क्षेत्रफल निकाला जाता है, उसे सामान्य क्षेत्रफल कहते हैं।

ऊर्ध्वलोक के अर्ध भाग की भूमि = 5 राजू, मुख = 1 राजू, ऊँचाई = 3½ = $\frac{7}{2}$ राजू

1 अर्धक्षेत्र का क्षेत्रफल = $\frac{\text{भूमि+मुख}}{2}$ × ऊँ.

$\frac{1+5}{2}\times\frac{7}{2} = \frac{6}{2}\times\frac{7}{2} = \frac{42}{4} = \frac{21}{2}$ वर्गराजू या $10\frac{1}{2}$ (10.5) वर्गराजू

जब 1 अर्धक्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{21}{2}$ वर्ग राजू है, तब 2 अर्धक्षेत्रों का क्षेत्रफल कितना होगा ?

या $\frac{6}{2}$ $\frac{7}{2}$ = अथवा $10\frac{1}{2}$ वर्ग राजू

त्रैराशिक करने पर = $\frac{21}{2}\times 2 = \frac{42}{2}$ = 21 वर्ग राजू या $10\frac{1}{2}$ = 21 वर्ग राजू

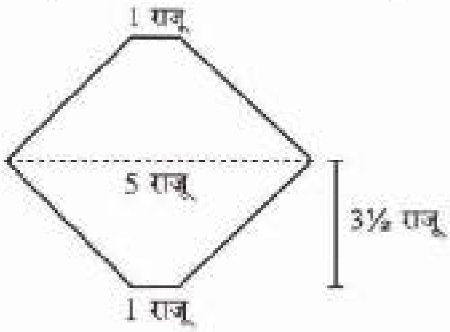

नोट–घनफल लाने के लिए सर्व ही बेद्य (मोटाई) से गुणा करें अर्थात 21X7= 147 घन राजू, इसी प्रकार प्रत्येक का निकाल लेना चाहिए।

(2) प्रत्येक ऊर्ध्वलोक – भिन्न–भिन्न युगल का क्षेत्रफल निकालने को प्रत्येक क्षेत्रफल कहते हैं। इस प्रकार युगल की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक को 9 भागों में बाँटा गया है।

प्रथम युगल का क्षेत्रफल – जब $\frac{7}{2}$ राजू पर 4 राजू की वृद्धि होती है तो प्रथम युगल की ऊँचाई $1\frac{1}{2}$ राजू तक कितनी वृद्धि होगी ? त्रैराशिक करने पर $4\div\frac{7}{2}\times\frac{3}{2} = 4\times\frac{2}{7}\times\frac{3}{2} = \frac{24}{14} = \frac{12}{7}$ राजू

इसमें 1 राजू जोड़ने पर प्रथम युगल के समीप का व्यास आता है= $\frac{12}{7}+\frac{1}{1} = \frac{12+7}{7} = \frac{19}{7}$ राजू

प्रथम युगल का क्षेत्रफल = $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2}$ × ऊं.[यहाँ भूमि =1 राजू, मुख $\frac{19}{7}$ राजू, ऊ.=$1\frac{1}{2}=\frac{3}{2}$ राजू]

$\frac{\frac{1}{1}+\frac{19}{7}}{2}\times\frac{3}{2} = \frac{7+19}{7}\times\frac{1}{2}\times\frac{3}{2} = \frac{26}{7}\times\frac{1}{2}\times\frac{3}{2}=\frac{78}{28}=\frac{39}{14}$ वर्ग राजू

इसका घनफल इस प्रकार होगा $\frac{39}{14}\times\frac{7}{1}=\frac{273}{14}=19\frac{1}{2}$ घन राजू

दूसरे युगल का क्षेत्रफल = $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2}$ × ऊं.[यहाँ भूमि =$\frac{19}{7}$ राजू, ऊ.=$\frac{3}{2}$ राजू]

मुख = यह प्रथम युगल से $1\frac{1}{2}$ राजू ऊँचा है[अत: $\frac{19}{7}+\frac{12}{7}=\frac{19+12}{7}=\frac{31}{7}$ राजू]

$\frac{\frac{19}{7}+\frac{31}{7}}{2}\times\frac{3}{2}=\frac{19+31}{7}\times\frac{1}{2}\times\frac{3}{2}=\frac{50}{7}\times\frac{1}{2}\times\frac{3}{2}=\frac{150}{28}=\frac{75}{14}$ वर्ग राजू

इसका घनफल = $\frac{75}{14}\times7=\frac{525}{14}=37\frac{1}{2}$ घन राजू

तीसरे युगल का क्षेत्रफल = $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2}$ × ऊं.[यहाँ भूमि =$\frac{31}{7}$ राजू, ऊं.$\frac{1}{2}$ राजू]

मुख = जब $\frac{7}{2}$ राजू की ऊँचाई पर 4 राजू की वृद्धि होती है तो तब ½ राजू पर कितनी वृद्धि होगी?

अत:4: $\frac{7}{2}\times\frac{1}{2}=\frac{4\times2}{7}\times\frac{1}{2}=\frac{8}{14}=\frac{4}{7}$ राजू की वृद्धि। इसमें $\frac{31}{7}$ जोड़ने पर $\frac{31}{7}+\frac{4}{7}=\frac{35}{7}=5$ राजू]

$\frac{\frac{31}{7}+\frac{5}{1}}{2}\times\frac{1}{2} = \frac{\frac{31+35}{7}}{2}\times\frac{1}{2} = \frac{66}{7}\times\frac{1}{2}\times\frac{1}{2}=\frac{66}{28}=\frac{33}{14}$ वर्ग राजू

इसका घनफल = $\frac{33}{14}\times7=\frac{231}{14}=16\frac{1}{2}$ घन योजन

चौथे युगल का क्षेत्रफल = $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2}$ × ऊं. [यहाँ भूमि = 5 राजू, ऊ.= $\frac{1}{2}$ राजू, मुख = $\frac{1}{2}$ राजू ऊँचा होने से हानि का प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू ही होगा अत: $\frac{35}{7}-\frac{4}{7}=\frac{31}{7}$ राजू]

$\frac{\frac{5}{1}+\frac{31}{7}}{2}\times\frac{1}{2} = \frac{\frac{35+31}{7}}{2}\times\frac{1}{2} = \frac{66}{7}\times\frac{1}{2}\times\frac{1}{2}=\frac{66}{28}=\frac{33}{14}$ वर्ग राजू

इसका घनफल = $\frac{33}{14}\times7=\frac{231}{14}=16\frac{1}{2}$ घन योजन

पाँचवें युगल का क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2} \times$ ऊँ. [यहाँ भूमि $= \frac{31}{7}$ राजू, ऊँ. $= \frac{1}{2}$ राजू, मुख $= \frac{1}{2}$ राजू ऊँचा होने से हानि का प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू ही होगा अत: $\frac{31}{7} - \frac{4}{7} = \frac{27}{7}$ राजू]

$$\frac{\frac{31}{7}+\frac{27}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{\frac{31+27}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{58}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{58}{28} = \frac{29}{14} \text{ वर्ग राजू}$$

घनफल $= \frac{29}{14} \times 7 = \frac{203}{14} = 14\frac{1}{2}$ घन राजू

छठवें युगल का क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2} \times$ ऊँ. [यहाँ भूमि $= \frac{27}{7}$ राजू, ऊँ. $= \frac{1}{2}$ राजू, मुख $= \frac{1}{2}$ राजू ऊँचा होने से हानि का प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू होगा अत: $\frac{27}{7} - \frac{4}{7} = \frac{23}{7}$ राजू]

$$\frac{\frac{27}{7}+\frac{23}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{\frac{27+23}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{50}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{50}{28} = \frac{25}{14} \text{ वर्ग राजू क्षेत्रफल}$$

घनफल $= \frac{25 \times 7}{14} = \frac{175}{14} = 12\frac{1}{2}$ घन राजू

सातवें युगल का क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2} \times$ ऊँ. [यहाँ भूमि $= \frac{23}{7}$ राजू, ऊँ. $= \frac{1}{2}$ राजू, मुख $= \frac{1}{2}$ राजू ऊँचा होने से हानि का प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू होगा अत: $\frac{23}{7} - \frac{4}{7} = \frac{19}{7}$ राजू]

$$\frac{\frac{23}{7}+\frac{19}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{\frac{23+19}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{42}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{42}{28} = \frac{21}{14} \text{ वर्ग राजू क्षेत्रफल}$$

घनफल $= \frac{21 \times 7}{14} = \frac{147}{14} = 10\frac{1}{2}$ घन राजू

आठवें युगल का क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2} \times$ ऊँ. [यहाँ भूमि $= \frac{19}{7}$ राजू, ऊँ. $= \frac{1}{2}$ राजू, मुख $= \frac{1}{2}$ राजू ऊँचा होने से हानि का प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू होगा अत: $\frac{19}{7} - \frac{4}{7} = \frac{15}{7}$ राजू]

$$\frac{\frac{19}{7}+\frac{15}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{\frac{19+25}{7}}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{34}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{34}{28} = \frac{17}{14} \text{ वर्ग राजू क्षेत्रफल}$$

घनफल $= \frac{17 \times 7}{14} = \frac{119}{14} = 8\frac{1}{2}$ घन राजू

उपरिम लोक का क्षेत्रफल= $\frac{\text{मुख}+\text{भूमि}}{2}$ × ऊँ.[यहाँ भूमि = $\frac{15}{7}$ राजू, ऊँ.= 1 राजू,]

मुख = आठवें युगल से लोक के अन्त तक की ऊँचाई 1 राजू है, अतः जब $\frac{7}{2}$ राजू की ऊँचाई पर 4 राजू की हानि है, तब एक राजू की ऊँचाई पर कितनी होगी = $4 \div \frac{7}{2} \times 1 = 4 \times \frac{2}{7} \times 1 = \frac{8}{7}$ राजू

इसे $\frac{15}{7}$ राजू में से घटाने पर = $\frac{15}{7} - \frac{8}{7} = \frac{7}{7} = 1$ राजू।]

$$\frac{\frac{1}{1}+\frac{15}{7}}{2} \times 1 = \frac{\frac{7+15}{7}}{2} \times 1 \qquad \frac{22}{7} \times \frac{1}{2} \times 1 = \frac{22}{14} \text{ वर्ग राजू क्षेत्रफल}$$

$$\text{घनफल} = \frac{22 \times 7}{14} = \frac{154}{14} = 11 \text{ घन राजू}$$

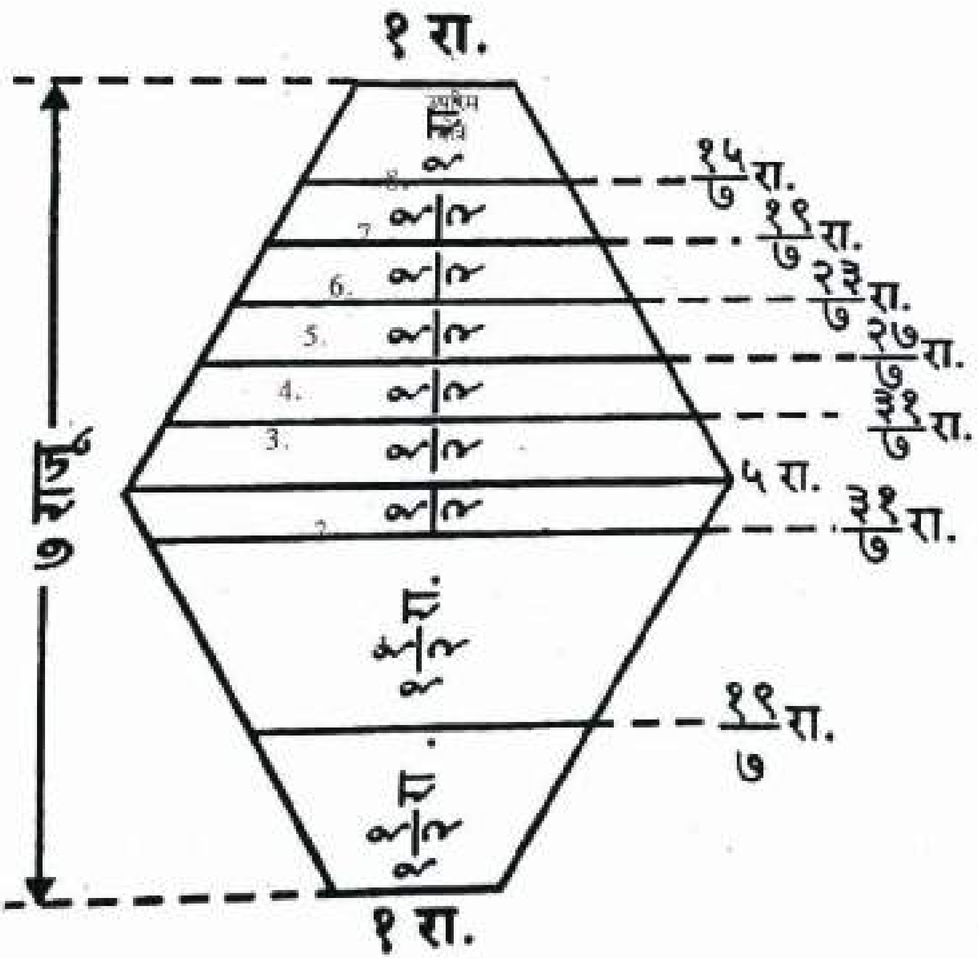

युगलों के समीप	राजू भूमि +	राजू मुख =	योगफल ×	अर्ध भाग =	राजू फल ×	राजू ऊँचाई=	वर्ग राजू क्षेत्रफल	वर्ग राजू क्षेत्रफल
सौधर्मैशान के समीप	$\frac{१९}{७}$ +	१रा=	$\frac{२६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२६}{१४}$ ×	$\frac{३}{२}$ =	$\frac{७८}{२८}$ या $\frac{३९}{१४}$	= २ $\frac{११}{१४}$
सानत्कुमार मा. ,,	$\frac{३१}{७}$ +	$\frac{१९}{७}$ =	$\frac{५०}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५०}{१४}$ ×	$\frac{३}{२}$ =	$\frac{७५}{१४}$	= ५ $\frac{५}{१४}$
ब्रह्मब्रह्मोत्तर ,,	$\frac{५}{१}$ +	$\frac{३१}{७}$ =	$\frac{६६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{६६}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३३}{१४}$	= २ $\frac{५}{१४}$
लान्तव का. ,,	$\frac{५}{१}$ +	$\frac{३१}{७}$ =	$\frac{६६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{६६}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३३}{१४}$	= २ $\frac{५}{१४}$
शुक्र महा. ,,	$\frac{३१}{७}$ +	$\frac{२७}{७}$ =	$\frac{५८}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५८}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२९}{१४}$	= २ $\frac{१}{१४}$
सतार सह. ,,	$\frac{२७}{७}$ +	$\frac{२३}{७}$ =	$\frac{५०}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५०}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२५}{१४}$	= १ $\frac{११}{१४}$
आनत प्रा. ,,	$\frac{२३}{७}$ +	$\frac{१९}{७}$ =	$\frac{४२}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{४२}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२१}{१४}$	= १ $\frac{७}{१४}$
आरण अच्युत ,,	$\frac{१९}{७}$ +	$\frac{१५}{७}$ =	$\frac{३४}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३४}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{१७}{१४}$	= १ $\frac{३}{१४}$
उपरिम क्षेत्र ,,	$\frac{१५}{७}$ +	$\frac{१}{१}$ =	$\frac{२२}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२२}{१४}$ ×	१ =	$\frac{२२}{१४}$	= १ $\frac{८}{१४}$
								= १७ + $\frac{५६}{१४}$ = १७ + ४ = २१ वर्ग राजू

सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल = $\frac{39}{14}+\frac{75}{14}+\frac{33}{14}+\frac{33}{14}+\frac{29}{14}+\frac{25}{14}+\frac{21}{14}+\frac{17}{14}+\frac{22}{14}$

$$\frac{39+75+33+33+29+25+21+17+22}{14} = \frac{294}{14} = 21$$ वर्ग राजू

सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक का घनफल = $\frac{39}{2}+\frac{75}{2}+\frac{33}{2}+\frac{33}{2}+\frac{29}{2}+\frac{25}{2}+\frac{21}{2}+\frac{17}{2}+\frac{22}{2} = \frac{294}{2} = 147$ वर्ग राजू

3. अर्धस्तम्भ ऊर्ध्वलोक – ऊर्ध्वलोक के आकार को मध्य से छेद कर निम्न प्रकार स्थापन करने से जो आकार विशेष बनता है, उसे अर्धस्तम्भ कहते हैं।

❉ त्रस नाड़ी को चौड़ाई के रूप से दो खण्ड करने पर ½ राजू चौड़े व 7 राजू ऊँचे 'अ' और 'ब' नाम के दो अर्धस्तम्भ प्राप्त होते हैं।

❉ इन दोनों स्तम्भों को एक दूसरे से 2 राजू की दूरी पर स्थापित करना चाहिए। शेष क्षेत्र को क ख च और छ इन चारों भागों में विभाजन कर 'ख' को उलटकर 'छ' की दायीं ओर एवं क उलटकर 'च' की दायीं ओर स्थापन करने से 7 राजू ऊँचा व 2 राजू चौड़ा आयत क्षेत्र बन जाता है।

❉ इस आयत क्षेत्र को दोनों अर्ध स्तम्भों (अ, ब) के बीच में रखने से क्षेत्र अर्धस्तम्भाकार बन जाता है क्योंकि 'अ' 'ब' अर्द्ध स्तम्भ हैं। अर्थात् स्तम्भ स्वरूप लोक नाड़ी के अर्ध अर्ध भाग हैं। जैसे –

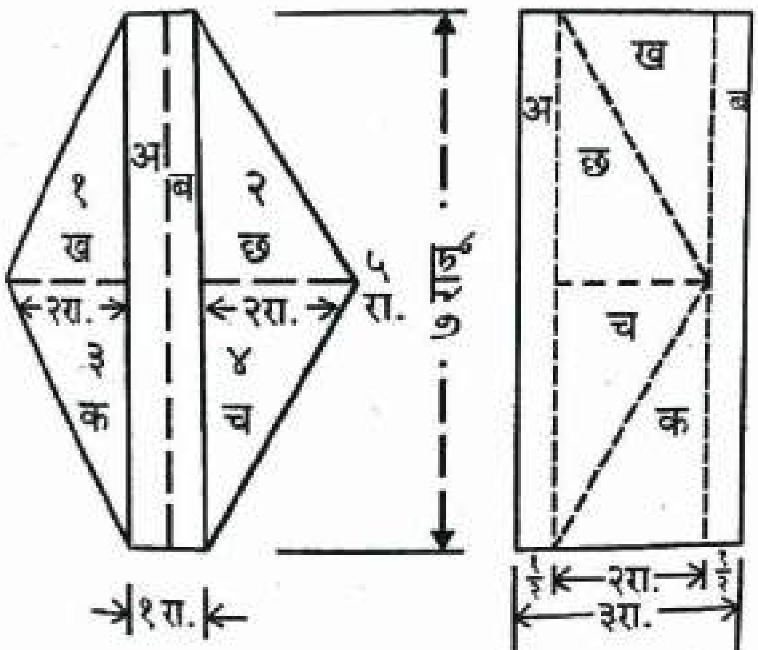

'अ' और 'ब' दोनों अर्ध स्तम्भों का क्षेत्रफल = ल. X ऊँ. अथवा भुजा X कोटि

यहाँ लम्बाई = ½ राजू, ऊँचाई = 7 राजू है।

अत: एक अर्धस्तम्भ का क्षेत्रफल $=7\times\frac{1}{2}=\frac{7}{2}$ वर्ग राजू है

इस प्रकार 'अ' 'ब' दो अर्धस्तम्भ है इनका क्षेत्रफल $=\frac{7}{2}\times\frac{2}{1}=\frac{14}{2}=7$ वर्ग राजू

आयताकार क्षेत्र का क्षेत्रफल = ल. X ऊँ.

यहाँ लम्बाई = 2 राजू, ऊँचाई = 7 राजू है।

अत:- 2 × 7 = 14 वर्ग राजू

सम्पूर्ण अर्धस्तम्भ ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल = 7+14 = 21 वर्ग राजू

(4) स्तम्भ ऊर्ध्वलोक – ऊर्ध्वलोक मध्य में 5 राजू चौड़ा है। जिसमें एक राजू चौड़ी त्रस नाड़ी है, इस त्रस नाड़ी के दोनों ओर दो–दो राजू क्षेत्र अवशेष रहता है। त्रस नाड़ी के दोनों ओर एक–एक राजू हटकर ऊर्ध्व अध: $\frac{7}{2}$ राजू लम्बी रेखा द्वारा खण्ड करने पर दोनों ओर दो–दो खण्ड हो जाते हैं। इसमें से बाह्य की ओर वाले प्रत्येक खण्ड को मध्य में पूर्व–पश्चिम रेखा द्वारा खण्ड करने से दो–दो खण्ड हो जाते हैं। जैसे –

चित्र नं. १

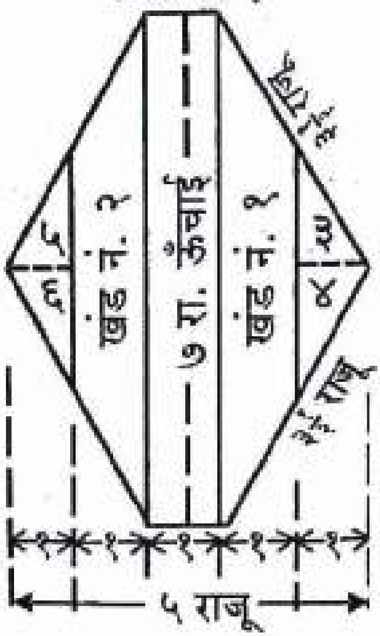

चित्र नं. २

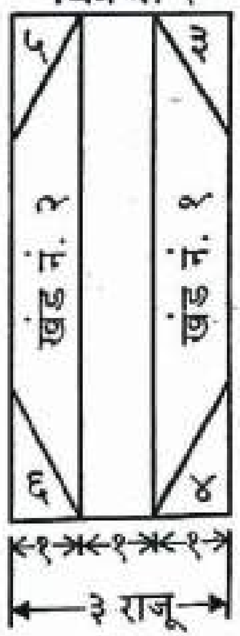

चित्र नं. 2 के अनुसार त्रस नाड़ी को स्तम्भ के मध्य भाग रूप से स्थापन कर इसके दोनों पार्श्वों में दोनों अन्तरंग खण्ड नं. 1 व 2 को स्थापित करना चाहिए। खण्ड नं. 1 के ऊपर तथा नीचे खण्ड नं. 3 एवं 4 को पलट कर रखना चाहिए। तथा इसी प्रकार खण्ड नं. 2 के ऊपर–नीचे खण्ड नं. 5 एवं 6 को पलटकर रखने से 3 राजू चौड़ा व 7 राजू ऊँचा पूर्ण स्तम्भ बन जाता है।

अत: पूर्ण स्तम्भ रूप ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल = चौड़ाई X ऊँचाई

3 × 7 = 21 वर्ग राजू

5. पिनष्टि ऊर्ध्वलोक – पिनष्टि का अर्थ है–खण्ड करना। अत: ऊर्ध्वलोक में खण्डों की रचना द्वारा क्षेत्रफल ज्ञात करने को पिनष्टि क्षेत्रफल कहते हैं।

पिनष्टि की रचना – ऊर्ध्वलोक में सर्वप्रथम स्वर्ग युगलों की रचना द्वारा खण्ड करना चाहिए। पुन: त्रस नाड़ी से बाहर पूर्व व पश्चिम की ओर एक–एक राजू जाकर ऊपर–नीचे की ओर खण्ड करने से उन्हीं स्वर्ग युगल खण्डों के पूर्व दिशा की त्रिकोणादि आकार वाले 11 खण्ड तथा समकोण आयताकार चार खण्ड हो जाते हैं। इसी प्रकार इतने ही खण्ड पश्चिम दिशा में भी हो जाते हैं।

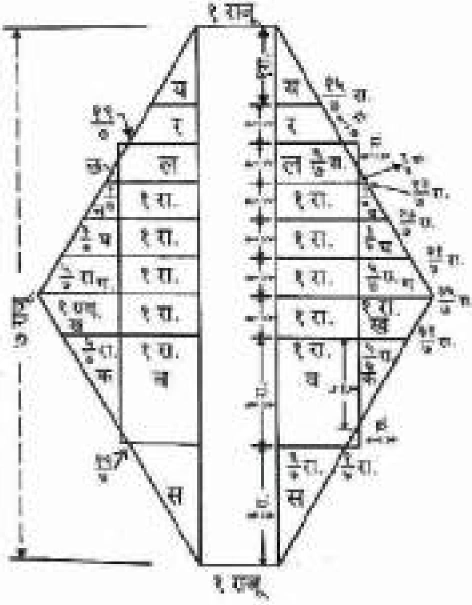

ऊर्ध्व लोक की भूमि 5 राजू और मुख 1 राजू है। भूमि में से मुख घटाने पर 4 राजू अवशेष रहते हैं, इसमें ऊँचाई आदि का गुणा करने से ऊर्ध्वलोक की उपरितन नौ भूमियों का व्यास क्रमश: राजू है।

$\frac{19}{7}, \frac{31}{7}, \frac{35}{7}, \frac{31}{7}, \frac{27}{7}, \frac{23}{7}, \frac{19}{7}, \frac{15}{7}$ और $\frac{7}{7}$ राजू है।

क त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \frac{1}{2}$ x आधार (भूमि) x ऊँचाई

क त्रिभुज की ऊँचाई = यदि $\frac{7}{2}$ राजू की ऊँचाई पर 2 राजू की हानि होती है तो 1 राजू की हानि $\left(\frac{7}{2} \times \frac{1}{2}\right) = \frac{7}{4}$ राजू। यह क व ख क्षेत्र की ऊँचाई रूप है, इसमें से ख क्षेत्र की ऊँचाई $\frac{1}{2}$ घटाने पर $\left[\frac{7}{4} - \frac{1}{2}\right] = \frac{7-2}{4} = \frac{5}{4}$ राजू

क त्रिभुज की भूमि = 3 राजू $\left(\frac{21}{7}\right)$ को दूसरे युगल के व्यास में से घटाकर अवशिष्ट का आधा करने पर अन्तस् त्रिभुज अर्थात् 'क' त्रिभुज की भूमि प्राप्त होती है।

जैसे- $\frac{31}{7} - \frac{21}{7} = \frac{10}{7} \times \frac{1}{2} = \frac{10}{14} = \frac{5}{7}$ राजू

अत: 'क' त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \frac{1}{2} \times \frac{5}{4} \times \frac{5}{7} = \frac{25}{56}$ वर्ग राजू

क त्रिभुज दो है इसलिए $\frac{25}{56} \times 2 = \frac{50}{56} = \frac{25}{28}$ वर्ग राजू

ख और ग क्षेत्र विषम चतुर्भुज है, यह दोनों ही क्षेत्र समान है अर्थात् इनकी मुख, भूमि व ऊँचाई समान ही है।

ख और ग क्षेत्र की भूमि $= \frac{35}{7} - \frac{21}{7}$ (3 राजू) $= \frac{14}{7} \times \frac{1}{2} = \frac{14}{14} = 1$ राजू

मुख = क क्षेत्र की भूमि ख का मुख है अर्थात् $\frac{5}{7}$ राजू

ऊँचाई = $\frac{1}{2}$ राजू

ख क्षेत्र का (विषम चतुर्भुज) क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख + भूमि}}{2} \times$ ऊँ.

$$= \frac{\frac{5}{7} + \frac{1}{1}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{\frac{5+7}{7}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{12}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{12}{28} = \frac{6}{14} = \frac{3}{7} \text{ वर्ग राजू}$$

ख क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{3}{7} \times 2 = \frac{6}{7}$ वर्ग राजू

ग क्षेत्र ख क्षेत्र के समान ही है अत: दोनों ग क्षेत्रों का क्षेत्रफल $= \frac{6}{7}$ वर्ग राजू

घ क्षेत्र विषम चतुर्भुज है अत: इसका मुख $= \frac{3}{7}$ राजू, भूमि $= \frac{31}{7} - \frac{21}{7}$ (3 राजू) $= \frac{10}{7} \times \frac{1}{2} = \frac{10}{14} = \frac{5}{7}$ राजू

ऊँचाई = $\frac{1}{2}$ राजू

घ क्षेत्र का (विषम चतुर्भुज) क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख + भूमि}}{2} \times$ ऊँ.

$$= \frac{\frac{3}{7} + \frac{5}{7}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{\frac{3+5}{7}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{8}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{8}{28} = \frac{2}{7} \text{ वर्ग राजू}$$

घ क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{2}{7} \times 2 = \frac{4}{7}$ वर्ग राजू

च क्षेत्र का विषम चतुर्भुज है, अतः इसका मुख $= \frac{1}{7}$ राजू, ऊँचाई $= \frac{1}{2}$ राजू

$$\text{भूमि} = \frac{27}{7} - \frac{21}{7} = \frac{6}{7} \times \frac{1}{2} = \frac{6}{14} = \frac{3}{7} \text{ राजू}$$

च क्षेत्र का (विषम चतुर्भुज) क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{2} \times$ ऊँ.

$$= \frac{\frac{1}{7} + \frac{3}{7}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{4}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{4}{28} = \frac{1}{7} \text{ वर्ग राजू}$$

च क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{1}{7} \times 2 = \frac{2}{7}$ वर्ग राजू

छ क्षेत्र त्रिभुज है, अतः इसका आधार (भूमि)=च का मुख छ का आधार (भूमि) है $= \frac{1}{7}$ राजू

ऊँचाई $= \frac{1}{4}$ राजू

छ क्षेत्र का (त्रिभुज) क्षेत्रफल $= \frac{1}{2} \times$ आधार $\times$ ऊँ.

$$= \frac{1}{2} \times \frac{1}{7} \times \frac{1}{4} = \frac{1}{56} \text{ वर्ग राजू}$$

छ क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{1}{56} \times 2 = \frac{2}{56} = \frac{1}{28}$ वर्ग राजू

य क्षेत्र त्रिभुज है, अतः इसका आधार (भूमि)$= \frac{4}{7}$ राजू, ऊँ. =1 राजू

य क्षेत्र का (त्रिभुज) क्षेत्रफल $= \frac{1}{2} \times$ आधार $\times$ ऊँ.

$$= \frac{1}{2} \times \frac{4}{7} \times 1 = \frac{4}{14} = \frac{2}{7} \text{ वर्ग राजू}$$

य क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{2}{7} \times 2 = \frac{4}{7}$ वर्ग राजू

र क्षेत्र विषम चतुर्भुज है, अतः इसका मुख $= \frac{4}{7}$ राजू, भूमि $= \frac{6}{7}$ राजू ऊँ. $= \frac{1}{2}$ राजू

र क्षेत्र का (विषम चतुर्भुज) क्षेत्रफल $= \frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{2} \times$ ऊँ.

$$= \frac{\frac{4}{7} + \frac{6}{7}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{\frac{4+6}{7}}{2} \times \frac{1}{2}$$

$$= \frac{10}{7} \times \frac{1}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{10}{28} = \frac{5}{14} \text{ वर्ग राजू}$$

र क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{5}{14} \times 2 = \frac{10}{14} = \frac{5}{7}$ वर्ग राजू

'ल' क्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{27}{56}$ वर्गराजू प्राप्त होता है।

ल क्षेत्र दो है इसलिए $= \frac{27}{56} \times 2 = \frac{54}{56} = \frac{27}{28}$ वर्ग राजू

'व' क्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{83}{56}$ वर्गराजू प्राप्त होता है।

व क्षेत्र दो है इसलिए $= \frac{83}{56} \times 2 = \frac{166}{56} = \frac{83}{28}$ वर्ग राजू

'स' क्षेत्र त्रिभुज है, अतः इसका आधार (भूमि)$= \frac{6}{7}$ राजू, ऊँ. $= 1\frac{1}{2}$ राजू $= \frac{3}{2}$ राजू

स क्षेत्र का (त्रिभुज) क्षेत्रफल $= \frac{1}{2} \times$ आधार $\times$ ऊँ.

$$= \frac{1}{2} \times \frac{6}{7} \times \frac{3}{2} = \frac{18}{28} = \frac{9}{14} \text{ वर्ग राजू}$$

स क्षेत्र दो है इसलिए $\frac{9}{14} \times 2 = \frac{18}{14} = \frac{9}{7}$ वर्ग राजू

आयताकार क्षेत्र की लम्बाई = 2 राजू, चौड़ाई = 1 राजू

आयताकार क्षेत्र का क्षेत्रफल = लम्बाई X चौड़ाई

= 2 X 1

= 2 वर्ग राजू

आयताकार क्षेत्र दो है इसलिए = 2 X 2 = 4 वर्ग राजू

त्रसनाड़ी भी आयताकार है इसकी लम्बाई = 7 राजू, चौड़ाई = 1 राजू

त्रसनाड़ी (आयत) का क्षेत्रफल = लम्बाई X चौड़ाई

= 7 X 1

= 7 वर्ग राजू

पिनष्टि ऊर्ध्वलोक का सम्पूर्ण क्षेत्रफल =

$$\frac{25}{28}+\frac{6}{7}+\frac{6}{7}+\frac{4}{7}+\frac{2}{7}+\frac{1}{28}+\frac{4}{7}+\frac{5}{7}+\frac{27}{28}+\frac{83}{28}+\frac{9}{7}+\frac{4}{1}+\frac{7}{1}$$

$$= \frac{25+24+24+16+8+1+16+20+27+83+36+112+196}{28}$$

$$= \frac{588}{28} = 21 \text{ वर्ग राजू}$$

क्रमांक	क्षेत्रों के नाम	भूमि + राजू	मुख राजू	योग × राजू	आधा क्रिया	लम्बाई × राजू	ऊँचाई राजू	क्षेत्रफल वर्गराजू	दो क्षेत्र हैं वर्गराजू	सम्पूर्ण क्षेत्रफल वर्ग राजू
१.	क	५/७ +	० =	५/७ ×	१/२ =	५/१४ ×	५/२ =	२५/५६ ×	२/१ =	२५/२८ वर्ग राजू पिनष्टि लोक
२.	ख	[illegible] +	[illegible] =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	२/१ =	६/७ "
३.	ग	[illegible] +	[illegible] =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	२/१ =	६/७ "
४.	घ	[illegible] +	[illegible] =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	२/१ =	४/७ "
५.	[illegible]	[illegible] +	[illegible] =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	२/१ =	२/७ "
६.	[illegible]	[illegible] +	० =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	२/१ =	१/२८ "
७.	[illegible]	[illegible] +	० =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	१ =	[illegible] ×	२/१ =	४/७ "
८.	[illegible]	[illegible] +	[illegible] =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	[illegible] =	५/७ "
९.	[illegible]							२७/५६ ×	२/१ =	२७/२८ "
१०.	[illegible]							८३/५६ ×	२/१ =	८३/२८ "
११.	[illegible]	[illegible] +	० =	[illegible] ×	१/२ =	[illegible] ×	[illegible] =	[illegible] ×	२/१ =	९/७ "
१२.	आयताकार	१ +	१ =	२ ×	१/२ =	१ ×	२/१ =	२/१ =	४/२ क्षेत्र =	४ "
१३.	त्रसनाड़ी	१ +	१ =	२ ×	१/२ =	१ ×	७ =	७ =	१ क्षेत्र =	७ "

नोट– अभी तक अधोलोक व ऊर्ध्वलोक के क्षेत्रफल व घनफल को जाना अब आगे सम्पूर्ण लोक की परिधि और पवनों से रुद्धक्षेत्र के घनफल को जानने का प्रयास करते हैं।

अध्याय – 14

सम्पूर्ण लोक की परिधि एवं समस्त पवनों से रूद्धक्षेत्र का घनफल

दक्षिणोत्तर परिधि – लोक दक्षिणोत्तर सर्वत्र 7 राजू चौड़ा है [ऊपर भी और नीचे भी 7 राजू चौड़ा है।] और लोक की ऊँचाई 14 राजू है। [दोनों पार्श्व भागों की 14, 14 राजू ऊँचाई है]

अत: ऊपर–नीचे की सात–सात राजू चौड़ाई और दोनों पार्श्व भागों की 14–14 राजू ऊँचाई है।

अत: 7+7+14+14 = 42 राजू तथा पूर्व पश्चिम लोक की परिधि = $39\frac{43}{120}$ राजू

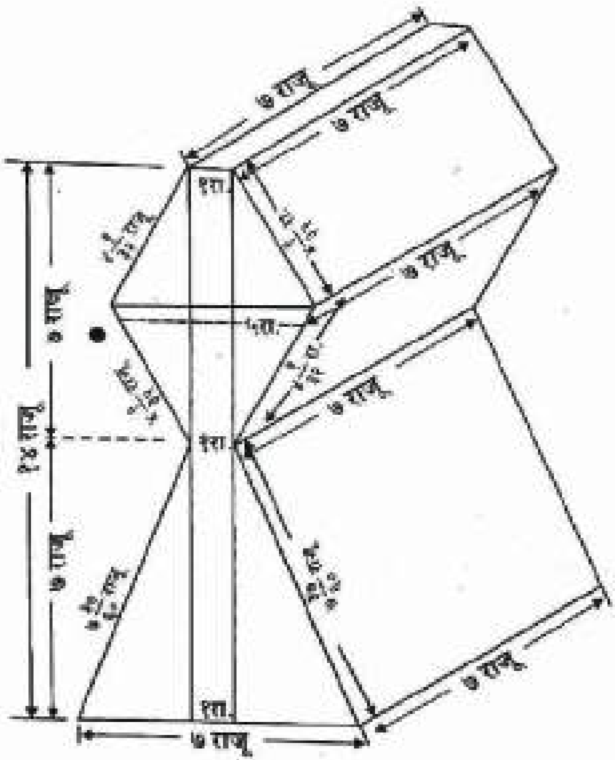

पूर्व–पश्चिम अपेक्षा परिधि – अधोलोक में त्रस नाड़ी के दोनों और अ और ब दो समकोण त्रिभुज है। प्रत्येक त्रिभुज की भुजा 7 राजू और कोटि 3 राजू है। भुजा और कोटि के वर्ग को जोड़ने से करण का वर्ग प्राप्त होता है। वर्ग राशि का गुणकार व भागहार नियम से वर्ग रूप ही होता है।

सूत्र – $(\text{भुजा})^2 + (\text{कोटि})^2 = (\text{करण})^2$

$$(7)^2 + (3)^2 = (\text{करण})^2$$

$$49 + 9 = (\text{करण})^2$$

$$58 = \text{करण}^2$$

एक पार्श्व भाग का 58 वर्ग राजू है तो दोनों पार्श्व भागों का कितना होगा ?

तब 2 के वर्ग 4 से गुणा करना चाहिए, क्योंकि वर्ग राशि का गुणकार वर्ग रूप ही होता है। अत: 58 × 4 = 232 वर्ग राजू हुआ।

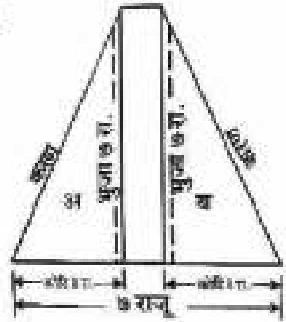

232 का वर्गमूल $15\frac{7}{30}$ राजू है।

अत: अधोलोक के दोनों त्रिभुजों के करणों की परिधि = $15\frac{7}{30}$ राजू

ऊर्ध्वलोक में त्रस नाड़ी के अतिरिक्त क, ख, ग और घ ये चार समकोण त्रिभुज है। प्रत्येक त्रिभुज की भुजा $3\frac{1}{2} = \frac{7}{2}$ राजू और कोटि 2 राजू है। अत: प्रत्येक त्रिभुज के करण का वर्ग क्या होगा?

करण^2 = भुजा^{2} + कोटि^{2}

$$= \left(\frac{7}{2}\right)^2 + (2)^2$$

$$= \frac{49}{4} + \frac{4}{1}$$

$$= \frac{49+16}{4}$$

$$= \frac{65}{4} \text{ वर्ग राजू}$$

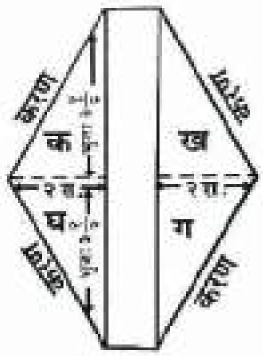

यदि एक त्रिभुज का करण $\frac{65}{4}$ वर्ग राजू है तो 4 त्रिभुजों का कितना होगा? तब 2 के वर्ग 4 से त्रिभुजों की संख्या 4 से गुणा करके एक त्रिभुज के करण से गुणा करना चाहिए।

अत: $4 \times 4 = 16 \times \frac{65}{4} = \frac{1040}{4} = 260$ वर्ग राजू।

260 का वर्गमूल $16\frac{4}{32}$ राजू है।

अत: ऊर्ध्वलोक के चारों त्रिभुजों के करणों की परिधि = $16\frac{4}{32}$ राजू

लोक ऊपर से 1 राजू चौड़ा है और नीचे से 7 राजू चौड़ा है।

सम्पूर्ण लोक की परिधि पूर्व–पश्चिम की अपेक्षा =

अधोलोक के दोनों त्रिभुजों के करणों की परिधि + ऊर्ध्वलोक के चारों त्रिभुजों के करणों की परिधि + लोक की ऊपर चौड़ाई + लोक के नीचे की चौड़ाई

$$15\frac{7}{30} + 16\frac{4}{32} + 1 + 7$$

$$\frac{457}{30} + \frac{516}{32} + \frac{1}{1} + \frac{7}{1}$$

$$\frac{7312+7740+480+3360}{480} = \frac{18892}{480} = \frac{4723}{120} = 39\frac{43}{120} \text{ राजू}$$

सम्पूर्ण लोक में पवनों से रूद्ध क्षेत्र का घनफल

लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरूद्ध क्षेत्र का घनफल–

लोक के नीचे तीनों पवनों का बाहुल्य = 60 हजार योजन

लोक की दक्षिणोत्तर चौड़ाई (भुजा) सर्वत्र = जगत्श्रेणी प्रमाण अर्थात् 7 राजू

(अधोलोक में सबसे नीचे तनुवातवलय का पूर्व–पश्चिम व्यास = 7 राजू लेकिन इसके ऊपर घनवातवलय एवं घनोदधिवातवलय का पूर्व–पश्चिम व्यास 7 राजू से क्रमश: हीन–हीन है। इसलिए लोक की पूर्व–पश्चिम की चौड़ाई (कोटि) में कुछ हीनता है।)

लोक की पूर्व–पश्चिम चौड़ाई (कोटि) = कुछ कम जगत्श्रेणी प्रमाण अर्थात् कुछ कम 7 राजू

अत: लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरूद्ध क्षेत्र का घनफल

= भुजा x कोटि x बाहुल्य

= जगत्श्रेणी x कुछ कम जगत्श्रेणी x 60 हजार योजन

= कुछ कम जगत्प्रतर 60 हजार योजन

अधोलोक के एक राजू ऊपर तक वायुरूद्ध पार्श्वभागों में पवनों का घनफल–

अधोलोक के एक राजू ऊपर के पार्श्व भागों तक तीनों पवनों की चौ.= 60000 योजन कम 1 राजू

पूर्व–पश्चिम दिशा के पार्श्व भागों में जो वातवलय है वे उत्तर–दक्षिण लम्बाई अपेक्षा 7 राजू आयाम वाले है, अत: लम्बाई = जगत्श्रेणी प्रमाण (7 राजू)

वेध (मोटाई) पूर्व–पश्चिम सप्तम पृथ्वी पर्यन्त = 60 हजार योजन

घनफल = लम्बाई x चौड़ाई x मोटाई

= जगत्श्रेणी x कुछ कम 1 राजू x 60 हजार योजन

यह एक पार्श्वभाग घनफल प्राप्त हुआ है। एक पार्श्वभाग का घनफल इतना है तो दोनों पार्श्व भागों का घनफल कितना होगा?

त्रैराशिक करने पर –

चौड़ाई = जगत्श्रेणी अर्थात् 7 राजू, लम्बाई 1 राजू अर्थात् 7/7 राजू, वेध = 60 हजार योजन 2 पार्श्वभागों का घनफल निकालना है इसलिए 2 से गुणा करना चाहिए।

= लम्बाई x चौड़ाई x वेध x 2

$= \frac{7}{7}$ राजू x $\frac{7}{1}$ राजू x 60 हजार योजन x 2

$= \frac{\text{जगत्प्रतर}}{7}$ x 120000 योजन

अथवा

= जगत् प्रतर का 7वाँ भाग 1,20,000 योजन दोनों पार्श्वभागों का घनफल

दक्षिणोत्तर वातवलयों की अपेक्षा लोक के नीचे से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त दोनों पार्श्व भागों का घनफल–

लोक सर्वत्र दशों दिशाओं में वातवलयों से वेष्टित है। लोक के नक्शे में पूर्व–पश्चिम के पार्श्वभागों के वातवलय तो दिखाये जाते है, परन्तु जहाँ लोक का आकार है, उसके ठीक सामने भी वातवलय है, जो नक्शे में नहीं दिखाये जाते है। वातवलयों का यही दक्षिण का पार्श्वभाग है उसी प्रकार उत्तर का भी समझना चाहिए।

लोक के नीचे की चौड़ाई का प्रमाण = 7 राजू

सप्तम पृथ्वी के निकट लोक की चौड़ाई का प्रमाण (मुख = $6\frac{1}{7}$ राजू अर्थात् $\frac{43}{7}$ राजू)

लोक के नीचे से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त उदय (ऊँचाई) = 1 राजू अर्थात् $\frac{49}{49}$ राजू

यहाँ (सप्तम पृथ्वी पर्यन्त) पर पवनों का वेध (मोटाई) = 60 हजार योजन

सप्तम पृथ्वी पर्यन्त दोनों पार्श्व भागों का दक्षिणोत्तर (पवनों से रूद्ध) क्षेत्र का घनफल

$= \frac{\text{मुख + भूमि}}{2} \times \text{ऊँचाई} \times \text{मोटाई} \times 2$ (दो पार्श्व भाग है इसलिए दो से गुणा किया)

$$= \frac{\frac{43}{7}+\frac{7}{1}}{2} \times \frac{49}{49} \times 60,000 \text{ योजन} \times 2$$

$$= \frac{43+49}{7} = \frac{92}{7} \times \frac{1}{2} = \frac{92}{14} = \frac{46}{7} \times \frac{49}{49} \times 60,000 \text{ योजन} \times 2$$

$$= \frac{92}{7} \times \frac{49}{49} \times 60,000$$ (यहाँ ऊपर वाला 49 जगत् प्रतर स्वरूप है)

अर्थात् $\frac{\text{जगत्प्रतर} x 92 x 60,000}{49 x 7}$ योजन

$\frac{\text{जगत्प्रतर} x 55,20,000}{343}$ योजन

अर्थात् जगत् प्रतर को 60,000 योजन से एवं 92 से गुणा कर 7 के घन (343. राजू) का भाग देने पर दोनों पार्श्व भागों का घनफल प्राप्त होता है।

सप्तम पृथ्वी से मध्यलोक पर्यन्त पूर्व–पश्चिम दिशा में वातवलयों का प्रमाण

सप्तम पृथ्वी से तिर्यग्लोक पर्यन्त पूर्व-पश्चिम पार्श्वयुगलों में पवनों का आयाम (लम्बाई) श्रेणी 7 राजू अर्थात् $\frac{49}{7}$ राजू है। जिसे की भुजा कहते है।

सप्तम पृथ्वी से तिर्यग्लोक पर्यन्त व्यास (चौड़ाई) 6 राजू है। जिसे कोटि कहते हैं।

सप्तम पृथ्वी के पास पवनों की मोटाई 16 योजन (7+5+4) और तिर्यग्लोक के पास 12 योजन (5+4+3) है। औसत मोटाई $\left(\frac{16+12}{2}=\frac{28}{2}\right)$ = 14 योजन प्राप्त हुई।

अत: $\frac{49}{7}$x6x14(यहाँ भी 49 जगत्प्रतर के स्थानीय है।)

इसलिए $\frac{\text{जगत्प्रतर}\times6\times14}{7}$ प्राप्त हुआ। पार्श्व भाग दोनों ओर से होने से 2 से गुणा किया

अत: $\frac{\text{जगत्प्रतर}\times6\times14\times2}{7}$ प्राप्त हुआ। नीचे के 7 से ऊपर के 14 योजन को अपवर्तित कर देने पर 2 प्राप्त होते है, अत: जगत्प्रतरx6x2x2= जगत्प्रतरx24 योजन लब्ध प्राप्त होता है।

अत: दोनों पार्श्व भागों के वायुरुद्ध क्षेत्र का घनफल जगत्प्रतर x 24 योजन है।

सप्तम पृथ्वी से मध्यलोक पर्यन्त दक्षिणोत्तर पार्श्वभागों में पवनों का प्रमाण

सप्तम पृथ्वी के निकट पवनों की चौड़ाई $6\frac{1}{7}$ अर्थात् $\frac{43}{7}$ राजू है, यह भूमि है। तिर्यग्लोक के निकट पवनों की चौड़ाई 1 राजू अर्थात् $\frac{7}{7}$ राजू है, यह मुख है सप्तम पृथ्वी से मध्यलोक पर्यन्त पवनों की ऊँचाई = 6 राजू है। इन पवनों की मोटाई (वेध) 14 योजन है।

एक पार्श्व भाग का घनफल $= \frac{\text{मुख + भूमि}}{2}$ x ऊँचाई x मोटाई

$$= \frac{\frac{7}{7}+\frac{43}{7}}{2} = \frac{50}{7}\times\frac{1}{2}\times6\times14$$

नीचे के 7 से ऊपर के 14 को अपवर्तित कर देने पर 2 प्राप्त हुआ फिर नीचे के 2 से ऊपर के 2 को अपवर्तित करने पर 1 प्राप्त हुआ। अत: 50x6=300 योजन

एक पार्श्वभाग में वायुरुद्ध क्षेत्र = 300 है तो दोनों पार्श्व भागों का वायुरुद्ध क्षेत्र इसका दुगुना होगा। अत: 300x2 = 600 योजन घनराजू अत: दक्षिणोत्तर दोनों पार्श्वभागों में वायुरुद्ध क्षेत्र का घनफल 600 योजन घनराजू प्राप्त हुआ।

इस प्रमाण को जगत्प्रतर स्वरूप बनाने के लिए 49 को गुणा कर 49 से ही भाग देना चाहिए। अर्थात् $\frac{\text{जगत्प्रतर}\times 600 \text{ योजन}}{49}$ हुआ। यहाँ 49 जगत्प्रतर के स्थानीय है।

क्योंकि 7x7= 49 वर्गराजू = जगत्प्रतर होता है। अत: $\frac{\text{जगत्प्रतर}\times 600 \text{ योजन}}{49}$ घनराजू दोनों पार्श्वभागों का घनफल प्राप्त हुआ।

ऊर्ध्वलोक पूर्व और पश्चिम की ओर के वातवलय अपेक्षा सर्वत्र 7 राजू है, इसी का व्यास है। यहाँ इसे कोटि भी कहा है। श्रेणी अर्थात् 7 राजू की भुजा है अर्थात् लोक के पूर्व-पश्चिम दोनों पार्श्वभागों के वातवलय उत्तर-दक्षिण आयाम अपेक्षा 7 राजू लम्बे है।

मध्यलोक से अर्ध ऊर्ध्वलोक (ब्रह्म स्वर्ग तक) $=3\frac{1}{2}$ राजू ऊँचा है। यही कोटि है।

तीनों वातवलयों की तिर्यग्लोक के समीप 12 योजन (5+4+3) और ब्रह्म स्वर्ग के समीप 16 योजन (7+5+4) मोटाई है। इनकी औसत मोटाई = $\frac{12+16}{2}=\frac{28}{2}$ = 14 योजन

अत: वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का घनफल = भुजा x कोटि x मोटाई

$$\frac{7}{2}\times 7 \times 14 = 7\times 7\times 7 = 49\times 7$$

नीचे वाले से 2 से ऊपर वाले 14 को अपवर्तित करने पर 7 प्राप्त होता है। यहाँ 49 जगत्प्रतर स्वरूप है।

अर्ध ऊर्ध्वलोक के एक दिशा के वातवलय का घनफल = जगत्प्रतर x 7 योजन प्राप्त हुआ तो दोनों दिशाओं के पूर्ण ऊर्ध्व लोक (चारों भागों) के वातवलयों को रुद्धक्षेत्र का घनफल होगा

= जगत्प्रतर x 7 x 4 = जगत्प्रतर x 28 योजन प्राप्त हुआ।

शंका–लोक के वर्णन में पूर्व पश्चिम अपेक्षा व्यास का हीनाधिकता बताया है। यहाँ वातवलय के कथन में पूर्व-पश्चिम अपेक्षा सर्वत्र समान कहा है और उत्तर-दक्षिण अपेक्षा ही हीनाधिक व्यास कहा है, इसका क्या कारण है?

समाधान–जैसे कोई एक मंदिर है। उसकी उत्तर या दक्षिण तरफ की दीवाल की लम्बाई का प्रमाण निकालना है, उस समय पूर्व दिशा की दीवाल से लेकर पश्चिम दिशा की दीवाल पर्यन्त माप लिया जाता है। जहाँ पूर्व या पश्चिम की तरफ की दीवाल की लम्बाई का प्रमाण निकालना हो तो उस समय उत्तर से दक्षिण दिशा की दीवाल तक माप लिया जाता है।

इसी प्रकार लोक का जब दक्षिण और उत्तर दिशा के वातवलय का कथन किया जाता है, उस समय लोक के पूर्व-पश्चिम व्यास का कथन किया है और लोक के पूर्व-पश्चिम दिशा के वातवलय का कथन किया है, उस समय लोक के उत्तर-दक्षिण व्यास का कथन किया है।

(त्रि.सा.गा. 136 पृ. 147)

दक्षिणोत्तर अपेक्षा ऊर्ध्वलोक के चारों पार्श्व भागों के वातवलयों से रूद्ध क्षेत्र का घनफल

ऊर्ध्वलोक ब्रह्म स्वर्ग के पास 5 राजू चौड़ा है अर्थात् भूमि 5 राजू है।

तिर्यग्लोक के पास 1 राजू चौड़ा है अर्थात् मुख 1 राजू है।

इस प्रकार अर्ध ऊर्ध्वलोक का व्यास = $\frac{\text{मुख+भूमि}}{2} = \frac{5+1}{2} = \frac{6}{2} = 3$ राजू

व्यास ही भुजा अर्थात् भुजा = 3 राजू

ब्रह्म स्वर्ग तक की ऊँचाई = $3\frac{1}{2}$ राजू = $\frac{7}{2}$ राजू यही कोटि है।

इस क्षेत्र के वातवलयों की मोटाई = 14 राजू

अत: अर्ध ऊर्ध्वलोक की एक दिशा के वातवलयों से रूद्ध क्षेत्र का घनफल

= भुजा x कोटि x मोटाई

= $3 \times \frac{7}{2} \times 14$ (यहाँ नीचे के 2 से ऊपर के 14 को अपवर्तित करने पर 7 प्राप्त होता है।)

= 3 x 7 x 7 = 49x3 (यहाँ 49 जगत्प्रतर स्वरूप है।)

पूर्ण ऊर्ध्वलोक की दक्षिणोत्तर दोनों दिशाओं के चारों भागों का घनफल

= जगत्प्रतर x 3 x 4

= जगत्प्रतर x 12 योजन

हमेशा यही प्रार्थना करो कि हमें हजारों कष्ट भले ही सहन करने पड़ें पर हम से किसी को कोई कष्ट न हो क्योंकि दु:ख भोगने वाला आगे सुखी हो सकता है लेकिन दु:ख देने वाला दु:खी ही होगा।

लोक के अग्रभाग पर वायुरुद्ध क्षेत्र का घनफल

लोक के अग्रभाग में वातवलय का व्यास = 1 राजू (यह कोटि है।) एक राजू श्रेणी का 7वाँ भाग है।

दक्षिणोत्तर चौड़ाई अर्थात् भुजा = 7 राजू (यह श्रेणी स्वरूप है)

तीनों पवनों की मोटाई = लोक के अग्रभाग पर घनोदधि वातवलय दो कोश मोटा है।

घनवातवलय 1 कोश मोटा है, तनुवातवलय 425 धनुष कम 1 कोश मोटा है। 2000 धनुष का 1 कोश होता है। तो 2000-425=1575 धनुष मोटा तनुवातवलय हुआ और 2000 धनुष मोटा घनवातवलय हुआ और 4000 धनुष मोटा घनोदधि वातवलय हुआ। अत: सम्पूर्ण वातवलयों की मोटाई = 4000+2000+1575 = 7575 धनुष होती है।

8000 धनुष का एक योजन होता है।

जब 8000 धनुष का एक योजन होता है तो 7575 धनुष में कितने योजन होंगे ?

त्रैराशिक करने पर $\frac{1}{8000} \times 7575 = \frac{7575}{8000} = \frac{303}{320}$ योजन

अत: लोक के अग्रभाग पर पवनों द्वारा रुद्ध क्षेत्र का घनफल

$$= \text{भुजा} \times \text{कोटि} \times \text{मोटाई}$$

$$= \frac{\text{श्रेणी}}{1} \times \frac{\text{श्रेणी}}{7} \times \frac{303}{320}$$

$$= \frac{\text{जगत्प्रतर}}{7} \times \frac{303}{320} \text{ योजन}$$

आज भूखे पेट वाले ज्यादा पाप नहीं करते भरे पेट वालों की तुलना में परन्तु ध्यान रखिए पाप पहले तो बहुत रसीला लगता है बाद में बहुत कटीला लगता है। जो पहले मजा दे, फिर जिंदगी भर सजा दे, वही पाप है।

सम्पूर्ण लोक के सम्पूर्ण घनफलों का योग

1.) लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल = जगत्प्रतर x 60 हजार योजन

2.) लोक के 1 राजू ऊपर पूर्व-पश्चिम में अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल $= \frac{\text{जगत्प्रतर}}{7} \times 120000$ योजन

3.) लोक के 1 राजू ऊपर दक्षिणोत्तर में अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल $= \frac{\text{जगत्प्रतर} \times 5520000}{343}$ योजन

4.) 7वीं पृथ्वी से मध्यलोक तक पूर्व-पश्चिम अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल = जगत्प्रतर x 24 योजन

5.) 7वीं पृथ्वी से मध्यलोक तक दक्षिणोत्तर में अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल $= \frac{\text{जगत्प्रतर} \times 600}{49}$ योजन

6.) ऊर्ध्वलोक के चार पार्श्व भागों का पूर्व-पश्चिम में अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल = जगत्प्रतरx28 योजन

7.) ऊर्ध्वलोक के चार पार्श्व भागों का दक्षिणोत्तर में अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल= जगत्प्रतरx12 योजन

8.) लोक के अग्र भाग पर वातवलयों से अवरुद्ध क्षेत्र का घनफल $= \frac{\text{जगत्प्रतर}}{7} \times \frac{303}{320}$ योजन

यहाँ पहले लोक के अग्रभाग को छोड़कर शेष समस्त घनफलों का योग = जगत्प्रतर की संदिष्ट 'ज' है।

$$\frac{\text{ज.}\times 60000}{1} + \frac{\text{ज.}\times 120000}{7} + \frac{\text{ज.}\times 552000}{343} + \frac{\text{ज.}\times 24}{1} + \frac{\text{ज.}\times 600}{49} + \frac{\text{ज.}\times 28}{1} + \frac{\text{ज.}\times 12}{1}$$

(सभी हरों का लघुत्तम समापवर्त्य = 343)

$$\frac{\text{ज.}\times 20580000+5880000+5520000+8232+4200+9606+4116}{343} = \text{ज.}\times\frac{32006152}{343}$$

(इसमें लोक के अग्रभाग पर वायुरुद्ध क्षेत्र का घनफल जोड़ने पर)

$$\frac{\text{ज.}\times 32006152}{343} + \frac{\text{ज.}}{7} \times \frac{303}{320}$$

$$\text{ज.}\times\frac{32006152}{343} + \frac{303}{2240}$$

$$\text{ज.}\times\frac{10241968640+14847}{109760}$$

$$\text{ज.}\times\frac{10241983487}{109760}$$

यही सम्पूर्ण लोक के समस्त पवनों से रुद्ध क्षेत्र का घनफल है।

अध्याय–15

सम्पूर्ण लोकाकाश के सम्पूर्ण वायुमण्डल का चित्रण

अन्य धर्मों की मान्यता में कई कथन प्राप्त होते है कोई ये कहते है कि पृथ्वी शेषनाग पर टिकी है, कोई कहते हैं कि गाय के सींग पर ही टिकी है ऐसी कई मान्यताऐं है पर वास्तव में लोक तीन प्रकार की वातवलय (वायु) के आधार से टिका है, वातवलय लोक को चारों ओर से घेरे हुए है।

लोक को वेष्टित करने वाले तीन वात वलय - (1) घनोदधिवातवलय, (2) घनवातवलय, (3) तनुवातवलय।

वातवलयों का वर्ण –(1) घनोदधि वातवलय – गाय के मूत्र सदृश वर्ण
(2) घनवातवलय – मूँग (अन्न) के सदृश वर्ण
(3) तनुवातवलय – अनेक प्रकार के वर्ण

लोकाकाश के अधोभाग में, दोनों पार्श्व भागों में नीचे से लगाकर एक राजू की ऊँचाई तक तथा प्रथम पृथ्वी से सप्तम पृथ्वी और कलकल पृथ्वी इन आठों पृथ्वी के नीचे–नीचे तीनों वातवलय 20–20 हजार योजन मोटाई वाले हैं।

दोनों पार्श्व भागों में एक राजू के ऊपर सप्तम पृथ्वी के निकट घनोदधिवातवलय 7 यो., घनवातवलय 5 यो., तनुवातवलय 4 यो. मोटाई वाले हैं। सप्तम् पृथ्वी से ऊपर क्रम से घटते हुए तिर्यग्लोक के समीप तीनों वातवलय क्रम से 5, 4, 3 योजन बाहुल्य वाले हैं। यहाँ से ब्रह्मलोक तक क्रम से बढ़ते हुए सप्तम् पृथ्वी सदृश 7, 5, 4 योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं। ब्रह्मलोक से क्रमानुसार हीन होते हुए तीनों वातवलय ऊर्ध्वलोक के निकट तिर्यग्लोक सदृश 5, 4, 3 योजन बाहुल्य हो जाते हैं।

सप्तम पृथ्वी से तिर्यग्लोक तक मध्यम पृथ्वियों के वातवलयों का प्रमाण – नीचे से 1 राजू ऊपर सप्तम् पृथ्वी के निकट तीनों पवनों के बाहुल्य का प्रमाण [7 + 5 + 4] = 16 योजन है, यह भूमि है, तथा तिर्यग्लोक के निकट [5 + 4 + 3] = 12 योजन बाहुल्य है। यह मुख है।

सातवीं पृथ्वी से तिर्यग्लोक 6 राजू ऊँचा है।

हानि चय $= \frac{\text{भूमि–मुख}}{\text{ऊँचाई}} = \frac{16-12}{6} = \frac{4}{6}$ योजन प्रतिप्रदेश क्रम से एक राजू पर होने वाली हानि का प्रमाण प्राप्त हुआ।

सप्तम् पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = 16 योजन

षष्ठम् पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = 16–हानि चय $= \frac{16}{1} - \frac{4}{6} = \frac{96-4}{6} = \frac{92}{6} = \frac{46}{3}$

$= 15\frac{1}{3}$ योजन

पंचम पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = (समच्छेद करने पर) − $\frac{46}{3}-\frac{4}{6}$

$= \frac{92-4}{6} = \frac{88}{6} = \frac{44}{3}$ या $14\frac{2}{3}$ योजन

चतुर्थ पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = $14\frac{2}{3}$ का समच्छेद करने पर

$\frac{44}{3}-\frac{4}{6}=\frac{88-4}{6}=\frac{84}{6}=\frac{42}{3}=14$ योजन

तीसरी पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = पूर्व की तरह 14 का समेच्छद करने पर

$\frac{42}{3}-\frac{4}{6}=\frac{84-4}{6}=\frac{40}{3}=\frac{40}{3}=13\frac{1}{3}$ योजन

दूसरी पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = वही समच्छेद विधि से हल करने पर

$\frac{40}{3}-\frac{4}{6}=\frac{80-4}{6}=\frac{76}{6}=\frac{38}{3}=12\frac{2}{3}$ योजन

पहली पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य = $\frac{38}{3}-\frac{4}{6}=\frac{76-4}{6}=\frac{72}{6}$ =12 योजन

ऊर्ध्वलोक में भूमि = 16 योजन, मुख = 12 योजन अत: 16−12 = 4 योजन वृद्धि/हानि/प्रथम व द्वितीय युगलों की ऊँचाई तीन राजू है, तथा शेष 6 युगलों की ऊँचाई 4 राजू है, अत: जब $3\frac{1}{2}$ राजू की ऊँचाई पर 4 योजन की वृद्धि है तब $1\frac{1}{2}$ राजू पर कितनी वृद्धि होगी ? और तीन राजू पर कितनी वृद्धि होगी ?

$1\frac{1}{2}$ राजू पर वृद्धि $= 4 \div \frac{7}{2} \times \frac{3}{2} = \frac{4\times2\times3}{7\times2} = \frac{12}{7}$ योजन की वृद्धि/हानि

$\frac{1}{2}$ राजू पर वृद्धि $= 4 \div \frac{7}{2} \times \frac{1}{2} = \frac{4\times2\times1}{7\times2} = \frac{8}{14} = \frac{4}{7}$ योजन की वृद्धि/हानि

मेरुतल से ऊपर प्रथम युगल के उपरिम भाग में तीनों पवनों का बाहुल्य =

मेरुतल पर बाहुल्य = 12 योजन, तथा वृद्धि = $\frac{12}{7} = \frac{12}{1} + \frac{12}{7} = \frac{84+12}{7}$

$= \frac{96}{7} = 13\frac{5}{7}$ योजन

दूसरे युगल के निकट बाहुल्य = $\frac{96}{7}+\frac{12}{7}=\frac{96+12}{7}=\frac{108}{7}=15\frac{3}{7}$ योजन

तीसरे युगल से आगे आधा-आधा राजू की वृद्धि व हानि $\frac{4}{7}$ है अतः तीसरे युगल के निकट बाहुल्य =

$$\frac{108}{7}+\frac{4}{7}=\frac{108+4}{7}=\frac{112}{7}=16 \text{ योजन}$$

चतुर्थ युगल के निकट से 1/2 राजू की हानि है, अतः चतुर्थ युगल के निकट बाहुल्य =

$$\frac{112}{7}-\frac{4}{7}=\frac{112-4}{7}=\frac{108}{7}=15\frac{3}{7} \text{ योजन}$$

पंचम युगल के निकट बाहुल्य = $\frac{108}{7}-\frac{4}{7}=\frac{108-4}{7}=\frac{104}{7}=14\frac{6}{7}$ योजन

षष्ठम् युगल के निकट बाहुल्य = $\frac{104}{7}-\frac{4}{7}=\frac{104-4}{7}=\frac{100}{7}=14\frac{2}{7}$ योजन

सप्तम् युगल के निकट बाहुल्य = $\frac{100}{7}-\frac{4}{7}=\frac{100-4}{7}=\frac{96}{7}=13\frac{5}{7}$ योजन

अष्टम् युगल के निकट बाहुल्य = $\frac{96}{7}-\frac{4}{7}=\frac{96-4}{7}=\frac{92}{7}=13\frac{1}{7}$ योजन

नव ग्रैवेयाकादि के निकट बाहुल्य = $\frac{92}{7}-\frac{4}{7}=\frac{92-4}{7}=\frac{88}{7}=12\frac{4}{7}$ योजन

सिद्धक्षेत्र के निकट बाहुल्य = $\frac{88}{7}-\frac{4}{7}=\frac{88-4}{7}=\frac{84}{7}=12$ योजन

लोक शिखर पर पवनों का बाहुल्य = घनोदधि वातवलय की मोटाई = 2 कोस, घनवातवलय की मोटाई = 1 कोस, तनुवातवलय की मोटाई = कुछ कम अर्थात् 425 धनुष कम एक कोस अर्थात् 1 कोस = 2000 धनुष है तो 2000 धनुषों में से 425 कम करने पर 2000–425 = 1575 धनुष तनुवातवलय का बाहुल्य है।

लोक के अग्रभाग पर तनुवातवलय में सिद्ध परमेष्ठी विराजमान है। जघन्य व उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के कौन–से भाग में विराजमान है। इसे सिद्ध करते हैं –

❋ जघन्य अवगाहना $3\frac{1}{2}$ हाथ की होती है, तथा 4 हाथ का एक धनुष होता है।

अतः जब 4 हाथ = 1 धनुष

तब $3\frac{1}{2}$ हाथ में कितने धनुष होंगे ? = $\frac{1}{4} \times \frac{7}{2} = \frac{7}{8}$ धनुष

❊ तनुवातवलय का बाहुल्य तो प्रमाणाङ्गुल की अपेक्षा है और सिद्धों की अवगाहना व्यवहाराङ्गुल या उत्सेधांगुल की अपेक्षा है अत: प्रमाणाङ्गुल को व्यवहाराङ्गुल में बदलने के लिए 500 से गुणा करते हैं।

अत: 1575 × 500 = 787500 व्यवहार धनुष।

जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध भगवान तनुवातवलय में कहाँ विराजमान है ?

$$\frac{\text{तनुवातवलय का बाहुल्य}}{\text{जघन्य अवगाहना}} = \frac{787500}{7/8} = \frac{787500\text{x}8}{7} = \frac{6300000}{7} = 9{,}00{,}000$$

= 9,00,000 [9 लाख] वें भाग में।

अत: जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के 9 लाख वें भाग में विराजमान है।

❊ उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी (बाहुबली भगवान) की उत्कृष्ट अवगाहना है = 525 धनुष। ये तनुवातवलय में कहाँ विराजमान है ?

$$\frac{\text{तनुवातवलय का बाहुल्य}}{\text{उत्कृष्ट अवगाहना}} = \frac{787500}{525} = 1500\text{वें भाग में}$$

अत: उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के 1500वें भाग में विराजमान है।

यहाँ वातवलयों का प्रकरण है नीचे से लेकर ऊपर सिद्धलोक तक वातवलयों का कथन करके चूंकि सिद्ध परमात्मा अन्तिम वातवलय के अन्तिम भाग में विराजमान है अत: जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध 9 लाख वें भाग में तथा उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध 1500 वें भाग में विराजमान हैं ऊपर से सिर सभी के बराबर होते हैं नीचे कम ज्यादा होते है। अब तीर्थंकरों की अवगाहना का कथन किया जा रहा है कि वे तनु वातवलय के कौनसे भाग में विराजमान हैं? यद्यपि यह प्रकरण किसी ग्रंथ में नहीं आया है किंतु गणित सूत्र के माध्यम से उल्लेख कर दिया है। यहाँ अवगाहना दो प्रकार से दर्शायी है मूल अवगाहना के अनुसार तथा तत्त्वार्थ सूत्र में किंचित् न्यून कही गई है जिसका आशय किन्हीं आचार्यों ने दो तिहाई भाग लिया है। अत: मूल शरीर के अनुसार कितने भाग में रहते हैं तथा द्वितीय मत दो तिहाई शरीर के अनुसार कितने भाग में रहते हैं इन दोनों अवगाहनाओं का उल्लेख किया जा रहा है। जब भी आप सम्मेद शिखर की यात्रा करेंगे उन्हीं तीर्थंकर की टोंक पर खड़े होकर उनका उसी अवगाहना में तनुवातवलय के अन्तिम भाग में ध्यान करेंगे।

[त्रिलोकसार व तिल्लोय पण्णत्ति के अनुसार मूल शरीर की अवगाहना]	[तिलोय पण्णत्ति द्वितीय मतानुसार व वर्तमान अवगाहना किंचिन्यून]
1. **आदिनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 500 धनुष अत: = $\frac{787500}{500}$ = 1575 वें भाग में	$500 \times \frac{2}{3} = \frac{1000}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{1000}$ = 2362.5वें भाग में
2. **अजितनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 450 धनुष अत: = $\frac{787500}{450}$ = 1750 वें भाग में	$450 \times \frac{2}{3}$ = धनुष 300 $\frac{787500}{300}$ = 2625वें भाग में
3. **संभवनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 400 धनुष अत: = $\frac{787500}{400}$ =1968.75 वें भाग में या $1968\frac{3}{4}$	$400 \times \frac{2}{3} = \frac{800}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{800}$ = 2953.125वें भाग में
4. **अभिनन्दननाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** =350 धनुष अत: = $\frac{787500}{350}$ = 2250 वें भाग में	$350 \times \frac{2}{3} = \frac{700}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{700}$ = 3375वें भाग में
5. **सुमतिनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 300 धनुष अत: = $\frac{787500}{300}$ = 2625 वें भाग में	$300 \times \frac{2}{3} = \frac{600}{3}$ = 200 धनुष $\frac{787500}{200}$ 3937.5वें भाग में
6. **पद्मप्रभ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 250 धनुष अत: = $\frac{787500}{250}$ = 3150 वें भाग में	$250 \times \frac{2}{3} = \frac{500}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{500}$ = 4725वें भाग में
7. **सुपार्श्वनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 200 धनुष अत: = $\frac{787500}{200}$ = 3937.5 वें भाग में	$200 \times \frac{2}{3} = \frac{400}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{400}$ = 5906.25वें भाग में

8. चन्द्रप्रभ भगवान के शरीर की अवगाहना = 150 धनुष अत: = $\frac{787500}{150}$ = 5250 वें भाग में	$150 \times \frac{2}{3} = \frac{300}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{300}$ = 7875वें भाग में
9. पुष्पदन्त भगवान के शरीर की अवगाहना =100 धनुष अत: = $\frac{787500}{100}$ = 7875 वें भाग में	$100 \times \frac{2}{3} = \frac{200}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{200}$ = 11812.5वें भाग में
10. शीतलनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 90 धनुष अत: = $\frac{787500}{90}$ = 8750 वें भाग में	$90 \times \frac{2}{3} = \frac{180}{3}$ = 60 धनुष $\frac{787500}{60}$ = 13125वें भाग में
11. श्रेयांसनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 80 धनुष अत: = $\frac{787500}{80}$ = 9843.75 वें भाग में	$80 \times \frac{2}{3} = \frac{160}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{160}$ = 14765.625वें भाग में
12. वासुपूज्य भगवान के शरीर की अवगाहना = 70 धनुष अत: = $\frac{787500}{70}$ = 11250 वें भाग में	$70 \times \frac{2}{3} = \frac{140}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{140}$ = 16875वें भाग में
13. विमलनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 60 धनुष अत: = $\frac{787500}{60}$ = 13125 वें भाग में	$60 \times \frac{2}{3} = \frac{120}{3}$ 40 धनुष $\frac{787500}{40}$ = 19687.5वें भाग में
14. अनन्तनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 50 धनुष अत: = $\frac{787500}{50}$ = 15750वें भाग में	$50 \times \frac{2}{3} = \frac{100}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{100}$ = 23625वें भाग में

15. धर्मनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 45 धनुष अत: = $\frac{787500}{45}$ = 17500 वें भाग में	$45 \times \frac{2}{3} = \frac{90}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{90}$ = 26250वें भाग में
16. शांतिनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 40 धनुष अत: = $\frac{787500}{40}$ = 19687.5वें भाग में	$40 \times \frac{2}{3} = \frac{80}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{80}$ = 29531.25वें भाग में
17. कुंथुनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 35 धनुष अत: = $\frac{787500}{35}$ = 22500 वें भाग में	$35 \times \frac{2}{3} = \frac{70}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{70}$ = 33750वें भाग में
18. अरनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 30 धनुष अत: = $\frac{787500}{30}$ = 26250 वें भाग में	$30 \times \frac{2}{3} = \frac{60}{3}$ = 20 धनुष $\frac{787500}{20}$ = 39375वें भाग में
19. मल्लिनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 25 धनुष अत: = $\frac{787500}{25}$ = 31500 वें भाग में	$25 \times \frac{2}{3} = \frac{50}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{50}$ = 47250वें भाग में
20. मुनिसुव्रतनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 20 धनुष अत: = $\frac{787500}{20}$ = 39375 वें भाग में	$20 \times \frac{2}{3} = \frac{40}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{40}$ = 59062.5वें भाग में
21. नमिनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना = 15 धनुष अत: = $\frac{787500}{15}$ = 52500वें भाग में	$15 \times \frac{2}{3} = \frac{30}{3}$ = 10 धनुष $\frac{787500}{10}$ = 78750वें भाग में

22 **नेमिनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 10 धनुष अत: = $\frac{787500}{10}$ = 78750 वें भाग में नोट–यहाँ तक की सारी अवगाहना धनुष में थी।	$10 \times \frac{2}{3} = \frac{20}{3}$ धनुष $\frac{787500 \times 3}{20}$ = 118125वें भाग में
23. **पार्श्वनाथ भगवान के शरीर की अवगाहना** = 9 हाथ जब 4 हाथ = 1 धनुष है तो 9 हाथ $\frac{1}{4} \times 9 = \frac{9}{4}$ धनुष नोट–यहाँ से अवगाहना हाथ में है अत: हाथ के धनुष बनाए हैं। अत: = $\frac{787500 \times 4}{9}$ = 3,50,000वें भाग में	$\frac{9}{4} \times \frac{2}{3} = \frac{18}{12} = \frac{3}{2}$ धनुष $\frac{787500 \times 2}{3}$ = 5,25,000वें भाग में
24. **महावीर भगवान के शरीर की अवगाहना** = 7 हाथ जब 4 हाथ = 1 धनुष है तो 7 हाथ $\frac{1}{4} \times 7 = \frac{7}{4}$ धनुष अत: = $\frac{787500 \times 4}{7}$ = 4,50,000वें भाग में	$\frac{7}{4} \times \frac{2}{3} = \frac{14}{12} = \frac{7}{6}$ धनुष $\frac{787500 \times 6}{7} = \frac{4725000}{7}$ = 6,75,000वें भाग में

विशेषार्थ–माना विमलनाथ भगवान के आत्मप्रदेश कहाँ पर हैं हमें यह जानना है? तो एक मतानुसार–जहाँ से उन्होंने निर्वाण को प्राप्त किया है उसकी ठीक सीध में ऊपर तनु वातवलय के नीचे से ऊपर की ओर भाग करते जाएँ तेरह हजार एक सौ पच्चीस वां भाग ऊपर जाने पर उनके आत्मप्रदेश ठहरे हुए हैं। द्वितीय मतानुसार उन्नीस हजार छह सौ साढे सतासी वें भाग में उनके आत्म प्रदेश विराजमान है इसी प्रकार सभी तीर्थंकरों का जान लेना चाहिए।

नोट–तिल्लोय पण्णत्ति भाग–2 पृष्ठ 873 श्लोक नं. 6 में सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष, जघन्य अवगाहना $3\frac{1}{2}$ हाथ बताई है।

और गाथा–11 में उत्कृष्ट अवगाहना – 350 धनुष तथा जघन्य अवगाहना $\frac{7}{12}$ धनुष अथवा $\frac{7}{3}$ हाथ अथवा $2\frac{1}{3}$ हाथ बताई गई जो, किंचिन्यून की अपेक्षा से है।

क्योंकि किंचिन्यून का अर्थ दो मतों के अनुसार किया गया है। एक मत के अनुसार मुख्य अवगाहना से किंचिन्यून का अर्थ दो तिहाई भाग (2/3) नहीं लिया अत: मूल शरीर को ही स्वीकार किया है।

द्वितीय मतानुसार किंचिन्यून कहा है किंचिन्यून का अर्थ दो तिहाई भाग $\left(\frac{2}{3}\right)$ लिया गया है।

दोनों अवगाहनाओं का प्रयोग यहाँ पर किया है। अत: मूल अवगाहना के अनुसार वे तनुवातवलय के जितने भाग में रहते हैं उसका उल्लेख किया गया है तथा किंचिन्यून के अनुसार जितने भाग में रहते हैं उसका भी उल्लेख किया है।

(रत्नचन्द्र मुक्तार व्यक्तित्व कृतित्व भाग–2 पृष्ठ संख्या 1050 से साभार।)

नोट– अभी इस अध्याय में सम्पूर्ण लोकाकाश के वायुमण्डल को जाना और साथ ही तनुवातवलय के कौनसे भाग में कौनसे भगवान विराजमान हैं इसके बारे में जाना अब आगे के अध्याय में अधोलोक में स्थित पृथ्वियों के बिलों के बारे में विस्तार से जानने का प्रयास करते हैं....

यदि कोई समझदार मूर्खों को समझाने में विद्यार्जन का समय गवां दे, तो उससे ज्यादा मूर्ख कोई नहीं वह भी मूर्ख सदृश ही है क्योंकि मूर्खों की बात पर विचार करोगे तो समझदारों का अनुसरण नहीं कर सकोगे। मूर्खों का तो काम ही टीका–टिप्पणी करना होता है, समझदार तो हर बात को समझते हैं।

अध्याय–16

अधोलोक की पृथ्वियों के बिलों की संख्या का विस्तार

अनंत आकाश के बीचों बीच चौदह राजू ऊँचा उत्तर दक्षिण सात राजू तथा पूर्व पश्चिम भिन्न–भिन्न माप का लोक है उस लोक के बीचों बीच त्रस नाली है जो एक राजू चौड़ी व चौदह राजू लम्बी है। जिसके अन्दर त्रस व स्थावर जीव निवास करते हैं शेष लोक में स्थावर जीव ही रहते हैं।

लोक को तीन भागों में विभाजित किया जाता है अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक इस प्रकार से लोक 343 घनराजू प्रमाण हैं। यहाँ पर अधोलोक की चर्चा करेंगे।

अर्ध मृदंगाकार अधोलोक में 7 पृथ्वियाँ हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा, महातम:प्रभा। प्रत्येक पृथ्वी एक राजू के अंतर से है। प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं – खरभाग, पंकभाग, अब्बहुल भाग जो क्रमश: 16000, 84000, 80,000 योजन मोटे हैं। तथा शर्करा आदि पृथ्वियों की मोटाई क्रमश: 32000, 28000, 24000, 20000, 16000, 8000 योजन प्रमाण है।

सप्तम पृथ्वी में ऊपर–नीचे बहुत मोटाई छोड़कर मात्र बीच में बिल है। किन्तु अन्य पाँच पृथ्वियों में और प्रथम पटल के अब्बहुल भाग में नीचे–ऊपर की एक–एक हजार योजन मोटाई छोड़कर बीच में जितने पटल बने हैं, उनमें अनुक्रम से बिल पाए जाते हैं। प्रत्येक पटल के मध्य में **इन्द्रक बिल**, दिशाओं–विदिशाओं में पंक्ति सहित **श्रेणीबद्ध बिल** तथा श्रेणिबद्ध बिलों के अन्तराल में पंक्तिरहित पुष्पों के समान यत्र–तत्र बिखरे हुए बिल **प्रकीर्णक बिल** कहलाते हैं।

प्रत्येक पृथ्वी में क्रमश: 30 लाख, 25 लाख, 15 लाख, 10 लाख, 3 लाख, पाँच कम एक लाख तथा पाँच बिल पाये जाते हैं। इस प्रकार सातों पृथ्वियों में कुल 84 लाख बिल होते है।

इनमें से उष्ण वेदना वाले बिल = प्रथम पृथ्वी से पाँचवीं पृथ्वी के तीन चौथाई भाग तक

अर्थात् $30,00,000+25,00,000+15,00,000+10,0000+\left(3,00,000\times\frac{3}{4}=\frac{900000}{4}\right)$

$= 225000 = 82,25,000$ बिल अति उष्ण वेदना वाले हैं।

शीत वेदना वाले बिल = पाँचवीं पृथ्वी के शेष एक बटे चार भाग से सातवीं पृथ्वी तक

अर्थात् $\left(3,00,000\times\frac{1}{4}\right)=75,000+99995+5=1,75,000$ बिल अति शीत वेदना वाले हैं।

इन पृथ्वियों में तीन प्रकार के बिल होते हैं – (1) इन्द्रक, (2) श्रेणीबद्ध, (3) प्रकीर्णक।

सर्वप्रथम इन्द्रक बिलों की संख्या बताते हैं – प्रथम पृथ्वी में सर्व इन्द्रक बिल 13 हैं। शेष छह पृथ्वियों में क्रमश: दो–दो हीन होते गये हैं अर्थात् 11, 9, 7, 5, 3, 1 बिल। इस प्रकार सर्वइन्द्रक बिल = 13 + 11 + 9 + 7 + 5 + 3 + 1 = 49 है। एक–एक पटल में एक–एक इन्द्रक बिल है, अत: पटल भी 49 ही है।

श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या बताते हैं – प्रथम पृथ्वी के प्रथम इन्द्रक बिल की एक–एक दिशा में 49–49 और विदिशा में 48–48 श्रेणीबद्ध बिल है। शेष द्वितीयादि पटल से सप्तम पृथ्वी के अन्तिम पटल तक एक–एक दिशा व विदिशा में क्रमश: एक–एक घटते हुए श्रेणीबद्ध बिल है, अत: सप्तम पृथ्वी के पटल की दिशाओं में तो एक–एक श्रेणीबद्ध बिल है किन्तु विदिशाओं में अभाव है।

प्रत्येक पटल के कुल श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या निकालने के लिए आगे कहते हैं–

$$\frac{\text{भूमि} + \text{मुख}}{2} \times \text{पद}$$

प्रथम पृथ्वी के कुल श्रेणीबद्ध बिल–

❋ प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशा–विदिशा के श्रेणीबद्ध बिलों को जोड़कर 4 से गुणा करने पर भूमि प्राप्त होती है। अत: 49 + 48 = 97 × 4 = 388 भूमि

❋ इसी प्रथम पृथ्वी के अन्तिम 13वें पटल में एक–एक बिल घटते–घटते 37 बिल दिशा के व 36 विदिशा के श्रेणीबद्ध बिलों को जोड़कर 4 से गुणा करने पर मुख प्राप्त होता है।

अत: 37 + 36 = 73 × 4 = 292 मुख

❋ पद = 13

प्रथम पृथ्वी के कुल श्रेणीबद्ध बिल $= \dfrac{\text{भूमि} + \text{मुख}}{2} \times \text{पद}$

$$\frac{388+292}{2} \times 13$$

$$\frac{680}{2} \times 13 = 340 \times 13 = 4420$$ प्रथम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल हैं।

अब आगे भूमि, चय और पद कैसे प्राप्त करें–

प्रथम पृथ्वी के मुख भूमि में से चय का संकलित धन घटा देने पर दूसरी पृथ्वी भूमि प्राप्त होती है। द्वितीय पृथ्वी में पद या स्थान =11 किंतु एक में चय नहीं घटता। एक दिशा में चार व एक विदिशा में चार क्रमश: चार–चार कम हुए अत: 4+4 =8 कम हुए अत: चय का प्रमाण 8 हुआ। इसी प्रकार आगे भी क्रम क्रम से प्राप्त करना चाहिए।

द्वितीय पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल –

प्रथम पृथ्वी का मुख – चय = द्वितीय पृथ्वी की भूमि

292 – 8 = 284 द्वितीय पृथ्वी की भूमि

पद = 11, चय का प्रमाण = 8

द्वितीय पृथ्वी का मुख = भूमि − (पद−1) चय

$= 284 - (11-1) \times 8$

$= 284 - 10 \times 8$

$= 284 - 80 = 204$ द्वितीय पृथ्वी का मुख

द्वितीय पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल= $\dfrac{\text{भूमि + मुख}}{2} \times \text{पद}$

$$\frac{284+204}{2} \times 11$$

$\dfrac{488}{2} \times 11 = 244 \times 11 = 2684$ द्वितीय पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल

तीसरी पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल−

दूसरी पृथ्वी का मुख − चय = तृतीय पृथ्वी की भूमि

$204 - 8 = 196$ तृतीय पृथ्वी की भूमि

तीसरी पृथ्वी का मुख = भूमि − (पद−1) × चय

$= 196 - (9-1) \times 8$

$= 196 - 8 \times 8 = 196 - 64 = 132$ मुख

तृतीय पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल= $\dfrac{\text{भूमि + मुख}}{2} \times \text{पद}$

$\dfrac{196+132}{2} \times 9 = \dfrac{328}{2} \times 9 = 164 \times 9 = 1476$ तीसरी पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल

चतुर्थ पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल −

तीसरी पृथ्वी का मुख−चय= चतुर्थ पृथ्वी की भूमि, $132-8 = 124$ भूमि

चतुर्थ पृथ्वी का मुख = भूमि − (पद−1) चय

$= 124 - (7-1) \times 8$

$= 124 - 6 \times 8 = 124 - 48 = 76$ मुख

चतुर्थ पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल= $\dfrac{\text{भूमि + मुख}}{2} \times \text{पद}$

$\dfrac{124+76}{2} \times 7 = \dfrac{200}{2} \times 7 = 100 \times 7 = 700$ चतुर्थ पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल

पंचम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल –

चतुर्थ पृथ्वी का मुख–चय= पंचम पृथ्वी की भूमि 76–8 = 68 भूमि

पंचम पृथ्वी का मुख = भूमि - (पद–1) चय

= 68 – (5–1) × 8

= 68 – 4 × 8 = 68 – 32 = 36 मुख

पंचम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल= $\frac{\text{भूमि + मुख}}{2}$ **x पद**

$\frac{68 + 36}{2}$ x 5 = $\frac{104}{2}$ x 5 = 52x5=260 पंचम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल

षष्ठम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल –

पंचम पृथ्वी का मुख–चय= षष्ठम पृथ्वी की भूमि 36–8 = 28 भूमि

षष्ठम् पृथ्वी का मुख = भूमि – (पद–1) चय

= 28 – (3–1) × 8

= 28 – 2 × 8 = 28 – 16 = 12 मुख

षष्ठम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल= $\frac{\text{भूमि + मुख}}{2}$ **x पद**

$\frac{28 + 12}{2}$ x 3 = $\frac{40}{2}$ x 3 = 20x3=60 षष्ठम् पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल

सप्तम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिल –

सप्तम पृथ्वी में प्रत्येक दिशा में एक–एक श्रेणीबद्ध बिल है, विदिशाओं में अभाव है।

अत: सप्तम पृथ्वी के कुल 4 श्रेणीबद्ध हैं।

अब प्रत्येक पृथ्वी में प्रकीर्णक बिल बताते हैं – सर्वबिल – (श्रेणीबद्ध + इन्द्रक) = प्रकीर्णक

प्रथम पृथ्वी में	- 30,00000 –	(4420 + 13)	= 29,95,567 बिल
दूसरी पृथ्वी में	– 25,00000 –	(2684 + 11)	= 24,97,305 बिल
तीसरी पृथ्वी में	– 15,00000 –	(1476 + 9)	= 14,98,515 बिल
चतुर्थ पृथ्वी में	– 10,00000 –	(700 + 7)	= 9,99,293 बिल
पंचम पृथ्वी में	– 3,00,000 –	(260 + 5)	= 2,99,735 बिल
षष्ठम पृथ्वी में	– 99995 –	(60 + 3)	= 99932 बिल
सप्तम पृथ्वी में	– 5 –	(4 + 1)	= 0 बिल

कुल बिलों की संख्या=

इन्द्रक = 13+11+9+7+5+3+1=49

श्रेणी बद्ध = 4420+2684+1476+700+260+60+4=9604

प्रकीर्णक= 2995567+2497305+1498515+999293+299735+99932+0

= 8390347+9653=8400000

अब नरक के बिलों का विस्तार कहते हैं –

* श्रेणीबद्ध बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं।

* इन्द्रक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं।

* प्रकीर्णक बिल कुछ संख्यात योजन वाले तथा कुछ असंख्यात योजन वाले होते हैं।

* **प्रथम पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल हैं** = कुल 30,00,000 का 1/5 भाग

$= 30,00,000 \times \frac{1}{5}$ = 6,00,000 बिल

[इन्द्रक + प्रकीर्णक]

प्रथम पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल हैं = कुल 3,00,000 का 4/5 भाग

$= 30,00,000 \times \frac{4}{5}$ = 24,00,000 बिल

[श्रेणीबद्ध+प्रकीर्णक]

इन 6,00,000 में से 13 इन्द्रक बिल घटाने पर =6,00,000–13=5,99,987 प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन वाले

2400000 में से 4420 श्रेणीबद्ध बिल घटाने पर=24,00,000–4420=23,95,580 प्रकीर्णक बिल असंख्यात योजन वाले

दूसरी पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल है – = कुल 25,00,000 का 1/5 भाग

$= 25,00,000 \times \frac{1}{5}$ = 5,00,000 बिल [इन्द्रक + प्रकीर्णक]

दूसरी पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल है – कुल 25,00,000 का 4/5 भाग

$= 25,00,000 \times \frac{4}{5}$ = 20,00,000 बिल [श्रेणीबद्ध + प्रकीर्णक बिल]

इन 5,00,000 में से 11 इन्द्रक बिल घटाने पर = 5,00,000 – 11 = 4,99,989 संख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

20,00,000 में से 2684 श्रेणीबद्ध बिल घटाने पर 20,00,000 – 2684 = 19,97,316 असंख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल हैं।

* **तीसरी पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल हैं** = 15,00,000 का 1/5 भाग

$= 15,00,000 \times \frac{1}{5}$ = 3,00,000 बिल [इन्द्रक + प्रकीर्णक]

इन 3,00,000 में से 9 इन्द्रक बिल घटाने पर 3,00,000 – 9 = 2,99,991 संख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

तीसरी पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल हैं = 15,00,000 × 4/5 भाग

$=15,00,000 \times \frac{4}{5}$ = 12,00,000 बिल [श्रेणीबद्ध + प्रकीर्णक]

12,00,000 में से 1476 श्रेणीबद्ध बिल घटाने पर 12,00,000 – 1476 = 11,98,524 असंख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल हैं

चौथी पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल हैं = 10,00,000 का 1/5 भाग

$= 10,00,000 \times \frac{1}{5}$ = 2,00,000 बिल [इन्द्रक + प्रकीर्णक]

2,00,000 बिल में से 7 इन्द्रक बिल घटाने पर = 2,00,000 – 7 = 1,99,993 संख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

चौथी पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल हैं – 10,00,000 का 4/5 वां भाग

$=10,00,000 \times \frac{4}{5}$ = 8,00,000 बिल [श्रेणीबद्ध + प्रकीर्णक]

8,00,000 बिल में से 700 श्रेणीबद्ध बिल घटाने पर 8,00,000 – 700 = 7,99,300 असंख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल है।

*** पंचम पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल हैं** – 3,00,000 का 1/5 भाग

$= 3,00,000 \times \frac{1}{5}$ = 60,000 बिल [इन्द्रक + प्रकीर्णक]

60,000 बिल में से 5 इन्द्रक बिल घटाने पर = 60,000 – 5 = 59,995 संख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

पंचम पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल हैं – 3,00,000 का 4/5 भाग

$3,00,000 \times \frac{4}{5} = \frac{1200000}{5}$ = 2,40,000 बिल [श्रेणीबद्ध + प्रकीर्णक]

2,40,000 बिल में से 260 श्रेणीबद्ध बिल घटाने पर = 2,40,000 –260 = 2,39,740 असंख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

***षष्ठम पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल हैं** = 99995 का 1/5 भाग

$= 9,9995 \times \frac{1}{5}$ = 19999 बिल [इन्द्रक + प्रकीर्णक]

19,999 में से 3 इन्द्रक बिल घटाने पर = 19,999 – 3 = 19996 बिल संख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

षष्ठम पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल हैं = 99995 का 4/5 भाग

$$= 9,9995 \times \frac{4}{5} = 79,996$$ बिल [श्रेणीबद्ध + प्रकीर्णक]

79,996 में से 60 श्रेणीबद्ध बिल घटाने पर = 79,996 – 60 = 79,936 बिल असंख्यात योजन वाले प्रकीर्णक बिल

सप्तम पृथ्वी में संख्यात योजन वाले बिल हैं – 5 का 1/5 भाग

$$= 5 \times \frac{1}{5} = 1$$ बिल [इन्द्रक बिल]

सप्तम् पृथ्वी में असंख्यात योजन वाले बिल हैं – 5 का 4/5 भाग

$$= 5 \times \frac{4}{5} = 4$$ बिल [श्रेणीबद्ध बिल]

* सप्तम पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अभाव है।

इस प्रकार सातों पृथ्वियों के 49 इन्द्रक बिल, 16,79,951 प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन वाले होते हैं तथा 9604 श्रेणीबद्ध बिल, 67,10,396 प्रकीर्णक बिल असंख्यात योजन वाले होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण बिल [67,10,396 + 1679,951+9604+49] 84,00,000 प्रमाण है।

नोट–इस अध्याय में अधोलोक की पृथ्वियों के बिलों की संख्या के बारे में जाना अब आगे के अध्याय में इन्द्रक बिलों का विस्तार व सम्पूर्ण बिलों का बाहुल्य जानेंगे।

किस्मत हाथों की लकीर में नहीं होती क्योंकि किस्मत तो उनकी भी होती है जिनके हाथ नहीं होते। अत: सदैव ध्यान रखिए हाथों की लकीर से किस्मत नहीं बनती, किस्मत बनाने से हाथों की लकीर बदल जाती है।

अध्याय–17

इन्द्रक बिलों का विस्तार तथा सम्पूर्ण बिलों का बाहुल्य

इन्द्रक बिल संख्यात योजन कहे हैं परन्तु कितने संख्यात योजन होते हैं जानने के लिए आगे कहते हैं –

प्रथम सीमन्तक इन्द्रक बिल का विस्तार मनुष्य क्षेत्र प्रमाण अर्थात् 45,00,000 योजन प्रमाण वाला है और अन्तिम अवधिस्थान इन्द्रक बिल का विस्तार जम्बूद्वीप सदृश अर्थात् 1,00,000 योजन प्रमाण वाला है।

इन दोनों का शोधन करने पर [45,00,000-1,00,000] = 44,00,000 लाख शेष रहे, इनमें एक कम इन्द्रकों का [49-1=48] का भाग देने पर अर्थात् $=\frac{44,00,000}{48}=91666\frac{2}{3}$ योजन प्रत्येक इन्द्रक का हानि चय प्राप्त हुआ।

इस हानि चय को 45,00,000 में से घटा देने पर दूसरे निरय इन्द्रक का विस्तार $45,00,000 - 91666\frac{2}{3}=\frac{45,00,000}{1}-\frac{275000}{3}$

$$\frac{13500000-275000}{3}=\frac{13225000}{3}=4408333\frac{1}{3}$$ योजन प्रमाण प्राप्त होता है।

अथवा दूसरी विधि से 4500000-91666=4408334-1= क्योंकि एक ग्रहण करने पर योजन का दो तिहाई कम करना और एक तिहाई बच जायेगा। इस प्रकार द्वितीय इन्द्रक का विस्तार प्राप्त हुआ। पुनः तृतीय इन्द्रक $=4408333\frac{1}{3}-91666\frac{2}{3}=43166671\frac{1}{3}-1$ क्योंकि दो तिहाई कम करने अतः एक योजन के तीन भाग करने पर $\frac{3}{1}-\frac{2}{3}=\frac{1}{3}$ शेष रहे $4316666\frac{1}{3}+\frac{1}{3}=$ जो पहले का एक अंश शेष था उसे भी जोड़ देने पर अतः $4316666\frac{2}{3}$ तृतीय इन्द्रक का विस्तार है चतुर्थ इन्द्रक का विस्तार $=4316666\frac{2}{3}-91666\frac{2}{3}=4225000\frac{2}{3}-\frac{2}{3}=00$ अतः 4225000 चतुर्थ इन्द्रक का विस्तार है अब पंचम इन्द्रका का विस्तार = पंचम इन्द्रक $4225000-91666\frac{2}{3}=4133334-1$ एक योजन के तीन भाग करके दो भाग कम करने पर $\frac{3}{3}-\frac{2}{3}=\frac{1}{3}$ अतः $4133333\frac{1}{3}$

इसी प्रकार उत्तरोत्तर हानि चय घटाते–घटाते सप्तम् पृथ्वी का अन्तिम इन्द्रक बिल का विस्तार 1,00,000 योजन प्राप्त होता है।

शेष बिलों का विस्तार चार्ट से जान लेना चाहिए। चार्ट अगले पृष्ठ पर है।

सम्पूर्ण इन्द्रक बिलों का विस्तार

	प्रथम पृथ्वी इन्द्रक	संख्या विस्तार योजन	द्वितीय पृथ्वी इन्द्रक	संख्या विस्तार योजन	तृतीय पृथ्वी इन्द्रक	संख्या विस्तार योजन	चतुर्थ पृथ्वी इन्द्रक	संख्या विस्तार योजन	पंचम पृथ्वी इन्द्रक	संख्या विस्तार योजन	षष्ठम पृथ्वी इन्द्रक	संख्या विस्तार योजन	7. अवधि स्थान = 100000
1.	सीमन्तक	45,00,000 योजन	नरक	3308333 $\frac{1}{3}$ योजन	तप्त	2300000 योजन	आरा	1475000 योजन	तमक	833333 $\frac{1}{3}$ योजन	हिम	375000 योजन	
2.	निरय	4408333 $\frac{1}{3}$ योजन	स्तनक	3216666 $\frac{2}{3}$ योजन	तपित	2208333 $\frac{1}{3}$ योजन	मारा	1383333 $\frac{1}{3}$ योजन	भ्रमका	741666 $\frac{2}{3}$ योजन	आर्द्र	283333 $\frac{1}{3}$ योजन	
3.	रौरव	4316666 $\frac{2}{3}$ योजन	वनक	3125000 योजन	तपन	2116666 $\frac{2}{3}$ योजन	तारा	1291666 $\frac{2}{3}$ योजन	झषका	650000 योजन	लल्लक	191666 $\frac{2}{3}$ योजन	
4.	भ्रान्त	4225000 योजन	मनक	3033333 $\frac{1}{3}$ योजन	तापन	2025000 योजन	चर्चा	1200000 योजन	अधेन्द्रा	598333 $\frac{1}{3}$ योजन			
5.	उद्भ्रांत	4133333 $\frac{1}{3}$ योजन	खड़ा	2941666 $\frac{2}{3}$ योजन	निदाघ	1933333 $\frac{1}{3}$ योजन	तमकी	1108333 $\frac{1}{3}$ योजन	तिमि.	466666 $\frac{2}{3}$ योजन			
6.	संभ्रांत	4041666 $\frac{2}{3}$ योजन	खड़ि	2850000 योजन	उज्व.	1841666 $\frac{2}{3}$ योजन	घाटा	1016666 $\frac{2}{3}$ योजन					
7.	असं.	3950000 योजन	जिह्वा	2758333 $\frac{1}{3}$ योजन	प्रज्व.	1750000 योजन	घटा	925000 योजन					
8.	विभ्रांत	3858333 $\frac{1}{3}$ योजन	जिह्वक	2666666 $\frac{2}{3}$ योजन	संज्व	1658333 $\frac{1}{3}$ योजन							
9.	त्रस्त	3766666 $\frac{2}{3}$ योजन	लोकि.	2575000 योजन	संप्रज्व	1566666 $\frac{2}{3}$ योजन							
10.	त्रसित	3675000 योजन	लोलक	2483333 $\frac{1}{3}$ योजन									
11.	वक्रांत	3583333 $\frac{1}{3}$ योजन	स्तनलोला	2391666 $\frac{2}{3}$ योजन									
12.	अवक्रांत	3491666 $\frac{2}{3}$ योजन											
13.	विक्रांत	3400000 योजन											

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध व प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य

प्रत्येक पृथ्वियों के इन्द्रकादि बिलों का बाहुल्य (मोटाई) निकालने के लिए प्रथम पृथ्वी का आदि या मुख 6, 8 और 14 है। इसमें मुख का आधा [3, 4, 7] जोड़कर 6 का भाग देने से क्रमशः इन्द्रक, श्रेणीबद्ध व प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य प्राप्त हो जाता है। प्रथम पृथ्वी में मुख को आधा नहीं जोड़ना है। इसी में 6 का भाग देना है, शेष दूसरी से सातवीं पृथ्वी में मुख का आधा जोड़कर 6 का भाग देना है। जैसे – प्रथम पृथ्वी में मुख = 6, 8, 14 है। उनमें क्रमशः 6 का भाग देने पर $\frac{6}{6}=1$ कोस इन्द्रक बिलों का बाहुल्य, $\frac{8}{6}=\frac{4}{3}=1\frac{1}{3}$ कोस श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य, $\frac{14}{6}=\frac{7}{3}=2\frac{1}{3}$ कोस प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य है।

दूसरी पृथ्वी में 6, 8, 14 मुख है, इसमें इनका आधा 3, 4, 7 को जोड़कर 6 + 3 = 9, 8 + 4 = 12, 14 + 7 = 21 क्रमशः इनमें 6 का भाग देने पर $\frac{9}{6}=\frac{3}{2}=1\frac{1}{2}$ कोस इन्द्रक बिलों का बाहुल्य, $\frac{12}{6}=2$ कोस श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य, $\frac{21}{6}=\frac{7}{2}=3\frac{1}{2}$ कोस प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य है।

इसी प्रकार अन्य शेष पृथ्वियों में भी जानना चाहिए। इसके लिए अगले पेज पर से जान लेना चाहिए। यहाँ प्रत्येक पृथ्वियों में उत्तरोत्तर इन्द्रक बिलों का बाहुल्य ½-½ (आधा-आधा) कोस बढ़ रहा है, श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य $\frac{2}{3}-\frac{2}{3}$ कोस बढ़ रहा है। तथा प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य $\frac{7}{6}-\frac{7}{6}$ कोस बढ़ रहा है।

बिलों के बाहुल्य का चार्ट

	मुख का प्रमाण	अर्ध.मुख	योग	भाग हार	इन्द्रक बिल का बाहुल्य	श्रेणीबद्ध बिल का बाहुल्य	प्रकीर्णक बिल का बाहुल्य
1	6,8,14	000	6,8,14	6	1 कोस	$1\frac{1}{3}$ कोस	$2\frac{1}{3}$ कोस
2	6,8,14	3,4,7	9,12,21	6	$1\frac{1}{2}$ कोस	2 कोस	$3\frac{1}{2}$ कोस
3	9,12,21	3,4,7	12,16,28	6	2 कोस	$2\frac{2}{3}$ कोस	$4\frac{2}{3}$ कोस
4	12,16,28	3,4,7	15,20,35	6	$2\frac{1}{2}$ कोस	$3\frac{1}{3}$ कोस	$5\frac{5}{6}$ कोस
5	15,20,35	3,4,7	18,24,42	6	3 कोस	4 कोस	7 कोस
6	18,24,42	3,4,7	21,28,49	6	$3\frac{1}{2}$ कोस	$4\frac{2}{3}$ कोस	$8\frac{1}{6}$ कोस
7	21,28,48	3,4,7	24,32,54	6	4 कोस	$5\frac{1}{3}$	9 कोस

नोट– इस अध्याय में इन्द्रक बिलों का विस्तार व सम्पूर्ण बिलों के बाहुल्य (मोटाई) को जाना अब आगे के अध्याय में इन्द्रादिक बिलों व पटलों के अन्तराल को जानेंगे।

अध्याय-18

इन्द्रादिक बिलों का अन्तराल व पटलों का अन्तराल

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों के पृथक्-पृथक् बाहुल्य को विवक्षित पृथ्वी के पटलों की संख्या से गुणित कर प्रतर स्थित भूमि अर्थात् नीचे ऊपर की एक-एक हजार योजन भूमि छोड़कर जितनी भूमि में बिल स्थित है उसमें से विशोध्य अर्थात् घटाकर एक कम प्रतर प्रमाण से भाजित करने पर ऊँचाई में बिलों का अन्तराल प्राप्त होता है।

प्रथम पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल-

प्रथम पृथ्वी के इन्द्रक का बाहुल्य 1 कोस प्रमाण है, कोस को योजन में बदलना है अत: 4 कोस = 1 योजन तो 1 कोस $=\frac{1}{4}$ योजन

प्रतर स्थिति भूमि अर्थात् अब्बहुल भाग की मोटाई 80 हजार योजन है किन्तु ऊपर-नीचे एक-एक हजार योजन में बिल नहीं है अत: प्रतरस्थित भूमि मात्र 78 हजार योजन है।

इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\dfrac{\text{प्रतर भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{78000-\left[\frac{1}{4}\times 13\right]}{(13-1)} = \frac{78000-\frac{13}{4}}{12}$$

भिन्न में बदलकर लघुत्तम लेने पर

$$\frac{\frac{78000}{1}-\frac{13}{4}}{12} = \frac{\frac{312000-13}{4}}{12} = \frac{311987}{4}\times\frac{1}{12}$$

$$= \frac{311987}{48} = 6499\frac{35}{48} \text{ योजन}$$ या 6499.72 योजन से कुछ अधिक

अथवा $6499\frac{35}{48}\times 6000$ कि.मी.

अर्थात् प्रत्येक बिल $6499\frac{35}{48}$ योजन के अन्तराल में हैं यह बाहुल्य सहित अन्तराल है।

प्रथम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों का अंतराल-

प्रथम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य = $^4/_3$ कोस $= {}^4/_3\times\frac{1}{4} = \frac{4}{12}$ योजन

※ प्रतर स्थिति भूमि = उपरोक्त 78 हजार योजन, पटल = 13

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{78000-\left(\frac{4}{12}\times 13\right)}{(13-1)} = \frac{\frac{78000}{1}-\frac{52}{12}}{12} = \frac{\frac{936000-52}{12}}{12} = \frac{935948}{12}\times\frac{1}{12}$$

$\frac{233987}{3}\times\frac{1}{12} = \frac{233987}{36} = 6499\frac{23}{36}$ योजन अथवा 6499.63 योजन से कुछ अधिक

प्रथम पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = $^{7}/_{3}$ कोस = $^{7}/_{3}\times{}^{1}/_{4} = \frac{7}{12}$ योजन

प्रतरस्थित भूमि = उपरोक्त 78000 योजन, पटल = 13

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{78000-\left(\frac{7}{12}\times 13\right)}{(13-1)} = \frac{\frac{78000}{1}-\frac{91}{12}}{12} = \frac{\frac{936000-91}{12}}{12} = \frac{\frac{935909}{12}}{12}$$

$$\frac{935909}{12}\times\frac{1}{12} = \frac{935909}{144} = 6499\frac{53}{144} \text{ योजन}$$

द्वितीय पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल = बाहुल्य = $^{3}/_{2}$ कोस = $^{3}/_{2}\times\frac{1}{4} = \frac{3}{8}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = इस पृथ्वी की मोटाई 32000 योजन है। अत: 1000 ऊपर व 1000 नीचे के घटाने पर 32000 – 2000 = 30,000 योजन, पटल = 11

इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{30000-\left(\frac{3}{8}\times 11\right)}{(11-1)} = \frac{\frac{30000}{1}-\frac{33}{8}}{10} = \frac{\frac{240000-33}{8}}{10}$$

$$\frac{239967}{8}\times\frac{1}{10} = \frac{239967}{80} = 2999\frac{47}{80} \text{ योजन}$$

द्वितीय पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल = बाहुल्य = 2 कोस = $2 \times {}^1/_4 = \frac{2}{4} = \frac{1}{2}$ योजन यानि एक हजार कि.मी. उस इन्द्रक की मोटाई है।

प्रतर स्थित भूमि = 30,000 योजन, पटल = 11

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{30000 - \left(\frac{2}{4} \times 11\right)}{11-1} = \frac{\frac{30000}{1} - \frac{22}{4}}{10} = \frac{\frac{12000-22}{4}}{10}$$

$$\frac{119978}{4} \times \frac{1}{10} = \frac{119978}{40} = 2999\frac{9}{20}$$ योजन इतना नीचे जाकर द्वितीय पटल आता है।

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = ${}^7/_2$ कोस = $\frac{7}{2} \times \frac{1}{4} = \frac{7}{8}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 30,000 योजन, पटल = 11

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{30000 - \left({}^7/_8 \times 11\right)}{11-1} = \frac{\frac{30000}{1} - \frac{77}{8}}{10} = \frac{\frac{240000-77}{8}}{10}$$

$$\frac{239923}{8} \times \frac{1}{10} = \frac{239923}{80} = 2999\frac{3}{80}$$ योजन

तीसरी पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = 2 कोस = $2 \times \frac{1}{4} = \frac{2}{4}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = इस पृथ्वी की मोटाई = 28000 योजन है। 1000 ऊपर व 1000 नीचे के घटाने पर 28000–2000= 26000 योजन, पटल=9

इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{26000 - \left({}^2/_4 \times 9\right)}{(9-1)} = \frac{\frac{26000}{1} - \frac{18}{4}}{8} = \frac{\frac{104000-18}{4}}{8}$$

$$\frac{103982}{4} \times \frac{1}{8} = \frac{103982}{32} = 3249\frac{7}{16}$$ योजन या 6498874 कोस, 19496625 कि.मी. नीचे जाने पर तृतीय पृथ्वी का एक इन्द्रक से दूसरा इन्द्रक बिल आता है।

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल – बाहुल्य $= \frac{8}{3}$ कोस $= \frac{8}{3} \times \frac{1}{4} = \frac{8}{12}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 26000 योजन, पटल = 9

श्रेणीबद्ध इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{26000 - \left(\frac{8}{12} \times 9\right)}{(9-1)} = \frac{\frac{26000}{1} - \frac{6}{1}}{8} = \frac{26000-6}{8} = \frac{25994}{8}$$

$$= 3249 \frac{1}{4} \text{ योजन}$$

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य $= \frac{14}{3}$ कोस $= \frac{14}{3} \times \frac{1}{4} = \frac{14}{12} = \frac{7}{6}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 26000 योजन, पटल = 9

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{26000 - \left(\frac{7}{6} \times 9\right)}{(9-1)} = \frac{\frac{26000}{1} - \frac{63}{6}}{8} = \frac{\frac{156000-63}{6}}{8}$$

$$\frac{155937}{6} \times \frac{1}{8} = \frac{155937}{48} = \frac{51979}{16} = 3248 \frac{11}{16} \text{ योजन}$$

चौथी पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य $= \frac{5}{2}$ कोस $= \frac{5}{2} \times \frac{1}{4} = \frac{5}{8}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = इस पृथ्वी की मोटाई = 24000 योजन है। 1000 नीचे व 1000 ऊपर के घटाने पर 24000−2000= 22000 योजन, पटल=7

इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{22000 - \left(\frac{5}{8} \times 7\right)}{(7-1)} = \frac{\frac{22000}{1} - \frac{35}{8}}{6} = \frac{\frac{176000-35}{8}}{6}$$

$$\frac{175965}{8} \times \frac{1}{6} = \frac{175965}{48} = 3665 \frac{15}{16} \text{ योजन}$$

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल – बाहुल्य $= \frac{10}{3}$ कोस $= \frac{10}{3} \times \frac{1}{4} = \frac{5}{6}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 22000 योजन, पटल = 7

श्रेणीबद्ध इन्द्रक बिलों का अन्तराल $= \frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{22000 - \left(\frac{5}{6} \times 7\right)}{(7-1)} = \frac{\frac{22000}{1} - \frac{35}{6}}{6} = \frac{\frac{132000-35}{6}}{6}$$

$$\frac{131965}{6} \times \frac{1}{6} = \frac{131965}{36} = 3665\frac{25}{36} \text{ योजन}$$

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य $= \frac{35}{6}$ कोस $= \frac{35}{6} \times \frac{1}{4} = \frac{35}{24}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 22,000 योजन, पटल = 7

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल $= \frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{22000 - \left(\frac{35}{24} \times 7\right)}{7-1} = \frac{\frac{22000}{1} - \frac{245}{24}}{6} = \frac{\frac{528000-245}{24}}{6}$$

$$\frac{527755}{24} \times \frac{1}{6} = \frac{527755}{144} = 3664\frac{139}{144} \text{ योजन}$$

पाँचवीं पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य =3 कोस $= 3 \times \frac{1}{4} = \frac{3}{4}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = इसकी मोटाई = 20000 योजन है। 1000 नीचे व 1000 ऊपर के घटाने पर 20000–2000= 18000 योजन, पटल=5

इन्द्रक बिलों का अन्तराल $= \frac{\text{प्रतर स्थित भूमि} - (\text{बाहुल्य} \times \text{पटल})}{(\text{पटल} - 1)}$

$$\frac{18000 - \left(\frac{3}{4} \times 5\right)}{(5-1)} = \frac{\frac{18000}{1} - \frac{15}{4}}{4} = \frac{\frac{72000-15}{4}}{4}$$

$$\frac{71985}{4} \times \frac{1}{4} = \frac{71985}{16} = 4499\frac{1}{16} \text{ योजन}$$

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = 4 कोस = $4\times\frac{1}{4}=1$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 18000 योजन, पटल = 5

श्रेणीबद्ध इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{18000-(1\times5)}{(5-1)}=\frac{18000-5}{4}=\frac{17995}{4}=4498\frac{3}{4}\text{ योजन}$$

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = 7 कोस = $7\times\frac{1}{4}=\frac{7}{4}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 18000 योजन, पटल = 5

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{18000-\left(\frac{7}{4}\times5\right)}{(5-1)}=\frac{\frac{18000}{1}-\frac{35}{4}}{4}=\frac{\frac{72000-35}{4}}{4}$$

$$\frac{71965}{4}\times\frac{1}{4}=\frac{71965}{16}=4497\frac{13}{16}\text{ योजन}$$

छठवीं पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = $\frac{7}{2}$ कोस = $\frac{7}{2}\times\frac{1}{4}=\frac{7}{8}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि इसकी मोटाई = 16000 योजन है। 1000 नीचे व 1000 ऊपर घटाने पर 16000–2000= 14000 योजन, पटल=3

इन्द्रक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{14000-\left(\frac{7}{8}\times3\right)}{(3-1)}=\frac{\frac{14000}{1}-\frac{21}{8}}{2}=\frac{\frac{112000-21}{8}}{2}$$

$$\frac{111979}{8}\times\frac{1}{2}=\frac{111979}{16}=6998\frac{11}{16}\text{ योजन}$$

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल– बाहुल्य = $\frac{14}{3}$ कोस = $\frac{14}{3}\times\frac{1}{4}=\frac{7}{6}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 14000 योजन, पटल = 3

श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{14000-\left(\frac{7}{6}\times3\right)}{(3-1)} = \frac{\frac{14000}{1}-\frac{21}{6}}{2} = \frac{\frac{84000-21}{6}}{2}$$

$$\frac{83979}{6}\times\frac{1}{2}=\frac{83979}{12}=6998\frac{1}{4} \text{ योजन}$$

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल – बाहुल्य = $\frac{17}{2}$ कोस = $\frac{17}{2}\times\frac{1}{4}=\frac{17}{8}$ योजन

प्रतर स्थित भूमि = 14000 योजन, पटल = 3

प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल = $\frac{\text{प्रतर स्थित भूमि}-(\text{बाहुल्य}\times\text{पटल})}{(\text{पटल}-1)}$

$$\frac{14000-\left(\frac{17}{8}\times3\right)}{3-1} = \frac{\frac{14000}{1}-\frac{51}{8}}{2} = \frac{\frac{112000-51}{8}}{2}$$

$$\frac{111949}{8}\times\frac{1}{2} = \frac{111949}{16} = 6996\frac{13}{16} \text{ योजन}$$

नोट- सप्तम पृथ्वी का अन्तराल नहीं निकलता है।

नोट- "यहाँ जो माप दिया जा रहा है वह योजनों में है यदि कोस में जानना है तो 2000 का, यदि मील में जानना है तो 3000 का और किलोमीटर में जानना है तो 6000 का गुणा करें क्योंकि एक महायोजन में 2000 कोस, 3000 मील., 6000 किलोमीटर होते हैं। लघु योजन में 4 कोस, 6 मील, 12 कि.मी. होते हैं।

"यहाँ जो कोस लिया गया है वह सामान्य नहीं है इसका माप महायोजन से अथवा प्रमाण योजन से होता है। प्रमाण योजन सामान्य योजन से 500 गुणा होता है 3x500 = 1500 कोस सामान्य कोस बनेगा। अत: उस बिल की मोटाई (बाहुल्य) 1500 कोस है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर लगा लेना चाहिए परन्तु इस बात का भी ध्यान रहे अकृत्रिम कुछ वस्तुओं का माप महायोजन (2000 कोस, 6000 कि.मी.) वाले योजन से होता है, कुछ का लघु योजन (4 कोस, 12 कि.मी.) से होता है वे वस्तुऐं कौन सी है इसका खुलासा भी करेंगे। हमने पिछले अध्यायों में जहाँ अंगुल आदि का कथन किया है वहाँ से जाने।

प्रथम पृथ्वी से नीचे–नीचे की पृथ्वियों के आदि अन्त पटलों का अन्तराल

※ प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल से द्वितीय पृथ्वी के प्रथम पटल के बीच का अन्तराल

प्रथम पृथ्वी की मोटाई 180,000 योजन और द्वितीय पृथ्वी की मोटाई 32000 योजन है। इन दोनों का योग (1,80,000 + 32000) = 2,12000 योजन है। इसमें से प्रथम पृथ्वी के 2000 व द्वितीय पृथ्वी के 1000 योजन कुल 3000 योजन कम करना चाहिए।

अत: 2,12000 – 3000 = 209000 योजन। क्योंकि चित्रा पृथ्वी की मोटाई एक हजार योजन है जो कि प्रथम पृथ्वी की मोटाई में सम्मिलित है किन्तु उसकी गणना ऊर्ध्वलोक की मोटाई में की गई है। और प्रत्येक पृथ्वी के ऊपर नीचे एक–एक हजार योजन में बिल नहीं है, इसलिए 3000 योजन कम किये। अब इनको एक राजू में से घटना चाहिए। (1 राजू – 209000 योजन) जो अवशेष रहे वही इनके बीच का अन्तराल है।

※ दूसरी पृथ्वी के अन्तिम पटल से तीसरी पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तराल –

मेघा पृथ्वी की मोटाई 28000 योजन है, वंशा पृथ्वी के नीचे का एक हजार योजन तथा मेघा पृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन अत: 28000 – 2000 = 26000 योजन। अब इनको एक राजू में से घटाने पर (1 राजू – 26000 योजन) जो अवशेष रहे वही इनके बीच का अन्तराल है।

※ तीसरी पृथ्वी के अन्तिम पटल से चतुर्थ पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तराल –

अञ्जना पृथ्वी की मोटाई 24000 योजन है, मेघा पृथ्वी के नीचे का 1000 योजन + अञ्जना पृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन 1000+1000 =2000 इसी प्रकार सभी पृथ्वियों में लगा लेना चाहिए। अत: 24000 – 2000 = 22000 योजन। इसको एक राजू में से घटाने पर [1 राजू – 22000 योजन] जो अवशेष रहे, वही इनके बीच का अन्तराल है।

※ चतुर्थ पृथ्वी के अन्तिम पटल से पंचम पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तराल –

अरिष्टा पृथ्वी की मोटाई 20000 योजन है, अत: 20,000 – 2000 = 18000 योजन। इसको एक राजू में से घटाने पर [1 राजू – 18000 योजन] जो अवशेष रहे, वही इनके बीच का अन्तराल है।

※ पंचम पृथ्वी के अन्तिम पटल से षष्ठम् पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तराल –

मघवा पृथ्वी की मोटाई 16000 योजन है, अत: 16000 – 2000 = 14000 योजन। इसको एक राजू में से घटाने पर [1 राजू – 14000 योजन] जो अवशेष रहे, वही इनके बीच का अन्तराल है।

※ षष्ठम् पृथ्वी के अन्तिम पटल से सप्तम् पृथ्वी के अवधि पटल का अन्तराल –

माघवी पृथ्वी की मोटाई 8000 योजन है, श्रेणीबद्धों का बाहुल्य $\frac{16}{3}$ कोश $\div 4 = \frac{16}{3} \times \frac{1}{4} = \frac{16}{12} = \frac{4}{3}$ योजन

सप्तम् पृथ्वी के पटल की उपरिम भूमि की मोटाई = सप्तम् पृथ्वी की मोटाई – श्रेणीबद्धों का बाहुल्य

$= \frac{8000}{1} - \frac{4}{3} = \frac{24000-4}{3} = \frac{23996}{3}$ योजन

छठवीं मघवा पृथ्वी के अन्तिम इसका आधा $\frac{23996}{3x2} = \frac{11998}{3}$ योजन

पटल के नीचे की मोटाई 1000 योजन है। सप्तम् पृथ्वी की उपरिम भूमि की मोटाई + छठवीं पृथ्वी के अन्तिम पटल के नीचे की मोटाई = $\frac{11998}{3} + \frac{1000}{1} = \frac{11998+3000}{3} = \frac{14998}{3}$ योजन

इन्हें सप्तम् पृथ्वी के बाहुल्य में से घटाने पर $\frac{8000}{1} - \frac{14998}{3} = \frac{24000-14998}{3} = \frac{9002}{3}$

अथवा 3000 $\frac{2}{3}$ योजन। इसको एक राजू में से घटाने पर [1 राजू - $\frac{9002}{3}$] जो अवशेष रहे वही इनके बीच का अन्तराल है।

यहाँ छटवीं पृथ्वी के अन्तिम पटल से सातवीं पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तर निकाला है तो सबसे पहले हमें यह जानना है कि छटवीं पृथ्वी के अन्त से सातवीं पृथ्वी के अन्त तक एक राजू होता है चूंकि छटवीं पृथ्वी के अन्तिम पटल से 1000 योजन नीचे जाने पर राजू की समाप्ति होती है और नवीन राजू प्रारंभ होता है अत:पहले एक हजार योजन अलग रख दें। पुन: आठ हजार योजन मोटी पृथ्वी है उसके 6 हजार योजन के दो भाग किये तो तीन हजार योजन नीचे और दो हजार योजन ऊपर छोड़कर पटल है अत: 2000+1000 जो छठवीं पृथ्वी का अलग रखा था अत: तीन हजार हुए पुन: जो बिल की मोटाई है उसे जोड़कर 8000 सप्तम् पृथ्वी की मोटाई में से घटाया है अवशेष जो रहा उसे राजू में से कम करके अन्तराल प्राप्त हुआ।

नोट–इस अध्याय में इन्द्रादिक बिलों व पटलों के अन्तराल को जाना अब आगे के अध्याय में सातों नरकों के पटलों में रहने वाले नारकीयों की आयु तथा उत्सेध अर्थात् शरीर की ऊँचाई के बारे में जानते हैं..

दुनिया में कोई इतना अमीर नहीं है
कि पुराना वक्त खरीद ले और इतना गरीब भी नहीं
कि बचे हुए वक्त वो अच्छा ना बना सके।

अध्याय-19

सातों नरक के पटलों की जघन्योत्कृष्ट आयु व उत्सेध

प्रथम पृथ्वी के सीमन्तक पटल की जघन्यायु 10,000 वर्ष है। उत्कृष्टायु - 90,000 वर्ष है। इससे आगे कही जाने वाली आयु उत्कृष्ट ही समझनी चाहिए। दूसरे निरय पटल की उत्कृष्टायु = 90 लाख वर्ष, रौरव तीसरे पटल की उत्कृष्टायु = असंख्यात पूर्व कोटि प्रमाण है। चतुर्थ भ्रान्त पटल की आयु सागर के दसवें भाग से प्रारम्भ करने पर शेष 10 पटलों का आदि का प्रमाण क्रमश: $\frac{1}{10}$, 1, 3, 7, 10, 17 और 22 सागर है। तथा अन्त का प्रमाण क्रमश: 1, 3, 7, 10, 17, 22 और 33 सागर है।

वृद्धि चय निकालने की विधि

यद्यपि प्रथम पृथ्वी में तीन पटलों की आयु कह चुके हैं चतुर्थ पटल की भी कह चुके अत: 13-4 =9 पटल प्राप्त हुए अत: द्वितीयादि पृथ्वियों में हानि चय निकालने के लिए पूर्व पूर्व की पृथ्वियों के अन्तिम पटल की उत्कृष्ट आयु को आदि एवं उत्तर पृथ्वियों के अन्तिम पटल की उत्कृष्ट आयु को अन्त ग्रहण किया है। इस प्रकार पटलों की संख्या प्रमाण हानि चय होता है अत: यहाँ पूर्व पटल सहित एक कम गच्छ का प्रमाण = 9, 11, 9, 7, 5, 3, 1 जबकि 9 पटलों पर $\frac{9}{10}$ सागर की हानि होती है तब एक पटल पर कितनी होगी ?

इस प्रकार सभी पटलों की राशि निकालने पर क्रमश: $\frac{1}{10}, \frac{2}{11}, \frac{4}{9}, \frac{3}{7}, \frac{7}{5}, \frac{5}{3}$ और $\frac{11}{3}$ हानि प्राप्त होती है। इन्हें पूर्व-पूर्व के पटलों की आयु में जोड़ने से आगे-आगे के पटलों की आयु प्राप्त होती है जैसे चतुर्थ भ्रांत पटल की उत्कृष्ट आयु $\frac{1}{10}$ सागर इसमें $\frac{1}{10}$ चय जोड़ने पर आगे की आयु निकल आयेगी। यथा $\frac{1}{10}+\frac{1}{10}=\frac{2}{10}$ सागर

वृद्धि चय निकालने का सूत्र -

$$\text{वृद्धि चय} = \frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$$

अत: हानि चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$ (यहाँ गच्छ यानी पटल 10 है। क्योंकि तीन पटलों की पहले कह चुके हैं अत: 13-3=10)

प्रथम पृथ्वी का हानि चय

$$= \frac{\frac{1}{1}-\frac{1}{10}}{10-1} = \frac{\frac{10-1}{10}}{9} = \frac{9}{10} \times \frac{1}{9} = \frac{9}{90} = \frac{1}{10} \text{ सागर}$$

पंचम उद्भ्रान्त पटल की आयु $= \frac{1}{10} + \frac{1}{10} = \frac{2}{10}$ सागर

षष्ठम् संभ्रान्त पटल की आयु $= \frac{2}{10} + \frac{1}{10} = \frac{3}{10}$ सागर

सप्तम् असंभ्रान्त पटल की आयु $= \frac{3}{10} + \frac{1}{10} = \frac{4}{10}$ सागर

अष्टम् विभ्रान्त पटल की आयु $= \frac{4}{10} + \frac{1}{10} = \frac{5}{10}$ सागर

नवम् त्रस्त पटल की आयु $= \frac{5}{10} + \frac{1}{10} = \frac{6}{10}$ सागर

दसम् त्रसित पटल की आयु $= \frac{6}{10} + \frac{1}{10} = \frac{7}{10}$ सागर

ग्यारहवें वक्रांत पटल की आयु $= \frac{7}{10} + \frac{1}{10} = \frac{8}{10}$ सागर

बारहवें अवक्रांत पटल की आयु $= \frac{8}{10} + \frac{1}{10} = \frac{9}{10}$ सागर

तेरहवें विक्रांत पटल की आयु $= \frac{9}{10} + \frac{1}{10} = \frac{10}{10}$ सागर अर्थात् 1 सागर

विशेषार्थ– नरकों के पटलों में आयु का विचार किया गयाहै प्रथम नरक के प्रथम पटल में जघन्य आयु दस हजार वर्ष उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्ष है। इसी प्रकार दूसरे पटल की जघन्य आयु नब्बे हजार वर्ष + एक समय उत्कृष्ट आयु नब्बे लाख वर्ष है। तृतीय पटल की जघन्य आयु 90 लाख वर्ष+एक समय उत्कृष्ट आयु असंख्यात कोटि पूर्व की है अर्थात् जो पूर्व पटल की उत्कृष्ट आयु है वही आगे के पटल की जघन्य आयु जाननी चाहिए।

दूसरी पृथ्वी का हानि चय = $\frac{\text{अन्त−आदि}}{\text{गच्छ−1}} = \frac{3-1}{12-1} = \frac{2}{11}$ (यहाँ प्रथम पृथ्वी के अंतिम पटल सहित गच्छ 12 है।)

प्रथम तनक इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = तेरहवें विक्रान्त पटल की आयु + हानि चय

$= \frac{1}{1} + \frac{2}{11} = \frac{11+2}{11} = \frac{13}{11}$ सागर

दूसरे स्तनक इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{13}{11} + \frac{2}{11} = \frac{15}{11}$ सागर

तीसरे वनक इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{15}{11} + \frac{2}{11} = \frac{17}{11}$ सागर

चौथे मनक इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{17}{11} + \frac{2}{11} = \frac{19}{11}$ सागर

पंचम खड़ा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{19}{11} + \frac{2}{11} = \frac{21}{11}$ सागर

षष्ठम खड़िका इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{21}{11} + \frac{2}{11} = \frac{23}{11}$ सागर अथवा $2\frac{1}{11}$ सागर

सप्तम जिह्वा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{23}{11} + \frac{2}{11} = \frac{25}{11}$ सागर अथवा $2\frac{3}{11}$ सागर

अष्टम् जिह्विक इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{25}{11} + \frac{2}{11} = \frac{27}{11}$ सागर

नवम् लौकिक इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{27}{11} + \frac{2}{11} = \frac{29}{11}$ सागर

दसम् लोलवत्स इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{29}{11} + \frac{2}{11} = \frac{31}{11}$ सागर

ग्यारहवें स्तनलोला इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{31}{11} + \frac{2}{11} = \frac{33}{11}$ सागर या 3 सागर

अब एक प्रश्न हमारा हो सकता है कि आने वाली उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर महापद्म उनका जीव जो पूर्व में राजा श्रेणिक था वर्तमान नारकी के रूप में है वह कहाँ हैं ? तो इसका उत्तर है वे प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल में हैं। यहाँ एक बात और जान लेना चाहिए जितनी आयु इन्द्रक बिल की है उतनी ही श्रेणीबद्ध प्रकीर्णकों की है उससे उसमें कोई भेद नहीं है। शेष विषय सरल है।

तीसरी पृथ्वी का हानि चय $= \frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1} = \frac{7-3}{10-1} = \frac{4}{9}$ **सागर**

(यहाँ दूसरी पृथ्वी के अंतिम पटल सहित गच्छ 10 है।)

प्रथम तप्त इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = ग्यारहवें पटल की आयु + हानि चय

$$\frac{3}{1} + \frac{4}{9} = \frac{27+4}{9} = \frac{31}{9}$$ सागर या $3\frac{4}{9}$ सागर

दूसरी तपित इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{31}{9} + \frac{4}{9} = \frac{35}{9}$ सागर या $3\frac{8}{9}$ सागर

तीसरी तपन इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{35}{9} + \frac{4}{9} = \frac{39}{9}$ सागर या $4\frac{3}{9}$ सागर

चौथी तापन इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{39}{9} + \frac{4}{9} = \frac{43}{9}$ सागर या $4\frac{7}{9}$ सागर

पंचम् निदाघ इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{43}{9} + \frac{4}{9} = \frac{47}{9}$ सागर या $5\frac{2}{9}$ सागर

षष्ठम उज्वलित इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = $= \frac{47}{9} + \frac{4}{9} = \frac{51}{9}$ सागर या $5\frac{6}{9}$ सागर

सप्तम् प्रज्वलित इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = $= \frac{51}{9} + \frac{4}{9} = \frac{55}{9}$ सागर या $6\frac{1}{9}$ सागर

अष्टम् संज्वलित इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{55}{9} + \frac{4}{9} = \frac{59}{9}$ सागर या $6\frac{5}{9}$ सागर

नवम् संप्रज्वलित इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{59}{9} + \frac{4}{9} = \frac{63}{9}$ सागर अर्थात् 7 सागर

चतुर्थ पृथ्वी का हानि चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1} = \frac{10-7}{8-1} = \frac{3}{7}$ **सागर**

प्रथम आरा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = नवम् पटल की आयु + हानि चय

$$\frac{7}{1} + \frac{3}{7} = \frac{49+3}{7} = \frac{52}{7} \text{ सागर या } 7\frac{3}{7} \text{ सागर}$$

दूसरे मारा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{52}{7} + \frac{3}{7} = \frac{55}{7}$ सागर या $7\frac{6}{7}$ सागर

तीसरे तारा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{55}{7} + \frac{3}{7} = \frac{58}{7}$ सागर या $8\frac{2}{7}$ सागर

चौथे चर्चा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{58}{7} + \frac{3}{7} = \frac{61}{7}$ सागर या $8\frac{5}{7}$ सागर

पंचम तमकी इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{61}{7} + \frac{3}{7} = \frac{64}{7}$ सागर या $9\frac{1}{7}$ सागर

षष्ठम् घाटा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{64}{7} + \frac{3}{7} = \frac{67}{7}$ सागर या $9\frac{4}{7}$ सागर

सप्तम् घटा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{67}{7} + \frac{3}{7} = \frac{70}{7}$ सागर अथवा 10 सागर

पंचम पृथ्वी का हानि चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1} = \frac{17-10}{6-1} = \frac{7}{5}$ **सागर**

प्रथम तमका इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = सप्तम पटल की आयु + हानि चय

$$\frac{10}{1} + \frac{7}{5} = \frac{50+7}{5} = \frac{57}{5} \text{ सागर या } 11\frac{2}{5} \text{ सागर}$$

दूसरे भ्रमका इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{57}{5} + \frac{7}{5} = \frac{64}{5}$ सागर या $12\frac{4}{5}$ सागर

तीसरे झषका इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{64}{5} + \frac{7}{5} = \frac{71}{5}$ सागर या $14\frac{1}{5}$ सागर

चौथे अन्ध्रेन्दा इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{71}{5} + \frac{7}{5} = \frac{78}{5}$ सागर या $15\frac{3}{5}$ सागर

पंचम तिमिश्रका इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{78}{5} + \frac{7}{5} = \frac{85}{5}$ सागर अथवा 17 सागर

षष्टम् पृथ्वी का हानि चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1} = \frac{22-17}{4-1} = \frac{5}{3}$ **सागर**

प्रथम हिम इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु = पंचम पटल की आयु + हानि जय

$$\frac{17}{1} + \frac{5}{3} = \frac{51+5}{3} = \frac{56}{3} \text{ सागर या } 18\frac{2}{3} \text{ सागर}$$

दूसरे वार्डलि की उत्कृष्ट आयु $= \frac{56}{3} + \frac{5}{3} = \frac{61}{3}$ सागर या $20\frac{1}{3}$ सागर

तीसरे लल्लकि इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु $= \frac{61}{3} + \frac{5}{3} = \frac{66}{3} = 22$ सागर

सप्तम् पृथ्वी का हानि चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1} = \frac{33-22}{2-1} = 11$ **सागर**

अवधिस्थान नामक अन्तिम पटल की उत्कृष्ट आयु = तीसरे पटल की आयु + हानि चय

$$22 + 11 = 33 \text{ सागर}$$

ऊपर-ऊपर की उत्कृष्टायु ही एक समय अधिक करने पर नीचे-नीचे के पटलों की जघन्यायु हो जाती है।

नरक के प्रत्येक पटल के नारकियों के शरीर का उत्सेध

प्रथम पृथ्वी के पटलों का उत्सेध निकालने के लिए हानि चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$

प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल के नारकियों का उत्सेध = 7 धनुष, 3 हाथ, 6 अंगुल

प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल के नारकियों का उत्सेध = 3 हाथ

गच्छ = 13

$$\frac{7 \text{ ध., } 3 \text{ हा., } 6 \text{ अं.} - 3 \text{ हा.}}{13-1} = \frac{7 \text{ ध., } 6 \text{ अं.}}{12}$$

धनुष हाथ में बदला [7 × 4] = 28 हाथ, इसको अंगुल में बदला [28 × 24] = 672 अंगुल

672 + 6 = $\frac{678 \text{ अंगुल}}{12}$ 56.5 अंगुल पुनः इसके हाथ बनाये $\frac{56.5}{24}$ = 2 हाथ 8 $\frac{1}{2}$ अंगुल

प्रथम पटल का उत्सेध = 3 हाथ

दूसरे पटल का उत्सेध = 3 हाथ + चय

= 3 हाथ + 2 हाथ 8½ अंगुल = 5 हाथ 8½ अंगुल

अथवा 1 धनुष 1 हाथ 8½ अंगुल।

तीसरे पटल का उत्सेध = 5 हाथ 8½ अंगुल + चय

= 5 हाथ 8½ अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल = 7 हाथ 17 अंगुल

अथवा 1 धनुष 3 हाथ 17 अंगुल।

चौथे पटल का उत्सेध = 7 हाथ 17 अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल।

= 9 हाथ 25½ अंगुल अथवा 2 धनुष 2 हाथ 1½ अंगुल।

पाँचवें पटल का उत्सेध = 9 हाथ 25½ अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

= 11 हाथ 34 अंगुल अथवा 3 धनुष 10 अंगुल।

छठवें पटल का उत्सेध = 11 हाथ 34 अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

13 हाथ 42½ अंगुल अथवा 3 धनुष 2 हाथ 18½ अंगुल।

सातवें पटल का उत्सेध = 13 हाथ 42½ अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

15 हाथ 51 अंगुल अथवा 4 धनुष 1 हाथ 3अंगुल।

आठवें पटल का उत्सेध = 15 हाथ 51 अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

17 हाथ 59½ अंगुल अथवा 4 धनुष 3 हाथ 11½ अंगुल।

नवमें पटल का उत्सेध = 17 हाथ 59 ½ अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

= 19 हाथ 68 अंगुल अथवा 5 धनुष 1 हाथ 20 अंगुल।

दसवें पटल का उत्सेध = 19 हाथ 68 अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

21 हाथ 76½ अंगुल अथवा 5 धनुष 2 हाथ 4½ अंगुल।

ग्यारहवें पटल का उत्सेध = 21 हाथ 76½ अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

23 हाथ 85 अंगुल अथवा 6 धनुष 2 हाथ 13 अंगुल।

बारहवें पटल का उत्सेध = 23 हाथ 85 अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

25 हाथ 93½ अंगुल अथवा 6 धनुष 3 हाथ 21½ अंगुल।

तेरहवें पटल का उत्सेध = 25 हाथ 93½ अंगुल + 2 हाथ 8½ अंगुल

27 हाथ 102 अंगुल अथवा 7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल।

दूसरी पृथ्वी का चय = $\frac{\text{अन्त} - \text{आदि}}{\text{गच्छ} - 1}$

अन्त उत्सेध = पहली पृथ्वी के अंतिम पटल के उत्सेध से दुगुना अर्थात् 2 × [7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल] = 14 धनुष 6 हाथ 12 अंगुल अथवा 15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल।

आदि उत्सेध = पहली पृथ्वी के अन्तिम पटल का उत्सेध अर्थात् 7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल।

गच्छ = 12 पटल (1 पटल पहले का + 11 पटल)

अत: = $\frac{\text{15 ध., 2 हा., 12 अं.} - \text{7 ध., 3 हा. 6 अं.}}{12-1}$

$\frac{\text{7 ध., 3 हा., 6 अं.}}{11}$

धनुष को हाथ में बदला [7 × 4] 28 हाथ + 3 हाथ = 31 हाथ इसको अंगुल में बदला

[31 × 24] = 744 अंगुल + 6 अंगुल = $\frac{\text{750 अंगुल}}{11} = 68\frac{2}{11} =$ 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

प्रथम पटल का उत्सेध = 7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 5 हाथ $26\frac{2}{11}$ अंगुल अथवा 8 धनुष 2 हाथ $\left(2\frac{2}{11}\right)\frac{24}{11}$ अंगुल।

दूसरे पटल का उत्सेध = 7 धनुष 5 हाथ $26\frac{2}{11}$ अंगुल + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 7 हाथ $46\frac{4}{11}$ अंगुल अथवा 9 धनुष $22\frac{4}{11}$ अंगुल।

तीसरे पटल का उत्सेध = 7 धनुष 7 हाथ $46\frac{4}{11}$ अंगुल + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 9 हाथ $66\frac{6}{11}$ अंगुल अथवा 9 धनुष 3 हाथ $18\frac{6}{11}$ अंगुल।

चतुर्थ पटल का उत्सेध = 7 धनुष 9 हाथ $66\frac{6}{11}$ अंगुल + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 11 हाथ $86\frac{8}{11}$ अंगुल अथवा 10 धनुष 2 हाथ $14\frac{8}{11}$ अंगुल।

पंचम पटल का उत्सेध = 7 धनुष 11 हाथ $86\frac{8}{11}$ अंगुल + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 13 हाथ $106\frac{10}{11}$ अथवा 11 धनुष 1 हाथ $10\frac{10}{11}$ अंगुल।

छठवें पटल का उत्सेध = 7 धनुष 13 हाथ $106\frac{10}{11}$ + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 15 हाथ $126\frac{12}{11}$ अंगुल अथवा = 12 ध. $7\frac{1}{11}$ अंगुल।

सातवें पटल का उत्सेध = 7 धनुष 15 हाथ $126\frac{12}{11}$ + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 17 हाथ $146\frac{14}{11}$ अं. अर्थात् 12 ध. 3 हा. $3\frac{3}{11}$ अंगुल।

आठवें पटल का उत्सेध = 7 धनुष 17 हाथ $146\frac{14}{11}$ + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल।

7 ध. 19 हा. $166\frac{16}{11}$ अं. अर्थात् 13 ध. 1 हाथ $23\frac{5}{11}$ अं.।

नवमें पटल का उत्सेध = 7 धनुष 19 हाथ $166\frac{16}{11}$ + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 21 हाथ $186\frac{18}{11}$ अंगुल अर्थात् 14 धनुष $19\frac{7}{11}$ अंगुल।

दसवें पटल का उत्सेध = 7 धनुष 21 हाथ $186\frac{18}{11}$ + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 ध. 23 हाथ $206\frac{20}{11}$ अं. अर्थात् 14 धनुष 3 हाथ, $15\frac{9}{11}$ अंगुल।

ग्यारहवें पटल का उत्सेध = 7 धनुष 23 हाथ $206\frac{20}{11}$ + 2 हाथ $20\frac{2}{11}$ अंगुल

7 धनुष 25 हाथ $226\frac{22}{11}$ अं. अर्थात् 15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल।

तीसरी पृथ्वी का चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$

अन्त उत्सेध = दूसरी पृथ्वी के अंतिम पटल के उत्सेध से दुगुणा अर्थात्
2x [15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल]
= 30 धनुष 4 हाथ 24 अंगुल अर्थात् 31 धनुष 1 हाथ।

आदि उत्सेध = दूसरी पृथ्वी के अन्तिम पटल का उत्सेध = 15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल।

गच्छ = 10 [1 पटल पूर्व का + 9 पटल]

अतः $\frac{\text{30 ध., 4 हा., 24 अं. - 15 ध., 2 हा. 12 अं.}}{10-1}$

$\frac{\text{15 ध., 2 हा., 12 अं.}}{9}$ अर्थात् धनुष को हाथ में बदला [15 × 4] 60 हाथ + 2

62 हाथ को अंगुल में बदला [62 × 24] = 1488 + 12 अंगुल = $\frac{1500}{9}$ अंगुल

= $166\frac{6}{9}$ = 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

प्रथम पटल का उत्सेध = 15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल+1 धनु 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 16 धनुष 4 हाथ $34\frac{2}{3}$ अंगुल अर्थात् 17 धनुष 1 हाथ $10\frac{2}{3}$ अंगुल।

दूसरे पटल का उत्सेध = 16 धनुष 4 हाथ $34\frac{2}{3}$ अंगुल + 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 17 धनुष 6 हाथ $56\frac{4}{3}$ अंगुल अर्थात् 19 धनुष $9\frac{1}{3}$ अंगुल।

तीसरे पटल का उत्सेध = 17 धनुष 6 हाथ $56\frac{4}{3}$ + 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 18 धनुष 8 हाथ $78\frac{6}{3}$ अंगुल अर्थात् 20 धनुष 3 हाथ 8 अंगुल।

चौथे पटल का उत्सेध = 18 धनुष 8 हाथ $78\frac{6}{3}$ अंगुल + 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 19 धनुष 10 हाथ $100\frac{8}{3}$ अंगुल अर्थात् 22 धनुष 2 हाथ $6\frac{2}{3}$ अंगुल।

पाँचवें पटल का उत्सेध = 19 धनुष 10 हाथ $100\frac{8}{3}$ + 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 20 धनुष 12 हाथ $122\frac{10}{3}$ अर्थात् 24 धनुष 1 हाथ $5\frac{1}{3}$ अंगुल।

छठवें पटल का उत्सेध $= 20$ धनुष 12 हाथ $122\frac{10}{3}$ अंगुल + 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

$= 21$ धनुष 14 हाथ $144\frac{12}{3}$ अंगुल अर्थात् 26 धनुष 4 अंगुल।

सातवें पटल का उत्सेध = 21 धनुष 14 हाथ $144\frac{12}{3}$ + 1 धनुष 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

$= 22$ धनुष 16 हाथ $166\frac{14}{3}$ अर्थात् 27 धनुष 3 हाथ $2\frac{2}{3}$ अंगुल।

आठवें पटल का उत्सेध = 22 ध. 16 हाथ $166\frac{14}{3}$ अंगुल+1 ध. 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 23 ध. 18 हाथ $188\frac{28}{7}$ अंगुल अर्थात् 29ध. 2 हाथ $1\frac{1}{3}$ अंगुल

नौवें पटल का उत्सेध = 23 ध. 18 हाथ $188\frac{16}{3}$ अंगुल+1 ध. 2 हाथ $22\frac{2}{3}$ अंगुल

= 24 ध. 20 हाथ $210\frac{18}{3}$ अंगुल अर्थात् 31 ध. 1 हाथ

चतुर्थ पृथ्वी का चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$

अन्त उत्सेध=तीसरी पृथ्वी के अंतिम पटल के उत्सेध से दुगुणा अर्थात् 2x(31ध.1हा.)=62ध.2हाथ

आदि उत्सेध=तीसरी पृथ्वी के अंतिम पटल का उत्सेध = 31 ध. 1 हाथ

गच्छ = 8 पटल (एक पटल पूर्व का + 7 पटल)

अत: $\frac{62 \text{ ध. } 2 \text{ हाथ} - 31 \text{ ध. } 1 \text{ हाथ}}{8-1}$

$\frac{31 \text{ ध. } 1 \text{ हाथ}}{7}$ अर्थात् धनुष को हाथ में बदला (31x4) = 124 हाथ+1 हाथ=125 हाथ

अब हाथ को अंगुल में बदला (125x24)= $\frac{3000}{7}$ अंगुल

$428\frac{4}{7}$ =4 धनुष 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

प्रथम पटल का उत्सेध = 31 ध. 1 हाथ + 4 ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 35 ध. 2 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

द्वितीय पटल का उत्सेध = 35 ध. 2 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल+4ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 39ध. 3 हाथ $40\frac{8}{7}$ अंगुल अर्थात् 40 ध.$\frac{1}{7}$ अंगुल

तीसरे पटल का उत्सेध = 39 ध. 3 हाथ $40\frac{8}{7}$ अंगुल+4ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 43ध. 4 हाथ $60\frac{12}{7}$ अंगुल अर्थात् 44ध. 2 हाथ $13\frac{5}{7}$अंगुल

चौथे पटल का उत्सेध = 43 ध. 4 हाथ $60\frac{12}{7}$ अंगुल+4ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 47ध. 5 हाथ $80\frac{16}{7}$ अंगुल अर्थात् 49ध. $10\frac{2}{7}$ अंगुल

पाँचवें पटल का उत्सेध = 47 ध. 5 हाथ $80\frac{16}{7}$ अंगुल+4ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 51ध. 6 हाथ $100\frac{20}{7}$ अंगुल अर्थात् 53ध. 2 हाथ $6\frac{6}{7}$ अंगुल

छठवें पटल का उत्सेध = 51 ध. 6 हाथ $100\frac{20}{7}$ अंगुल+4ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 55ध. 7 हाथ $120\frac{24}{7}$अंगुल अर्थात् 58ध. $3\frac{3}{7}$ अंगुल

सातवें पटल का उत्सेध = 55 ध. 7 हाथ $120\frac{24}{7}$ अंगुल+4ध. 1 हाथ $20\frac{4}{7}$ अंगुल

= 59ध. 8 हाथ $140\frac{28}{7}$ अंगुल अर्थात् 62ध. 2 हाथ

पाँचवीं पृथ्वी का चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$

अन्त उत्सेध = चौथी पृथ्वी के अंतिम पटल के उत्सेध से दुगुना 2x(62ध. 2 हाथ)

= 124 धनुष 4 हाथ अर्थात् 125 धनुष

आदि उत्सेध = चतुर्थ पृथ्वी के अंतिम पटल का उत्सेध = 62 धनुष 2 हाथ

गच्छ = 6 (एक पटल पूर्वका + 5 पटल

अत: $\frac{124\text{ध. } 4 \text{ हाथ} - 62\text{ध. } 2 \text{ हाथ}}{6-1}$

$\frac{62\text{ध. } 2 \text{ हाथ}}{5}$ अर्थात् धनुष को हाथ में बदला (62x4) = 248 हाथ

+2 हाथ= 250 हाथ, अब हाथ को अंगुल में बदला (250x24) $=\frac{6000}{5}$ अंगुल

= 1200 अंगुल अर्थात् 12 ध. 2 हाथ

प्रथम पटल का उत्सेध = 62 ध. 2 हाथ + 12 ध. 2 हाथ

74 ध. 4 हाथ अर्थात् 75 धनुष

दूसरे पटल का उत्सेध = 74 ध. 4 हाथ + 12 ध. 2 हाथ

86 ध. 6 हाथ अर्थात् 87 ध. 2 हाथ

तीसरे पटल का उत्सेध = 86 ध. 6 हाथ + 12 ध. 2 हाथ
98 ध. 8 हाथ अर्थात् 100 धनुष

चौथे पटल का उत्सेध = 98 ध. 8 हाथ + 12 ध. 2 हाथ
110 ध. 10 हाथ अर्थात् 112 धनुष 2 हाथ

पाँचवें पटल का उत्सेध = 110 ध. 10 हाथ + 12 ध. 2 हाथ
122 ध. 12 हाथ अर्थात् 125 धनुष

छठवीं पृथ्वी का चय = $\frac{\text{अन्त}-\text{आदि}}{\text{गच्छ}-1}$

अन्त उत्सेध = पाँचवीं पृथ्वी के अंतिम पटल के उत्सेध से दुगुना 2x(125)= 250 धनुष

आदि उत्सेध = पाँचवीं पृथ्वी के अंतिम पटल का उत्सेध = 125 धनुष
गच्छ = 4 (एक पटल पूर्व का + 3 पटल)

अत: $\frac{250-125}{4-1} = \frac{125}{3}$ धनुष अर्थात् धनुष को हाथ में
बदला (125x4) = 500 हाथ, अब हाथ को अंगुल में बदला (500x24)= $\frac{12000}{3}$
4000 अंगुल अर्थात् 41ध. 2 हाथ 16 अंगुल

प्रथम पटल का उत्सेध = 125 ध. + 41 ध. 2 हाथ 16 अंगुल
166 ध. 2 हाथ 16 अंगुल

दूसरे पटल का उत्सेध = 166 ध. 2 हाथ 16 अंगुल + 41 ध. 2 हाथ 16 अंगुल
207 ध. 4 हाथ 32 अंगुल अर्थात् 208 ध. 1 हाथ 8 अंगुल

तीसरे पटल का उत्सेध = 207 ध. 4 हाथ 32 अंगुल + 41 ध. 2 हाथ 16 अंगुल
248 ध. 6 हाथ 48 अंगुल अर्थात् 250 धनुष ।

सातवीं पृथ्वी के अवधि स्थान नामक अन्तिम पटल के नारकियों का उत्सेध छठवीं पृथ्वी के अन्तिम पटल के उत्सेध से दुगुना है, अत: 250x2= 500 धनुष ।

ज्योतिर्लोक गणित

अध्याय–1

जम्बूद्वीप व लवण समुद्रादि द्वीप–समद्रों की परिधि, क्षेत्रफल, व्यास

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप व असंख्यात समुद्र होते हैं। सर्व समुद्र एक–एक द्वीप को वेष्टित किए हुए है। सर्वप्रथम जम्बूद्वीप को लवण समुद्र ने वेष्टित किया है, दूसरे धातकी खण्ड को कालोदक समुद्र ने, इसी प्रकार एक–एक समुद्र एक–एक द्वीप को घेरे हुए है। इन दो समुद्रों के अतिरिक्त अन्य समुद्रों के नाम द्वीपों के नाम सदृश ही है। सर्व द्वीप समुद्रों का प्रमाण ढाई उद्धार सागर के प्रमाण बराबर है। दस कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्य का एक उद्धार सागर होता है। ऐसे ढाई उद्धार सागर के जितने समय हैं, उतनी ही द्वीप–समुद्रों की संख्या का प्रमाण है। ये द्वीप–समुद्र एक दिशा की और आधे राजू में स्थिति है यदि दोनों दिशाओं को जोड़ा जाये अर्थात् स्वंभू रमण समुद्र का सूची व्यास एक राजू का होता है।

जम्बूद्वीप एक लाख योजन व्यास प्रमाण गोल है। इसको घेरे हुए लवण समुद्र है जो जम्बूद्वीप से दूना अर्थात् 2 लाख योजन व्यास वाला है। इसी प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र तक प्रत्येक द्वीप–समुद्र दुने–दुने विस्तार वाले हैं।

(1) इच्छित द्वीप व समुद्र का सूची व्यास एवं वलय व्यास निकालने के लिए करण सूत्र–

सूत्र –1 **(1) इच्छित द्वीप या समुद्र का वलय व्यास = $[2^{\text{गच्छ}-1} \times 1$ लाख$] - 0$**

(2) इच्छित द्वीप या समुद्र का सूची व्यास = $[2^{\text{गच्छ}+1} \times 1$ लाख$] - 3$ लाख

जिस द्वीप या समुद्र का व्यास निकालना है उसे ही गच्छ कहते हैं। यहाँ हम कालोदक समुद्र का व्यास निकालते हैं जो जम्बूद्वीप से चौथा है। अत: गच्छ = 4

कालोदक समुद्र का वलय व्यास $= [2^{\text{गच्छ}-1} \times 1$ लाख$] - 0$

$= [2^{4-1} \times 1$ लाख$]$

$= [2^{3} \times 1$ लाख$]$

$= 2 \times 2 \times 2 \times 1$ लाख

$= 8 \times 1$ लाख $= 8$ लाख

वलय व्यास 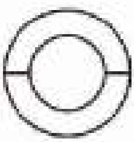

प्रश्न– वलय व्यास किसे कहते हैं ?

उत्तर–विवक्षित द्वीप या समुद्र के गोल क्षेत्र को वलय व्यास कहते है।

प्रश्न–सूची व्यास किसे कहते है ?

उत्तर–विवक्षित द्वीप या समुद्र की एक दिशा से दूसरी दिशा तक के क्षेत्र को सूची व्यास कहते हैं। जैसा कि चित्र द्वारा दर्शाया गया है।

कालोदक समुद्र का सूची व्यास $= [2^{[illegible]+1} \times 1$ लाख $] - 3$ लाख

$= [2^{4+1} \times 1$ लाख$] - 3$ लाख

$= [2^{5} \times 1$ लाख$] - 3$ लाख

$= [2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 1$ लाख$] - 3$ लाख

$= 32 \times 1$ लाख $- 3$ लाख

$= 32$ लाख $- 3$ लाख $= 29$ लाख

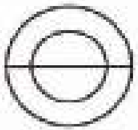

(2) लवण समुद्रादि द्वीप समुद्रों के अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सूची व्यास प्राप्त करने के लिए करण सूत्र–

लवण समुद्रादि द्वीप समुद्रों के वलय व्यास को 2, 3 और 4 से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से तीन-तीन लाख घटाने पर जो-जो अवशेष रहे वही क्रम से अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सूची के व्यास का प्रमाण होता है।

यहाँ 3 लाख कम करने का अर्थ है कि अर्ध व्यास अगले द्वीप समुद्र के वलय व्यास से 1½ लाख योजन कम होता है। अत: सूची व्यास 3 लाख कम हो जाता है।

जैसे–जम्बूद्वीप का अर्ध व्यास 50000 योजन है।

वही लवण समुद्र का वलय व्यास 2 लाख योजन है इसी प्रकार धातकीखण्ड का वलय व्यास 4 लाख योजन है जबकि अर्धव्यास 2½ लाख योजन जो कि 1½ लाख योजन कम है अत: सिद्ध है वलय व्यास से अर्धव्यास 1½ लाख योजन कम होता है इसलिए सूची व्यास में से 3 लाख योजन घटाया।

सूत्र – **(1) अभ्यन्तर सूची व्यास = (वलय व्यास X 2) – 3 लाख।**

(2) मध्यम सूची व्यास = (वलय व्यास X3) – 3 लाख।

(3) बाह्य सूची व्यास = (वलय व्यास X4) – 3 लाख

लवण समुद्र के अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य सूची व्यास का चित्रण

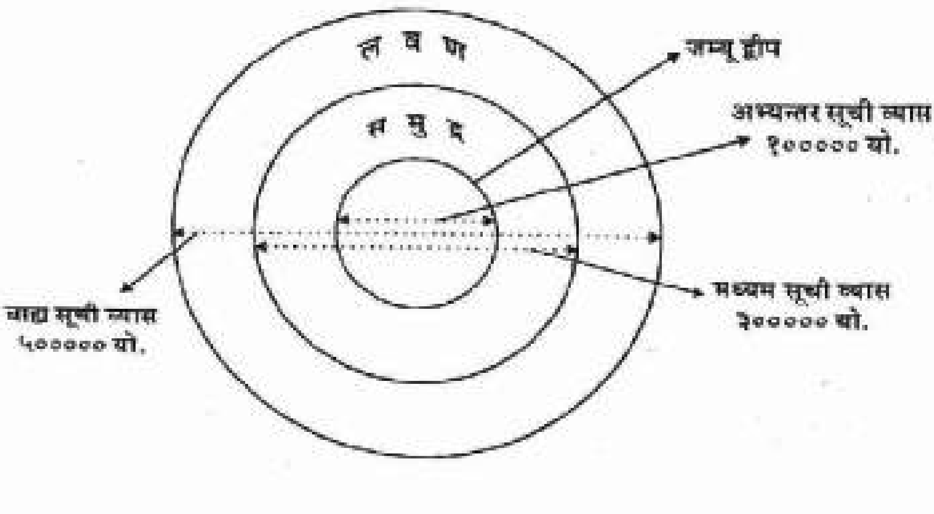

लवण समुद्र का अभ्यन्तर सूची व्यास = (वलय व्यास × 2) − 3 लाख

लवण समुद्र का वलय व्यास = $(2^{\text{[illegible]}-1} \times 1$ लाख$) - 0$

$= 2^{2-1} \times 1$ लाख

$= 2 \times 1$ लाख

= 2 लाख योजन

अभ्यंतर सूची व्यास = (वलय व्यास × 2) − 3 लाख

= (2 लाख × 2) − 3 लाख

= 4 लाख − 3 लाख

= 1 लाख योजन

मध्यम सूची व्यास = (वलय व्यास × 3) − 3 लाख

= (2 लाख × 3) − 3 लाख

= 6 लाख − 3 लाख

= 3 लाख योजन

बाह्य सूची व्यास = (वलय व्यास × 4) − 3 लाख

= (2 लाख × 4) − 3 लाख

= 8 लाख − 3 लाख

= 5 लाख योजन

अब नन्दीश्वर द्वीप का वलय व्यास, अभ्यन्तर सूची, मध्यम सूची, बाह्य सूची व्यास−

नन्दीश्वर द्वीप का वलय व्यास = $[2^{\text{[illegible]}-1} \times 1$ लाख$] - 0$

$= [2^{15-1} \times 1$ लाख$] - 0$

$= 2^{14} \times 100000$

$= 2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times2\times100000$

= 1638400000 योजन

नन्दीश्वर द्वीप का अभ्यन्तर सूची व्यास = [वलय व्यास × 2] − 3 लाख

= [1638400000× 2 लाख] − 3 लाख

= 3276500000 योजन

नन्दीश्वर द्वीप का मध्य सूची व्यास = [वलय व्यास × 3] – 3 लाख
= [1638400000× 3 लाख] – 3 लाख
= 4914900000 योजन

नन्दीश्वर द्वीप का बाह्य सूची व्यास = [वलय व्यास × 4] – 3 लाख
= [1638400000× 4 लाख] – 3 लाख
= 6553300000 योजन

नोट– इसी प्रकार किसी भी द्वीप अथवा समुद्र का अभ्यन्तर, मध्यम व बाह्य सूची व्यास प्राप्त कर सकते हैं।

यहाँ तक हमने द्वीप समुद्रों के वलय व्यास व सूची व्यास का निर्णय किया, उनके करण सूत्रों को जाना। अब उन्हीं द्वीप समुद्रों की परिधि के ज्ञात करने वाले करण सूत्रों को जानेंगे तथा बादर व सूक्ष्म क्षेत्रफल को भी जानते हैं।

(3) लवण–समुद्रादि द्वीप–समुद्रों की बादर व सूक्ष्म परिधि प्राप्त करने के लिए करण सूत्र–

बादर परिधि, व्यास की तिगुनी होती है। व्यास का वर्ग करके उसको 10 से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका वर्गमूल करने पर प्राप्त अंक को ही सूक्ष्म परिधि कहते हैं।

सूत्र – **(1) बादर परिधि = व्यास X 3**

(2) सूक्ष्म परिधि = $\sqrt{\text{व्यास}^2 \times 10}$

यहाँ जम्बूद्वीप का व्यास विवक्षित है अत: उसी की परिधि निकालते हैं –

जम्बूद्वीप का व्यास = 1 लाख योजन

जम्बूद्वीप की बादर परिधि = व्यास × 3
= 1 लाख × 3
= 3 लाख योजन

जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि = $\sqrt{\text{व्यास}^2 \times 10}$
= $\sqrt{1\ \text{लाख}^2 \times 10}$
= $\sqrt{10\ \text{अरब} \times 10}$
= $\sqrt{1\ \text{खरब वर्ग योजन}}$
= 316227 योजन तथा $\frac{484471}{632454}$ योजन शेष रहे।

कोस में बदलने के लिए 4 से गुणा किया – $\frac{484471}{632454} \times 4 = \frac{1937884}{632454} = 3$ कोस

तथा $\frac{40522}{632454}$ शेष रहे।

नोट–यह माप प्रमाण कोस में है अगर इसे व्यवहार कोस में लाना है तो प्रत्येक स्थान पर 500 का गुणा अवश्य करें।

धनुष में बदलने के लिए 2000 से गुणा किया – $\frac{40522}{632454}$ x 2000 = $\frac{81044000}{632454}$ = 128 धनुष तथा शेष रहे।

तथा $\frac{89888}{632454}$ शेष रहे।

हाथ में बदलने के लिए 4 से गुणा किया – $\frac{89888}{632454}$ x 4 = $\frac{359552}{632454}$ इसमें यहाँ भाग नहीं जाता है इसलिए अंगुल में बदलते हैं।

अंगुल में बदलने के लिए 24 से गुणा करते हैं – $\frac{359552}{632454}$ x 24 = $\frac{7629248}{632454}$

13 अंगुल तथा $\frac{407346}{632454}$ शेष रहे।

इसे 316227 से अपवर्तित करने पर साधिक ½ प्राप्त हुआ अर्थात् 13½ अंगुल।

अत: जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि = 316227 योजन, 3 कोश, 128 धनुष, साधिक 13½ अंगुल प्रमाण है।

नोट–इसी प्रकार किसी भी द्वीप–समुद्र की सूक्ष्म व बादर परिधि प्राप्त कर सकते हैं।

(4) लवण–समुद्रादि का बादर व सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए करण सूत्र

बादर परिधि को बाह्य सूची व्यास के चौथाई भाग से गुणित करने पर बादर क्षेत्रफल प्राप्त होता है और सूक्ष्म परिधि को बाह्य सूची व्यास के चौथाई भाग से गुणित करने पर सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

सूत्र – (1) बादर क्षेत्रफल = बादर परिधि × $\frac{\text{व्यास}}{4}$

(2) सूक्ष्म क्षेत्रफल = सूक्ष्म परिधि × $\frac{\text{व्यास}}{4}$

जम्बूद्वीप का बादर क्षेत्रफल = बादर परिधि × $\frac{\text{व्यास}}{4}$

= 3 लाख योजन × $\frac{\text{1 लाख योजन}}{4}$

= 300000 × $\frac{100000}{4}$

= 300000 × 25000

= 3,00,000 × 25000 = 7500000000 वर्ग योजन

जम्बूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल **= सूक्ष्म परिधि X $\frac{\text{व्यास}}{4}$**

(316227 योजन, 3 कोस, 128 धनुष, साधिक 13½ अंगुल) × 25000 योजन

316227 योजन × 25000 योजन = 7905675000 वर्ग योजन। 3 कोस × 25000 योजन = 75000 कोस ÷ 4 = 18750 योजन। 128 धनुष × 25000 योजन = 3200000 पुन: 3200000 ÷ 2000 = 1600 वर्ग कोस पुन: 1600 ÷ 4 = 400 योजन $13\frac{1}{2}$ अर्थात् $\frac{27}{2}$ x 25000

12500 × 27 = $\frac{337500}{4x8000x24}$ = $\frac{337500}{768000}$ = यो. × 4 = 1 कोस $\frac{582}{768}$ × 2000

= $\frac{1164000}{768}$ = 1515 धनुष $\frac{480}{768}$ × 4 = $\frac{1920}{768}$ = 2 हाथ $\frac{384}{768}$ × 24

= $\frac{9216}{768}$ = 12 अंगुल।

अत: जम्बूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल = (7905675000 + 18750 + 400 योजन) = 7905694150 वर्ग योजन, 1 वर्ग कोस, 1515 वर्ग धनुष, 2 वर्ग हाथ और 12 वर्ग अंगुल।

अथवा 7905694150 वर्ग योजन साधिक एक कोस।

नोट–इसी प्रकार किसी भी द्वीप–समुद्र का बादर व सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त कर सकते हैं।

(5) जम्बूद्वीप की परिधि का आधार करके विवक्षित द्वीप–समुद्र की स्थूल व सूक्ष्म परिधि निकालने के लिए करण सूत्र–

जम्बूद्वीप की स्थूल अथवा सूक्ष्म परिधि को विवक्षित द्वीप अथवा समुद्र के सूची व्यास से गुणित कर जम्बूद्वीप के व्यास का भाग देने पर विवक्षित द्वीप–समुद्र की स्थूल व सूक्ष्म परिधि प्राप्त होती है।

सूत्र – **(1) विवक्षित द्वीप या समुद्र की स्थूल परिधि =**

$$\frac{\text{जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि X विवक्षित द्वीप या समुद्र का सूची व्यास}}{\text{जम्बूद्वीप का व्यास}}$$

(2) विवक्षित द्वीप/समुद्र की सूक्ष्म परिधि =

$$\frac{\text{जम्बूद्वीप की सू.प. X विवक्षित द्वीप/समुद्र का सू. व्यास}}{\text{जम्बूद्वीप का व्यास}}$$

यहाँ जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि = व्यास × 3

= 1 लाख × 3 = 3 लाख योजन

विवक्षित द्वीप धातकीखण्ड का सूची व्यास $= [2^{\text{गच्छ}+1} \times 1 \text{ लाख}] - 3 \text{ लाख}$

$= [2^{3+1}\ 1 \text{ लाख}] - 3 \text{ लाख}$

$= [2^{4} \times 1 \text{ लाख}] - 3 \text{ लाख}$

$= [2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 1 \text{ लाख}] - 3 \text{ लाख}$

$= [16 \times 1 \text{ लाख}] - 3 \text{ लाख}$

= 16 लाख − 3 लाख

= 13 लाख योजन

जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि (पूर्वोक्त) = 316227 योजन, 3 कोस, 128 धनुष, 13½ अंगुल

जम्बूद्वीप का व्यास = 1 लाख योजन

$$\textbf{धातकीखण्ड की स्थूल परिधि} = \frac{\text{जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि} \times \text{धातकीखण्ड का सूची व्यास}}{\text{जम्बूद्वीप का व्यास}}$$

$$\frac{3 \text{ ला.यो.} \times 13 \text{ लाख}}{1 \text{ ला.यो.}} = \frac{39}{1 \text{ लाख यो.}} = 39 \text{ लाख योजन}$$

$$\textbf{धातकीखण्ड की सूक्ष्म परिधि} = \frac{\text{जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि} \times \text{धातकीखण्ड का सूची व्यास}}{\text{जम्बूद्वीप का व्यास}}$$

$$= \frac{316227 \text{ यो., } 3 \text{ कोस, } 128 \text{ धनुष, } 13\tfrac{1}{2} \text{ अंगुल} \times 13 \text{ लाख}}{1 \text{ लाख योजन}}$$

= 4110960 योजन 3 कोस 1665 धनुष 3 हाथ 7½ अंगुल।

नोट–इसी प्रकार किसी भी द्वीप–समुद्र की सूक्ष्म–बादर परिधि प्राप्त कर सकते हैं।

(6) वलयाकार क्षेत्र का बादर व सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालने के लिए करण सूत्र–

अन्त सूची और आदि सूची को जोड़कर अर्धरुन्द्र व्यास से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दो जगह स्थापित कर एक स्थान के प्रमाण को तिगुना करने से वलयाकार क्षेत्र के बादर क्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त होता है। तथा दूसरे स्थान के प्रमाण का वर्ग करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको दश से गुणित कर गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वह वलयाकार क्षेत्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण है।

सूत्र –(1) वलयाकार क्षेत्र का बादर क्षेत्रफल $= (\text{अन्तसूची} + \text{आदिसूची}) \times \frac{\text{रुन्द्र व्यास}}{2} \times 3$

(2) वलयाकार क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल $= \sqrt{\left[(\text{अन्तसूची} + \text{आदिसूची}) \times \frac{\text{रुन्द्र व्यास}}{2}\right]^2 \times 10}$

यहाँ लवण समुद्र की अन्तसूची अर्थात् बाह्य सूची व्यास = 5 लाख योजन

आदिसूची अर्थात् अभ्यन्तर सूची व्यास = 1 लाख योजन

रुन्द्रव्यास = 2 लाख योजन

लवण समुद्र का बादर क्षेत्रफल $= [\text{अन्तसूची} + \text{आदिसूची}] \times \frac{\text{रुन्द्र व्यास}}{2} \times 3$

$= [5 \text{ लाख योजन} + 1 \text{ लाख योजन}] \times \frac{2}{2} \times 3$

$= 6 \text{ लाख योजन} \times 1 \text{ लाख योजन} \times 3$

$= 18 \text{ लाख लाख योजन}$

लवण समुद्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल $= \sqrt{\left[(\text{अन्तसूची} + \text{आदिसूची}) \times \frac{\text{रुन्द्र व्यास}}{2}\right]^2 \times 10}$

$= \sqrt{\left[(5 \text{ ला.यो.} + 1\text{ला.यो.}) \times \frac{2}{2}\right]^2 \times 10}$

$= \sqrt{(6 \text{ ला.यो.} \times 1 \text{ ला.यो.})^2 \times 10}$

$= \sqrt{(6 \text{ ला.ला.यो.} \times 6 \text{ ला.ला.यो.} \times 10}$

$= \sqrt{(36 \text{ ला.ला.यो.})^2 \times 10}$

$= \sqrt{36 \text{ कोड़ा-कोड़ी करोड़}}$

$= 189736659610$ वर्ग योजन

अर्थात् 18 हजार 973 करोड़ 66 लाख, 59 हजार 610 वर्ग योजन।

अथवा 1 खरब 89 अरब 73 करोड़ 66 लाख 59 हजार 610 वर्ग योजन।

नोट– *इसी प्रकार किसी भी द्वीप–समुद्र का सूक्ष्म–बादर क्षेत्रफल प्राप्त कर सकते हैं।

*रून्द्र व्यास का वलय व्यास में शब्द भेद है अर्थ भेद नहीं है।

(7) लवण समुद्रादिकों के जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड लाने के लिए करण सूत्र

पहला तरीका – बाह्य सूची व्यास के वर्ग में से अभ्यन्तर सूची व्यास का वर्ग घटाने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें जम्बूद्वीप के व्यास के वर्ग का भाग देने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, वही लवण समुद्रादिकों के जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड प्राप्त होते हैं।

सूत्र – (1) विविक्षत समुद्र या द्वीप में जम्बूद्वीप प्रमाण खंडों की संख्या =

$$\frac{(\text{बाह्य सूची})^2 - (\text{अभ्यन्तर सूची})^2}{(\text{जम्बूद्वीप का व्यास})^2}$$

यहाँ लवण समुद्र की बाह्य सूची का प्रमाण = 5 लाख योजन

अभ्यन्तर सूची का प्रमाण = 1 लाख योजन

जम्बूद्वीप का व्यास = 1 लाख योजन

अतः लवण समुद्र के जम्बूद्वीप बराबर खण्ड $= \frac{(5)^2 - (1)^2}{(1)^2}$

$= \frac{25-1}{1} = \frac{24}{1} = 24$ खण्ड

दूसरा तरीका – एक कम शलाका के प्रमाण को 12 से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको शलाका प्रमाण से गुणित करने पर जम्बूद्वीप सदृश गोल खण्ड प्राप्त होते हैं।

सूत्र – विवक्षित समुद्र या द्वीप में जम्बूद्वीप प्रमाण खंडों की संख्या =

(शलाका – 1) x 12 x शलाका

विवक्षित द्वीप या समुद्र का वलय व्यास जितने लाख योजन होता है, उतना ही उसकी शलाकाओं का प्रमाण कहलाता है।

यहाँ लवण समुद्र का वलय व्यास 2 लाख योजन प्रमाण है। अतः लवणसमुद्र की 2 शलाकाएँ हुई।

अतः लवण समुद्र के जम्बूद्वीप बराबर खण्ड = (शलाका – 1) × 12 × शलाका

$= (2 - 1) \times 12 \times 2 = 1 \times 12 \times 2 = 24$ खण्ड

तीसरा तरीका – बाह्य सूची शलाका का वर्ग करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वही सम्पूर्ण खण्डों का प्रमाण होता है। अर्थात् (जम्बूद्वीप सहित लवण समुद्र तक)

सूत्र – जम्बूद्वीप प्रमाण संपूर्ण खण्डों की संख्या = (बाह्य सूची व्यास शलाका)^2

बाह्य सूची व्यास का प्रमाण जितने लाख होता है, उतना ही उसकी सूची शलाकाओं का प्रमाण होता है। अतः लवण समुद्र की बाह्य सूची व्यास 5 लाख योजन है तो शलाकाएँ भी 5 हुई।

अत: जम्बूद्वीप प्रमाण सम्पूर्ण खण्डों की संख्या = (बाह्य सूची व्यास शलाका)^2

= $(5)^2$

= $5 \times 5 = 25$ खण्ड।

जम्बूद्वीप से लवण समुद्र तक क्षेत्र के 25 खण्ड होते हैं। इनमें से एक खण्ड स्वरूप जम्बूद्वीप है, और 24 खण्ड लवण समुद्र के होते हैं।

चौथा तरीका – बाह्य सूची व्यास के प्रमाण में से वलय व्यास का प्रमाण घटाकर शेष प्रमाण को चौगुने वलय व्यास से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें एक लाख के वर्ग का भाग देने पर जम्बूद्वीप के प्रमाण बराबर गोल खण्डों का प्रमाण प्राप्त होता है।

सूत्र – विवक्षित द्वीप व समुद्र में जम्बूद्वीप खंडों की संख्या =

$$\frac{\text{(बाह्य सूची व्यास–वलय व्यास) x 4 x वलय व्यास}}{(100000)^2}$$

यहाँ लवण समुद्र विवक्षित है इसका बाह्य सूची व्यास = 5 लाख योजन

वलय व्यास = 2 लाख योजन

अत: लवण समुद्र में जम्बूद्वीप प्रमाण खंडों की संख्या $= \frac{(5 \text{ ला.} - 2 \text{ ला.}) \times 4 \times 2 \text{ ला.}}{(100000)^2}$

$$= \frac{3\text{ला.} \times 4 \times 2}{100000 \times 100000} = \frac{3 \times 4 \times 2 \text{ ला.ला.यो.}}{1 \text{ ला.ला.यो.}}$$

$3 \times 4 \times 2$ = 24 खण्ड

नोट– *इसी प्रकार किसी भी तरीके से विवक्षित द्वीप–समुद्रों में जम्बूद्वीप प्रमाण खण्डों की संख्या ज्ञात कर सकते हैं।

*यहाँ हमने द्वीप समुद्रों का क्षेत्रफल, परिधि, व्यास को जाना आगे उन द्वीप–समुद्रों में रहने वाले जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना को जानते हैं तथा उनका घनफल निकालते है।

शिक्षक और सड़क दोनों एक जैसे होते हैं
दोनो जहाँ है वहीं पर रहते हैं परन्तु दूसरों को
मंजिल तक पहुँचा देते हैं।

अध्याय–2

एकेन्द्रियादिक उत्कृष्ट अवगाहना वाले जीवों के शरीर का घनफल

एकेन्द्रिय आदिक उत्कृष्ट अवगाहना वाले जीवों के शरीर का घनफल निकालते हैं –

एकेन्द्रियों में कमल के शरीर की उत्कृष्ट लम्बाई=कुछ अधिक एक हजार योजन, **चौड़ाई** = 1 योजन

कमल नाल का व्यास = 1 योजन।

कमल नाल का घनफल = क्षेत्रफल × ऊँचाई

पहले कमल नाल की परिधि निकालते हैं = व्यास × 3

= 1 × 3 = 3 योजन

कमल नाल का क्षेत्रफल **= परिधि $\times\frac{\text{व्यास}}{4}$**

$= 3\times\frac{1}{4} = \frac{3}{4}$

अत: कमल नाल का घनफल = क्षेत्रफल × ऊँचाई$=\frac{3}{4}\times1000=\frac{3000}{4}=$ 750 घनयोजन

द्वीन्द्रियों में शंख की उत्कृष्ट लम्बाई **=** 12 योजन, **8 मुख व्यास** = 4 योजन,

ऊँचाई $=1\frac{1}{4}=\frac{5}{4}$ योजन

शंखावर्त क्षेत्र का क्षेत्रफल $=\left[\left(\text{आयाम}^2-\frac{\text{मुख व्यास}}{2}\right)+\frac{(\text{मुख व्यास})^2}{2}\right]2\times$ **ऊँचाई**

$=\left[\left(12^2-\frac{4}{2}\right)+\frac{(4)^2}{2}\right]\times2\times\frac{5}{4}$

$=[(144-2)+(2)^2]\times1\times\frac{5}{2}$

$=[(142+4)]\times\frac{5}{2}=146\times\frac{5}{2}$

= 73 ×5 = 365 घन योजन

त्रीन्द्रियों में ग्रैष्म – सहस्रपद्म का जीव (चींटी) की उत्कृष्ट लम्बाई $=\frac{3}{4}$ योजन

व्यास = लम्बाई का 8वाँ भाग अर्थात् $\frac{3}{4\times8}=\frac{3}{32}$ योजन

ऊँचाई = लम्बाई का 16वाँ भाग अर्थात् $\frac{3}{4x16} = \frac{3}{64}$ योजन

चींटी का घनफल = लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई

$= \frac{3}{4} \times \frac{3}{32} \times \frac{3}{64} \quad \frac{27}{8192}$ घन योजन

नोट–इन सभी अवगाहनाओं को विस्तार से जानने के लिए देखें त्रिलोकसार गाथा नं. 326 व उसकी टीका।

चतुरिन्द्रिय में भ्रमर के शरीर की उत्कृष्ट लम्बाई = 1 योजन, **व्यास =** $\frac{3}{4}$ योजन

ऊँचाई = $\frac{1}{2}$ योजन

अत: उत्कृष्ट शरीर वाले भ्रमर का घनफल = लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई

$= 1 \times \frac{3}{4} \times \frac{1}{2} = \frac{3}{8}$ घन योजन

पंचेन्द्रियों में महामत्स्य के शरीर की उत्कृष्ट ल. = 1000 योजन, **चौड़ाई–**500 योजन, **ऊँचाई=**250 योजन

अत: उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना वाले महामत्स्य का घनफल = लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई

= 1000 × 500 × 250

= 12,50,00000 घन योजन

नोट– इन सभी अवगाहना को अंगुल में बदलते हैं तो त्रीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना का घनफल संख्यात घनांगुल है, त्रीन्द्रिय जीवों के घनफल की घनांगुल संख्या से चतुरिन्द्रिय के घनफल की घनांगुल संख्या संख्यात गुणी है, चतुरिन्द्रियों से संख्यात गुणी द्वीन्द्रियों की, द्वीन्द्रियों से संख्यात गुणी एकेन्द्रियों की तथा एकेन्द्रियों से पंचेन्द्रियों के घनफल की संख्या संख्यात गुणी है। इस प्रकार क्रमश: अवगाहना संख्यात–संख्यात गुणी है।

यहाँ संख्यात का चिह्न a माना है, और घनांगुल का चिह्न = 6 माना है।

अत: त्रीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना = 6 a

चतुरिन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना = 6 a a

द्वीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना = 6 a a a

एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना = 6 a a a a

पंचेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना = 6 a a a a a

इस प्रकार चिह्नों द्वारा अल्पबहुत्व प्राप्त होता है।

नोट– अभी हमने द्वीप–समुद्रों में रहने वाले एकेन्द्रियादिक उत्कृष्ट अवगाहना वाले जीवों के शरीर के घनफल को जाना। आगे उन्हीं द्वीप समुद्रों में ज्योतिष देवों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनका स्वरूप उनका अवस्थान भ्रमण आदि का कथन करते हैं।

सर्व ज्योतिषि देवों की संख्या $\left(\frac{\text{जगत् प्रतर}}{(256 \text{ सू.})^2}\right)$ प्रमाण होती है और आगे विस्तार से जानते हैं...

अध्याय–3

ज्योतिर्लोक में स्थित ज्योतिर्विमानों का वर्णन

अवस्थान–ज्योतिर्लोक में सूर्य, चन्द्रमा तारा आदिक का स्थान–*चित्रा पृथ्वी से 790 योजन ऊपर **तारागण** है।

आधुनिक गणित से = 790 × 6000 = 47,40,000 किमी. (क्योंकि 1 योजन=6000 किमी.)

* तारागणों से 10 योजन ऊपर **सूर्य** है।

आधुनिक गणित से = 790 + 10 = 800 × 6000 = 48,00000 किमी. से कुछ अधिक

* सूर्य से 80 योजन ऊपर **चन्द्रमा** है।

आधुनिक गणित से = 800 + 80 = 880 × 6000 = 52,80,000 किमी. से कुछ अधिक

* चन्द्रमा से 4 योजन ऊपर **नक्षत्र** है।

आधुनिक गणित से = 880 + 4 = 884 × 6000 = 53,04000 किमी. से कुछ अधिक

* नक्षत्र से **बुध ग्रह** 4 योजन ऊपर है।

आधुनिक गणित से = 884 + 4 = 888 × 6000 = 53,28,000 किमी. से कुछ अधिक

* बुध ग्रह से **शुक्र ग्रह** 3 योजन ऊपर है।

आधुनिक गणित से = 888 + 3 = 891 × 6000 = 53,46,000 किमी. से कुछ अधिक

* शुक्र ग्रह से **गुरु ग्रह** 3 योजन ऊपर है।

* आधुनिक गणित से = 891 + 3 = 894 × 6000 = 53,64,000 किमी. से कुछ अधिक

* गुरु ग्रह से **मंगल ग्रह** 3 योजन ऊपर है।

आधुनिक गणित से = 894 + 3 = 897 × 6000 = 53,82,000 किमी. से कुछ अधिक

* मंगल ग्रह से **शनि ग्रह** 3 योजन ऊपर है।

आधुनिक गणित से = 897 + 3 = 900 × 6000 = 54,00000 किमी.

इस प्रकार [10 + 80 + 4 + 4 + 3 + 3 + 3 + 3] = 110 योजन अर्थात् 110 × 6000 = 6,60,000 किमी. की ऊँचाई में ज्योतिष देव रहते हैं। अर्थात् सम्पूर्ण ज्योतिषी देव पृथ्वीतल से 790 योजन की ऊँचाई से प्रारम्भ कर 900 योजन की ऊँचाई तक रहते हैं अर्थात् 47,40,000 किमी. से 54,00,000 किमी. की ऊँचाई में रहते हैं।

तारागणों का तिर्यग् रूप से तीन प्रकार के अन्तर का निरूपण करते हैं – एक तारा से दूसरे तारा का तिर्यग् जघन्य अन्तर $\frac{1}{7}$ कोस, मध्यम अन्तर 50 योजन, उत्कृष्ट अन्तर = 1000 योजन प्रमाण है।

ज्योतिर्विमानों के स्वरूप का निरूपण करते हैं – सभी ज्योतिर्विमान अर्धगोले के सदृश ऊपर को अर्थात् ऊर्ध्व मुख रूप से स्थित है, अर्थात् चौड़ाई वाला भाग ऊपर और गोलाई वाला सँकरा भाग नीचे रहता है। इनका गोलाकार वाला निचला भाग ही हमारे द्वारा दृश्यमान है शेष भाग नहीं। इन्हीं विमानों के ऊपर जिन चैत्यालयों से सहित सुन्दर रमणीक नगरियाँ बसी हुई हैं। सर्व ज्योतिर्विमानों का बाहुल्य (मोटाई) अपने–अपने व्यास के अर्ध प्रमाण है।

जैसे–

इसी प्रकार सभी ज्योतिर्विमान है।

सर्वज्योतिर्विमानों का व्यास और बाहुल्य निम्न प्रकार से है – योजनों को किमी. में बदलने के लिए 6000 से गुणा करते है क्योंकि 1 योजन = 6000 किमी.

क्र.	ज्योतिर्विमानों के नाम	व्यास (विस्तार)		बाहुल्य (मोटाई)	
		योजनों में	कि.मी. में	योजनों में	कि.मी. में
1.	चन्द्र विमान	$\frac{56}{61}$ यो.	$5508\frac{12}{61}$ कि.मी.	$\frac{26}{61}$ यो.	$2557\frac{23}{61}$ कि.मी.
2.	सूर्य	$\frac{48}{61}$ यो.	$4721\frac{19}{61}$ कि.मी.	$\frac{24}{61}$ यो.	$2360\frac{40}{61}$ कि.मी.
3.	शुक्र	1 कोस	3 किमी.	$\frac{1}{2}$ कोस	$\frac{3}{2}$ कि.मी.
4.	गुरु	कुछ कम 1 कोस	कुछ कम 3 कि.मी.	कुछ कम $\frac{1}{2}$ कोस	कुछ कम $\frac{3}{2}$ कि.मी.
5.	बुध	$\frac{1}{2}$ कोस	$\frac{3}{2}$ किमी.	$\frac{1}{4}$ कोस	$\frac{3}{4}$ कि.मी.

6.	मंगल	½ कोस	$\frac{3}{2}$ किमी.	$\frac{1}{4}$ कोस	$\frac{3}{4}$ कि.मी.
7.	शनि	½ कोस	$\frac{3}{2}$ किमी.	$\frac{1}{4}$ कोस	$\frac{3}{4}$ कि.मी.
8.	ताराओं का जघन्य	$\frac{1}{4}$ कोस	$\frac{3}{4}$ किमी.	$\frac{1}{8}$ कोस	$\frac{3}{8}$ कि.मी.
	ताराओं का मध्यम	$\frac{1}{2}$ कोस	$\frac{3}{2}$ किमी.	$\frac{1}{4}$ कोस	$\frac{3}{4}$ कि.मी.
	ताराओं का उत्कृष्ट	1 कोस	3 किमी.	½ कोस	$\frac{3}{2}$ कि.मी.
9.	नक्षत्र	1 कोस	3 किमी.	½ कोस	$\frac{3}{2}$ कि.मी.
10.	राहु	कुछ कम	कुछ कम	कुछ कम	कुछ कम
		1 यो.	6000 किमी.	½ यो.	$\frac{3}{2}$ कि.मी.
11.	केतु	कुछ कम	कुछ कम	कुछ कम	कुछ कम
		1 यो.	6000 किमी.	½ यो.	$\frac{3}{2}$ कि.मी.

राहु और केतु दोनों विमानों का व्यास कुछ कम एक एक योजन प्रमाण है। राहु का विमान चन्द्र विमान के नीचे व केतु का विमान सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। प्रत्येक 6 माह बाद पर्व के अन्त में अर्थात् क्रम से पूर्णिमा और अमावस्या के अन्त में राहु चन्द्रमा को व केतु सूर्य को आच्छादित करता है। इसका नाम चन्द्रग्रहण व सूर्यग्रहण है।

✻ राहू विमान की ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर चन्द्रमा का विमान है, और केतु विमान की ध्वजा से चार प्रमाणांगुल ऊपर सूर्य का विमान है।

1 प्रमाणांगुल = 500 सूच्यंगुल है तो 4 प्रमाणांगुल = 500 × 4 = 2000 सूच्यंगुल

24 अंगुल = 1 हाथ है तो 2000 अंगुल = $\frac{1}{24} \times 2000 = 83\frac{8}{24} = 83\frac{1}{3}$ हाथ

✻ चन्द्रमा की किरणें 12000 प्रमाण है जो कि शीतल है। सूर्य की किरणें भी 12000 है, किन्तु वे ऊष्ण हैं। शुक्र की किरणें 2500 हैं वे तीव्र अर्थात् प्रकाश से उज्ज्वल हैं। शेष ज्योतिषी देवों की किरणें मंद प्रकाश वाली हैं।

चन्द्रमण्डल की वृद्धि–हानि का क्रम – चन्द्र विमान की कुल 16 कलाएँ हैं। एक–एक दिन में एक–एक कला जब कृष्ण रूप परिणमन करता जाता है तब चन्द्रमा 15 दिन में स्वयं कृष्ण रूप हो जाता है और

जब प्रत्येक दिन एक-एक कला श्वेत रूप परिणमन करता है तब चन्द्र 15 दिन में क्रम से शुक्ल रूप हो जाता है। चन्द्रमा की एक कला (भाग) का विस्तार ज्ञात करना है, अत: चन्द्रमा का विस्तार = $\frac{56}{61}$ योजन है और उसके सोलह भाग है तो एक भाग का विस्तार कितना होगा ? त्रै राशिक करने पर $\frac{56}{61} \times \frac{1}{16}$ आठ से अपवर्तित करने पर अर्थात् $\frac{7}{122}$ योजन एक कला का विस्तार है अथवा $344\frac{32}{122}$ कि.मी.

अन्य आचार्यों का अभिप्राय है कि – अंजनवर्ण राहु का विमान प्रतिदिन एक-एक पथ में पन्द्रह कला पर्यन्त चन्द्रबिम्ब की एक-एक कला को आच्छादित करता है पुन: वही राहु प्रतिपदा से एक-एक वीथी में अपने गमन विशेष के द्वारा पूर्णिमा तक एक-एक कला को छोड़ता जाता है। इस प्रकार से अमावस्या को चन्द्रमा पूर्ण रूप से आच्छादित हो जाता है और पूर्णिमा को पूर्ण रूप से खुल जाता है इसलिये अमावस्या को काला व पूर्णिमा को श्वेत दिखाई देता है।

सिंह, हाथी, बैल और जटायुक्त घोड़ों के रूप को धारण करने वाले आभियोग्य देव अपने-अपने विमानों को पूर्वादि दिशाओं में ले जाते हैं।

	पूर्व दिशा के वाहक		दक्षिण दिशा के वाहक		पश्चिम दिशा के वाहक		उत्तर दिशा के वाहक		योग
चन्द्र	सिंह	४०००	हाथी	४०००	बैल	४०००	घोड़े	४०००	१६०००
सूर्य	"	"	"	"	"	"	"	"	१६०००
शुक्र	"	२०००	"	२०००	"	२०००	"	२०००	८०००
गुरु	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
बुध	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
शनि	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
मंगल	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
नक्षत्र	"	१०००	"	१०००	"	१०००	"	१०००	४०००
तारे	"	५००	"	५००	"	५००	"	५००	२०००

ज्योतिषि देव सुदर्शन मेरु को 1121 योजन छोड़कर प्रदक्षिणा रूप में गमन करते हैं। चन्द्र, सूर्य, ग्रह को छोड़कर शेष सभी ज्योतिषि देव एक ही पथ में गमन करते हैं।

जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा व दो सूर्य हैं। लवणोदक में 4-4, धातकीखण्ड में 12-12, कालोदक समुद्र में 42-42, पुष्करार्ध 72-72 सूर्य-चन्द्रमा है। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में कुल [2 + 4 + 12 + 42 + 72] = 132 चन्द्रमा व 132 सूर्य है।

अढ़ाई द्वीप से बाहर के सभी ज्योतिर्गण अवस्थित है, संचार नहीं करते।

जिस–जिस द्वीप समुद्र में जितने–जितने ज्योतिष देव रहते हैं, उनमें से आधे तो अपने–अपने द्वीप–समुद्र के एक भाग में तथा आधे दूसरे भाग में संचार करते हैं। सभी ज्योतिषी देव का गमन पंक्तिबद्ध होता है।

जम्बूद्वीप में ध्रुव तारे (स्थिर तारे) 36 हैं, लवणोदक समुद्र में 139, धातकीखण्ड में 1010, कालोदक समुद्र में 41120 और पुष्कार्ध में 53230 ध्रुव तारे हैं।

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड के सूर्य–चन्द्रमा का चित्रण

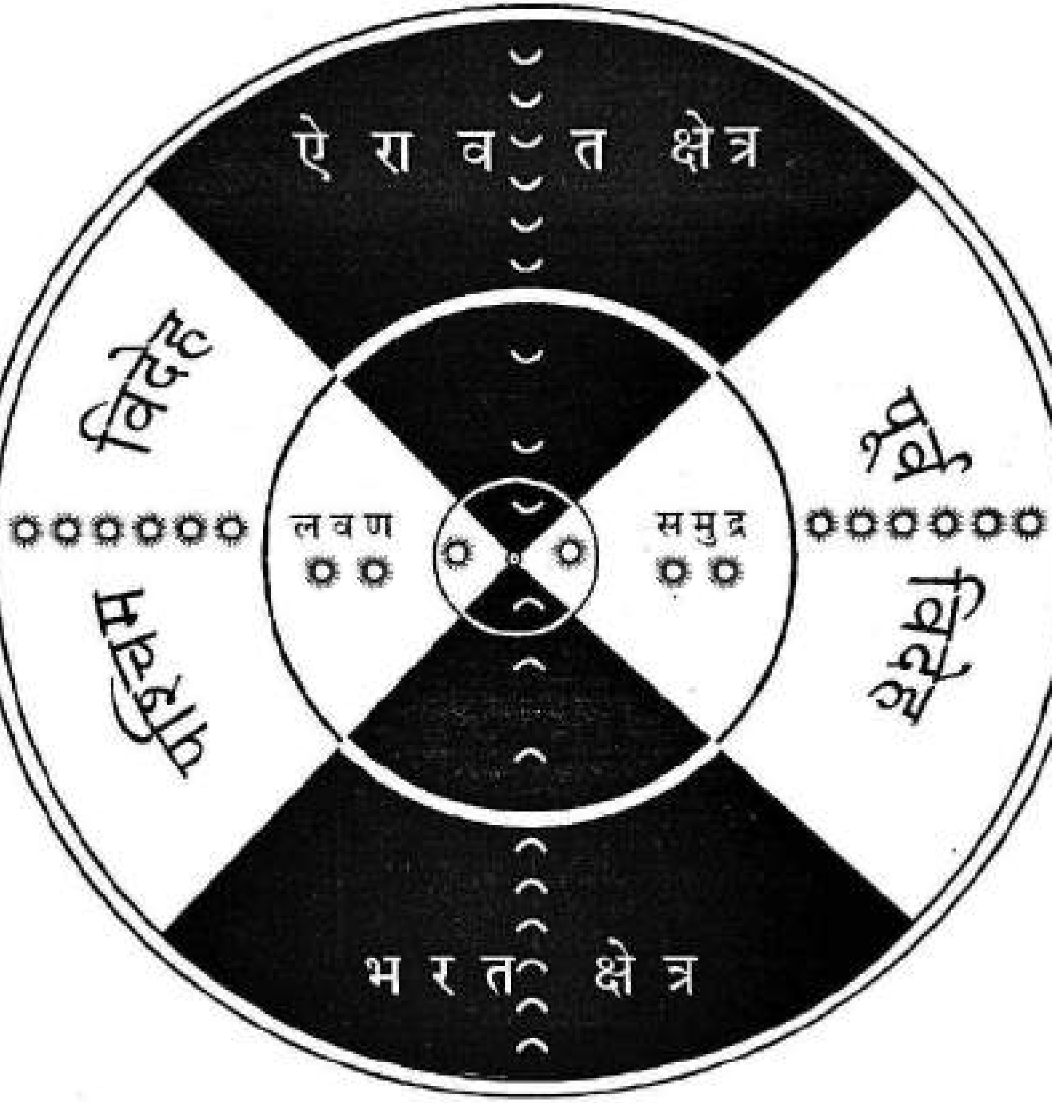

इस चित्र में जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड के चन्द्र–सूर्य दर्शाये गये हैं। इसी प्रकार कालोदक समुद्र व पुष्करार्ध में भी जानना चाहिए।

मानुषोत्तर पर्वत के परभाग में चन्द्र और सूर्य के अवस्थान का क्रम कहते हैं – मानुषोत्तर पर्वत से 50,000 योजन जाकर बाह्य पुष्करार्ध में चन्द्र सूर्य का प्रथम वलय है, और प्रथम वलय से एक–एक लाख योजन आगे जाते हुए क्रम से द्वितीयादि वलय है। इसी प्रकार द्वीप समुद्रों की वेदिका के मूल से देखा जाए तो भी 50 हजार योजन जाकर प्रथम वलय है, इसके बाद एक–एक लाख योजन आगे–आगे द्वितीयादि वलय है।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो वलय हैं उनमें स्थित चन्द्र–सूर्य की संख्या कहते हैं – मानुषोत्तर पर्वत से बाहर पुष्करार्ध द्वीप है, उसके प्रथम वलय में चन्द्र–सूर्य 144–144 है। दूसरे, तीसरे आदि वलयों में चार–चार की वृद्धि होते हुए क्रम से 148, 152, 156, 160..... है। पूर्व–पूर्व द्वीप–समुद्रों के आदि में चन्द्र–सूर्य की जो संख्या है, उत्तरोत्तर द्वीप समुद्रों के आदि में उससे दुनी–दुनी है। जैसे – पुष्कार्ध द्वीप के आदि (प्रथम) वलय में चन्द्र–सूर्यों की संख्या 144–144 है और पुष्कर समुद्र के आदि में दोनों की संख्या 288–288 है, इसके बाद प्रत्येक वलय में 4–4 की वृद्धि होगी।

मानुषोत्तर पर्वत के परभाग में स्थित चन्द्र से चन्द्र का, सूर्य से सूर्य का बिम्ब सहित अन्तर कहते हैं – अपनी–अपनी परिधि में अपनी–अपनी परिधि गत चन्द्र–सूर्यों की संख्या का भाग देने पर वहाँ स्थित चन्द्र से चन्द्र व सूर्य से सूर्य का बिम्ब सहित अन्तर प्राप्त होता है।

जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर दोनों ओर के अभ्यन्तर द्वीप समुद्रों का वलय व्यास मिलाने से बाह्य पुष्करार्ध के प्रथम वलय का सूची व्यास 46 लाख योजन प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे – मानुषोत्तर पर्वत का सूची व्यास [1 + 2 + 4 + 8 + 8 एक तरफ का तथा दूसरी तरफ का 2 + 4 + 8 + 8 पूरा मिलाने पर] = 45 लाख योजन है, इसमें दोनों ओर की प्रथम वलय की दूरी 50 हजार – 50 हजार (1 लाख) मिलाने पर 46 लाख योजन की सूची व्यास प्राप्त होता है।

इस 46 लाख सूची व्यास की परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 \times 10}$

$$\sqrt{(46 \text{ लाख})^2 \times 10}$$

$$= \sqrt{2116000000000 \times 10}$$

$$= \sqrt{21160000000000}$$

= 14546477 योजन से कुछ अधिक

चन्द्र व सूर्य का बिम्ब सहित अन्तर $= \dfrac{\text{परिधि}}{\text{सूर्य/चन्द्र की संख्या}}$

$$= \frac{14546477}{144} = 101017\frac{29}{144} \text{ योजन}$$

बिम्ब रहित एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर =

बिम्ब सहित अन्तर – चन्द्र बिम्ब का विस्तार

$$\frac{14546477}{144} - \frac{56}{61}$$

$$\frac{887335097-8064}{8784} = \frac{887327033}{8784} = 101016\,\frac{2489}{8784}$$ योजन

बिम्ब रहित एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर = बिम्ब सहित अन्तर – सूर्य बिम्ब का विस्तार

$$= \frac{14546477}{144} - \frac{48}{61}$$

$$\frac{887335097-6919}{8784} = \frac{887328178}{8784} = 101016\,\frac{3641}{8784}$$ योजन

सर्व वलय सम्बन्धी चन्द्र अभिजित नक्षत्र पर और सर्व वलय सम्बन्धी सूर्य पुष्य नक्षत्र पर स्थित है। अर्थात् नक्षत्रों के विमान ऊपर व चन्द्र सूर्य के विमान नीचे है। मानुषोत्तर पर्वत से परे सर्व ज्योतिर्गण अवस्थित होने से ही यह घटित होता है।

एक चन्द्रमा के परिवार में– एक सूर्य, 88 ग्रह, 28 नक्षत्र व 66975 कोड़ा कोड़ी तारागण है।

जम्बूद्वीप में स्थित भरतादिक्षेत्र व कुलाचलादि पर्वतों पर ताराओं का विभाजन–

भरत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त की शलाकाएँ दुगनी–दुगनी होती है। अत: 1 + 2 + 4 + 8 + 16 + 32 + 64 + 32 + 16 + 8 + 4 + 2 + 1 = 190 शलाकाएँ हुई। जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा से संबंधित तारे = 66975 कोड़ा कोड़ी × 2 = 133950 कोड़ा कोड़ी है। जब 190 शलाकाओं में 133950 कोड़ा कोड़ी तारे है तो 1, 2, 4 ..... आदि शलाकाओं में कितने तारे होंगे ? इसे त्रैराशिक करने पर

$\frac{133950}{190} \times 1 =$ 705 कोड़ा कोड़ी (यही प्रथम शलाका पर तारों की संख्या है)

अर्थात् भरतक्षेत्र में 705 कोड़ा कोड़ी तारे हैं। इसी प्रकार प्रत्येक शलाका का निकालना चाहिए जो भरतक्षेत्र से विदेह क्षेत्र तक दुने–दुने तारों की संख्या प्राप्त होती है। विदेह क्षेत्र से आगे ऐरावत क्षेत्र तक अर्ध–अर्ध होती जाती है। अत: भरत व ऐरावत क्षेत्र में 705 कोड़ा कोड़ी तारे हैं।

क्षेत्र और पर्वतों के नाम	ताराओं की संख्या	क्षेत्र और पर्वतों के नाम	ताराओं की संख्या
भरतक्षेत्र	७०५ कोड़ाकोड़ी	नील पर्वत	२२५६० कोड़ाकोड़ी
हिमवन् पर्वत	१४१० कोड़ाकोड़ी	रम्यक् क्षेत्र	११२८० कोड़ाकोड़ी
हैमवत क्षेत्र	२८२० कोड़ाकोड़ी	रुक्मि पर्वत	४६४० कोड़ाकोड़ी
महाहिमवन् पर्वत	४६४० कोड़ाकोड़ी	हैरण्यवत् क्षेत्र	२८२० कोड़ाकोड़ी
हरि क्षेत्र	११२८० कोड़ाकोड़ी	शिखरि पर्वत	१४१० कोड़ाकोड़ी
निषध पर्वत	२२५६० कोड़ाकोड़ी	ऐरावत क्षेत्र	७०५ कोड़ाकोड़ी
विदेह क्षेत्र	१५१२० कोड़ाकोड़ी		

नोट–❊ यहाँ हमने ज्योतिर्लोक में स्थित ज्योतिर्विमानों के बारे में जाना, आगे जम्बूद्वीप से पुष्करार्ध तक के सूर्य–चन्द्रों के अन्तर को जानेंगे...

अध्याय–4

लवणादि समुद्र से पुष्करार्ध पर्यन्त स्थित चन्द्र–सूर्यों का अन्तर

लवणादि समुद्र से पुष्करार्ध पर्यन्त स्थित चन्द्र सूर्यों का अन्तर कहते हैं – अपने–अपने स्थानों के जितने सूर्य हैं, उनके अर्ध भाग में सूर्य बिम्ब के प्रमाण को गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे लवण समुद्र आदि के व्यास में से घटाकर अवशेष में स्वकीय सूर्यों के अर्ध भाग का भाग देने पर एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है, तथा जगती (वेदी) से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर उपर्युक्त अन्तर का आधा होता है।

सूत्र – (ळ) सूर्य से सूर्य व चन्द्र से चन्द्र का अन्तर = $\dfrac{\text{वलय व्यास}\left[\dfrac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} - \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब संख्या}/2)}$

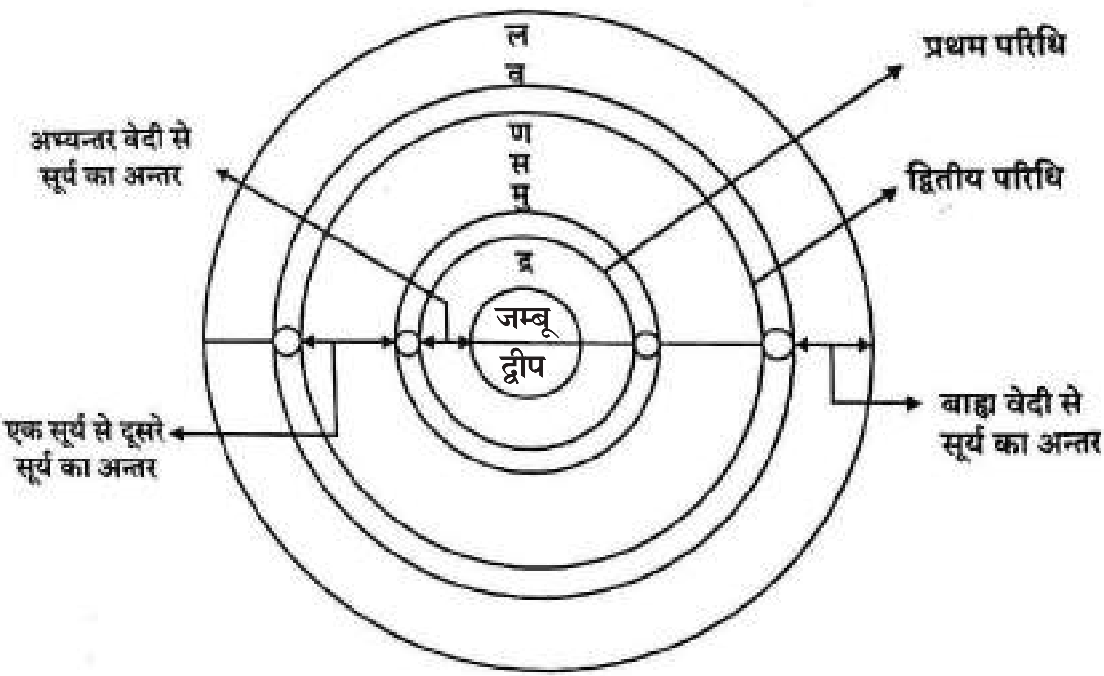

लवण समुद्र में सूर्यों का अन्तर $= \dfrac{\text{वलय व्यास} - \left[\dfrac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} - \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब संख्या}/2)}$

लवण समुद्र का वलय व्यास 2 लाख योजन है, सूर्य बिम्बों की संख्या 4 है,

सूर्य बिम्ब का व्यास $= \dfrac{48}{61}$ है। $= \dfrac{200000 - \left[\dfrac{4}{2} \times \dfrac{48}{61}\right]}{4/2}$

$$= \dfrac{200000 - \dfrac{96}{61}}{2} = \dfrac{\dfrac{200000}{1} - \dfrac{96}{61}}{2}$$

$$= \dfrac{\dfrac{12200000 - 96}{61}}{2} = \dfrac{12199904}{61 \text{x} 2} = 99999 \dfrac{13}{61} \text{ योजन}$$

वेदी से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर $= \dfrac{\text{सूर्यों का अन्तर}}{2}$

$$= \dfrac{99999\dfrac{13}{61}}{2} = 49999\dfrac{37}{61} \text{ योजन}$$

लवण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी से सूर्य का अन्तर + सूर्य का व्यास + सूर्य से सूर्य का अन्तर + सूर्य का व्यास + सूर्य से बाह्य वेदी का अन्तर

$= 49999\dfrac{37}{61} + \dfrac{48}{61} + 99999\dfrac{13}{61} + \dfrac{48}{61} + 49999\dfrac{37}{61}$

= 200000 योजन का लवण समुद्र का व्यास प्राप्त होता है।

लवण समुद्र में चन्द्रों का अन्तर $= \dfrac{\text{वलय व्यास} - \left[\dfrac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} \text{ x } \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब सं.}/2)}$

$$= \dfrac{200000 - \left[\dfrac{4}{2} \text{x} \dfrac{56}{61}\right]}{4/2} \quad \dfrac{\dfrac{200000}{1} - \dfrac{112}{61}}{2}$$

$$\dfrac{12200000 - 112}{61 \text{x} 2} = \dfrac{12199888}{122} = 99999\dfrac{5}{61} \text{ योजन}$$

वेदी से चन्द्र का अन्तर = $\frac{\text{चन्द्रों का अन्तर}}{2}$

$$= \frac{99999\frac{5}{61} \text{ योजन}}{2} = 49999\frac{33}{61} \text{ योजन}$$

लवण समुद्र को अभ्यन्तर वेदी से चन्द्र का अन्तर + चन्द्र का व्यास + चन्द्र से चन्द्र का अन्तर + चन्द्र का व्यास + चन्द्र से बाह्य वेदी का अन्तर =

$$49999\frac{33}{61} + \frac{56}{61} + 99999\frac{5}{61} + \frac{56}{61} + 49999\frac{33}{61} = 200000 \text{ योजन}$$

लवण समुद्र का व्यास

धातकीखण्ड में सूर्यों का अन्तर – धातकीखण्ड का वलय व्यास = 4 लाख योजन

सूर्यों की संख्या 12 है। सूर्य बिम्ब का व्यास $\frac{48}{61}$ योजन है।

धातकीखण्ड में सूर्यों का अन्तर = $\frac{\text{वलय व्यास} - \left[\frac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} \times \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब सं.}/2)}$

$$= \frac{400000 - \frac{12}{2} \times \frac{48}{61}}{12/2} \qquad \frac{\frac{400000}{1} - \frac{288}{61}}{6}$$

$$\frac{24400000-288}{61 \times 6} = \frac{24399712}{366} = 66665\frac{161}{183} \text{ योजन}$$

वेदी से सूर्य का अन्तर = $\frac{\text{सूर्यों का अन्तर}}{2}$

$$= \frac{66665\frac{161}{183}}{2} = 33332\frac{172}{183} \text{ योजन}$$

धातकीखण्ड के 4 लाख योजन व्यास में 6 जगह एक एक परिधि में दो–दो सूर्य हैं, अत: इन छहों परिधियों के बीच सूर्यों से सूर्यों के अन्तराल 5 होंगे और बाह्यभ्यन्तर की अपेक्षा परिधि के अन्तर दो होंगे और सूर्य बिम्ब 6 होंगे।

सूर्यों से सूर्यों के पाँच अन्तरालों का क्षेत्र $= 66665\frac{161}{183} \times 5 = 333325\frac{805}{183}$ योजन

बाह्याभ्यंतर परिधि के दो अन्तरालों का क्षेत्र $= 33332\frac{172}{183} \times 2 = 66665\frac{161}{183}$ योजन

छ: सूर्यों का क्षेत्र $= \frac{48}{61} \times 6 = \frac{288}{61}$ योजन

पाँच अन्तरालों का क्षेत्र + दो अन्तरालों का क्षेत्र + छ: सूर्यों का क्षेत्र

$$= 333325\frac{805}{183} + 66665\frac{161}{183} + \frac{288}{61}$$

$$= \frac{60999180}{183} + \frac{12199856}{183} + \frac{288}{61}$$

$$= \frac{60999280+12199856+864}{183} = \frac{73200000}{183}$$

= 400000 योजन धातकीखण्ड का व्यास।

धातकीखण्ड में चन्द्रों का अन्तर – धातकीखण्ड का वलय व्यास = 4 लाख योजन।

चन्द्रों की संख्या 12 है। चन्द्र बिम्ब का व्यास $\frac{56}{61}$ योजन है।

धातकीखण्ड में चन्द्रों का अन्तर = $\dfrac{\textbf{वलय व्यास} - \left[\dfrac{\textbf{बिम्ब संख्या}}{2} \times \textbf{बिम्ब व्यास}\right]}{\textbf{(बिम्ब सं./2)}}$

$$= \frac{400000 - \frac{12}{2} \times \frac{56}{61}}{12/2} \qquad \frac{\frac{400000}{1} - \frac{336}{61}}{6}$$

$$\frac{24400000-336}{61 \times 6} = \frac{24399664}{366} = 66665\frac{137}{183} \text{ योजन}$$

वेदी से चन्द्रों का अन्तर = $\dfrac{\textbf{चन्द्रों का अन्तर}}{2}$

$$= \frac{66665\frac{137}{183}}{2} = 33332\frac{160}{183} \text{ योजन}$$

धातकीखण्ड के 4 लाख व्यास में 6 जगह एक एक परिधि में दो–दो चन्द्रमा हैं, अत: इन छहों परिधियों के बीच चन्द्रमा से चन्द्रमा के अन्तराल 5 होंगे और बाह्याभ्यन्तर की अपेक्षा परिधि के अन्तर दो होंगे।

अत: चन्द्रमा से चन्द्रमा के पाँचों अन्तरालों का क्षेत्र = $66665\frac{137}{183} \times 5 = 333328\frac{136}{183}$ योजन

बाह्यभ्यंतर परिधि के दो अन्तरालों का क्षेत्र = $33332\frac{160}{183} \times 2 = 66665\frac{137}{183}$ योजन

छहों चन्द्रों का क्षेत्र = $\frac{56}{61} \times 6 = \frac{336}{61}$ योजन

पाँचों अन्तरालों का क्षेत्र + दो अन्तरालों का क्षेत्र + छहों चन्द्रों का क्षेत्र

$$= 333328\frac{136}{183} + 66665\frac{137}{183} + \frac{336}{61}$$

$$\frac{60999160}{183} + \frac{12199832}{183} + \frac{336}{61}$$

$$\frac{60999160 + 12199832 + 1008}{183} = \frac{73200000}{183} = 400000 \text{ योजन}$$

(धातकीखण्ड का व्यास)

कालोदक समुद्र में सूर्यों का अन्तराल– कालोदक समुद्र का वलय व्यास 8 लाख योजन है तथा सूर्यों की संख्या 42 है। सूर्य बिम्ब का व्यास = $\frac{48}{61}$ योजन है।

कालोदक समुद्र में सूर्यों का अन्तर = $$\frac{\textbf{वलय व्यास}-\left[\frac{\textbf{बिम्ब संख्या}}{2} \times \textbf{बिम्ब व्यास}\right]}{(\textbf{बिम्ब सं.}/2)}$$

$$= \frac{800000-\left(\frac{42}{2} \times \frac{48}{61}\right)}{42/2} = \frac{800000-\left[21 \times \frac{48}{61}\right]}{21}$$

$$= \frac{\frac{800000}{1} - \frac{1008}{61}}{21} = \frac{\frac{48800000-1008}{61}}{21}$$

$$= \frac{48798992}{61} \times \frac{1}{21} = \frac{48798992}{1281}$$

$$= 38094\frac{578}{1281} \text{ योजन}$$

वेदी से सूर्यों का अन्तर = $$\frac{\textbf{सूर्यों का अन्तर}}{2}$$

$$= \frac{38094\frac{578}{1281}}{2} = 19047\frac{289}{1281} \text{ योजन}$$

कालोदक समुद्र के 8 लाख योजन व्यास में 21 जगह एक-एक परिधि में दो-दो सूर्य है, अत: इन 21 परिधियों के बीच सूर्यों से सूर्यों के अन्तराल 20 होंगे और बाह्याभ्यन्तर की अपेक्षा परिधि के अन्तर दो होंगे और सूर्य बिम्ब 21 होंगे।

सूर्यों से सूर्यों के 20 अन्तरालों का क्षेत्र = $38094\frac{578}{1281} \times 20 = 761889\frac{31}{1281}$ योजन

बाह्यभ्यन्तर परिधि के 2 अन्तरालों का क्षेत्र = $19047\frac{289}{1281} \times 2 = 38094\frac{578}{1281}$ योजन

21 सूर्यों का क्षेत्र = $\frac{48}{61} \times 21 = \frac{1008}{61}$ योजन

20 अन्तरालों का क्षेत्र + दो अन्तरालों का क्षेत्र + 21 सूर्यों का क्षेत्र

$$761889\frac{31}{1281} + 38094\frac{578}{1281} + \frac{1008}{61}$$

$$\frac{975979840}{1281} + \frac{48798992}{1281} + \frac{1008}{61}$$

$$\frac{975979840 + 48798992 + 21168}{1281} = \frac{1024800000}{1281}$$ = 800000 योजन (कालोदक समुद्र का व्यास)

कालोदक समुद्र में चन्द्रों का अन्तराल- कालोदक समुद्र का वलय व्यास 8 लाख योजन है तथा चन्द्रों की संख्या 42 है। चन्द्र बिम्ब का व्यास = $\frac{56}{61}$ योजन है।

कालोदक समुद्र में चन्द्र बिम्बों का अन्तर = $\dfrac{\text{वलय व्यास} - \left[\dfrac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} \times \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब सं.}/2)}$

$$= \frac{800000 - \left(\frac{42}{2} \times \frac{56}{61}\right)}{42/2} = \frac{800000 - \left[21 \times \frac{56}{61}\right]}{21}$$

$$= \frac{\frac{800000}{1} - \frac{1176}{61}}{21} = \frac{\frac{48800000 - 1176}{61}}{21}$$

$$= \frac{48798824}{61} \times \frac{1}{21} = \frac{48798824}{1281} = 38094\frac{410}{1281}$$ योजन

वेदी से चन्द्रों का अन्तर = $\frac{\text{चन्द्रों का अन्तर}}{2}$

$$= 38094\frac{410}{1281} = 19047\frac{205}{1281} \text{ योजन}$$

चन्द्रों से चन्द्रों 20 अन्तरालों का क्षेत्र $= 38094\frac{410}{1281} \times 20 = 761880\frac{8200}{1281}$ योजन

बाह्यभ्यंतर परिधि के दो अन्तरालों का क्षेत्र $= 19047\frac{205}{1281} \times 2 = 38094\frac{410}{1281}$ योजन

21 चन्द्रों का क्षेत्र $= \frac{56}{61} \times 21 = \frac{1176}{61}$ योजन

20 अन्तरालों का क्षेत्र + 2 अन्तरालों का क्षेत्र + 21 चन्द्रों का क्षेत्र

$$= 761880\frac{8200}{1281} + 38094\frac{410}{1281} + \frac{1176}{61}$$

$$\frac{975976480}{1281} + \frac{48798824}{1281} + \frac{1176}{61}$$

$$\frac{975976480 + 48798824 + 24696}{1281} = \frac{1024800000}{1281} = 800000 \text{ योजन}$$

(धातकीखण्ड का व्यास)

पुष्करार्ध द्वीप में सूर्यों का अन्तराल– अर्ध पुष्कर द्वीप का वलय व्यास 8 लाख योजन है तथा यहाँ सूर्य–चन्द्रों की संख्या 72–72 है। सूर्य बिम्ब का व्यास $= \frac{48}{61}$ योजन है।

पुष्करार्ध द्वीप में सूर्यों का अन्तर = $\frac{\text{वलय व्यास}-\left[\frac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} \times \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब सं.}/2)}$

$$= \frac{800000-\left(\frac{72}{2} \times \frac{48}{61}\right)}{72/2} = \frac{800000-\left[36 \times \frac{48}{61}\right]}{36}$$

$$= \frac{\frac{80000}{1} - \frac{1728}{61}}{36} = \frac{\frac{4,88,00,000-1728}{61}}{36}$$

$$= \frac{48798272}{61} \times \frac{1}{36} = \frac{48798272}{2196} = 22221\frac{239}{549} \text{ योजन}$$

वेदी से सूर्यों का अन्तर = $\dfrac{\text{सूर्य का अन्तर}}{2}$

$$= \frac{22221\frac{239}{549}}{2} = 11110\frac{394}{549} \text{ योजन}$$

पुष्करार्ध द्वीप के 8 लाख योजन व्यास में 36 जगह एक-एक परिधि में दो-दो सूर्य हैं अत: इन 36 परिधियों के बीच सूर्यों से सूर्यों का अन्तराल 35 होंगे और बाह्याभ्यन्तर की अपेक्षा परिधि के अन्तर दो होंगे और बिम्ब 36 होंगे।

सूर्यों से सूर्यों के 35 अन्तरालों का क्षेत्र = $22221\frac{239}{549} \times 35 = 777735\frac{8365}{549}$ योजन

बाह्यभ्यंतर परिधि के दो अन्तरालों का क्षेत्र = $11110\frac{394}{549} \times 2 = 22221\frac{239}{549}$ योजन

36 सूर्यों का क्षेत्र = $\frac{48}{61} \times 36 = \frac{1728}{61}$ योजन

35 अन्तरालों का क्षेत्र + 2 अन्तरालों का क्षेत्र + 36 सूर्यों का क्षेत्र

$$= 777735\frac{8365}{549} + 22221\frac{239}{549} + \frac{1728}{61}$$

$$\frac{426984880}{549} + \frac{12199568}{549} + \frac{1728}{61}$$

$$\frac{426984880 + 12199568 + 15552}{549} = \frac{439200000}{549} = 800000 \text{ योजन}$$

(पुष्करार्ध द्वीप का व्यास)

पुष्करार्ध द्वीप में चन्द्रों का अन्तराल– पुष्करार्ध द्वीप का वलय व्यास 8 लाख योजन है तथा यहाँ चन्द्रों की संख्या 72-72 है। चन्द्र बिम्ब का व्यास = $\frac{56}{61}$ योजन है।

पुष्करार्ध द्वीप में चन्द्रों का अन्तर = $\dfrac{\text{वलय व्यास} - \left[\dfrac{\text{बिम्ब संख्या}}{2} \times \text{बिम्ब व्यास}\right]}{(\text{बिम्ब सं.}/2)}$

$$= \frac{800000 - \left(\frac{72}{2} \times \frac{56}{61}\right)}{72/2} = \frac{800000 - \left[36 \times \frac{56}{61}\right]}{36}$$

$$= \frac{\frac{80000}{1} - \frac{2016}{61}}{36} = \frac{\frac{48800000 - 2016}{61}}{36}$$

$$= \frac{48797984}{61} \times \frac{1}{36} = \frac{48797984}{2196} = 22221\frac{167}{549} \text{ योजन}$$

वेदी से सूर्यों का अन्तर = $\frac{\text{चन्द्रों का अन्तर}}{2}$

$$= \frac{22221 \frac{167}{549}}{2} = 11110 \frac{358}{549} \text{ योजन}$$

चन्द्रों से चन्द्रों 35 अन्तरालों का क्षेत्र $= 22221 \frac{167}{549} \times 35 = 777735 \frac{5845}{549}$ योजन

बाह्यभ्यंतर परिधि के दो अन्तरालों का क्षेत्र $= 11110 \frac{358}{549} \times 2 = 22221 \frac{167}{549}$ योजन

36 चन्द्रों का क्षेत्र $= \frac{56}{61} \times 36 = \frac{2016}{61}$ योजन

35 अन्तरालों का क्षेत्र + 2 अन्तरालों का क्षेत्र + 36 चन्द्रों का क्षेत्र

$$= 777735 \frac{5845}{549} + 22221 \frac{167}{549} + \frac{2016}{61}$$

$$\frac{426982360}{549} + \frac{12199496}{549} + \frac{2016}{61}$$

$$\frac{426982360 + 12199496 + 18144}{549} = \frac{439200000}{549} = 800000 \text{ योजन}$$

(पुष्करार्ध द्वीप का व्यास)

सूर्य या चन्द्र के चार क्षेत्र अर्थात चन्द्र सूर्य के गमन करने की क्षेत्र नाली को चार क्षेत्र कहते हैं– दो चन्द्र और दो सूर्यों के प्रति एक–एक ही चार क्षेत्र होता है। अत: जम्बूद्वीप के दो सूर्यों का एक चार क्षेत्र है। लवण समुद्र के चार सूर्यों के 2 चार क्षेत्र, धातकीखण्ड द्वीप के 12 सूर्यों के 6 चार क्षेत्र, कालोदक समुद्र के 42 सूर्यों के 21 चार क्षेत्र और पुष्करार्ध द्वीप के 72 सूर्यों के 36 चार क्षेत्र हैं।

ये चार क्षेत्र सूर्य बिम्ब के विस्तार से अधिक 510 योजन अर्थात् $510\frac{48}{61}$ योजन प्रमाण वाले होते हैं।

जम्बूद्वीप के चार क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप में मात्र 180 योजन प्रमाण ही है, शेष $330\frac{48}{61}$ योजन विस्तार लवण समुद्र में है, अत: जम्बूद्वीपस्थ सूर्य, चन्द्र, जम्बूद्वीप के भीतर 180 योजन में ही विचरण करते हैं, शेष $330\frac{48}{61}$ योजन लवण समुद्र में विचरते हैं। इसके आगे पुष्करार्ध तक के चन्द्र–सूर्य के चार क्षेत्र का व्यास अपने–अपने द्वीप समुद्रों में ही है, बाहर नहीं, अत: वहाँ के चन्द्र सूर्य अपने–अपने क्षेत्र में ही विहार करते हैं।

चन्द्र–सूर्य की वीथी (गली) का प्रमाण कहते हैं – $510\frac{48}{61}$ योजन प्रमाण वाले चार क्षेत्र में चन्द्रमा की 15 गलियाँ हैं, सूर्य की 184 गलियाँ हैं। इनमें से क्रमश: प्रतिदिन दोनों सूर्य मिलकर एक–एक वीथी में संचार करते हैं।

वीथियों का अन्तराल – पथ व्यास पिंड से हीन चार क्षेत्र के प्रमाण को 1 कम पथ (वीथियों) से भाजित करने पर वीथियों का अन्तर प्राप्त होता है।

पथ व्यास पिंड का अर्थ ''बिम्ब के प्रमाण से गुणित वीथियों का प्रमाण है।''

सूर्य का पथ व्यास पिंड = बिम्ब का प्रमाण X विथियों का प्रमाण

$$\frac{48}{61} \times 184 = \frac{8832}{61} \text{ योजन}$$

सूर्य की वीथियों का अन्तर = $\dfrac{\textbf{चार क्षेत्र का प्रमाण – पथ व्यास पिंड}}{\textbf{(वीथियाँ–1)}}$

$$= \frac{510\frac{48}{61} - \frac{8832}{61}}{(184-1)}$$

$$= \frac{\frac{31158}{61} - \frac{8832}{61}}{183} = \frac{31158-8832}{61} \times \frac{1}{183}$$

$$= \frac{22326}{61} \times \frac{1}{183} = \frac{22326}{11163} = 2 \text{ योजन}$$

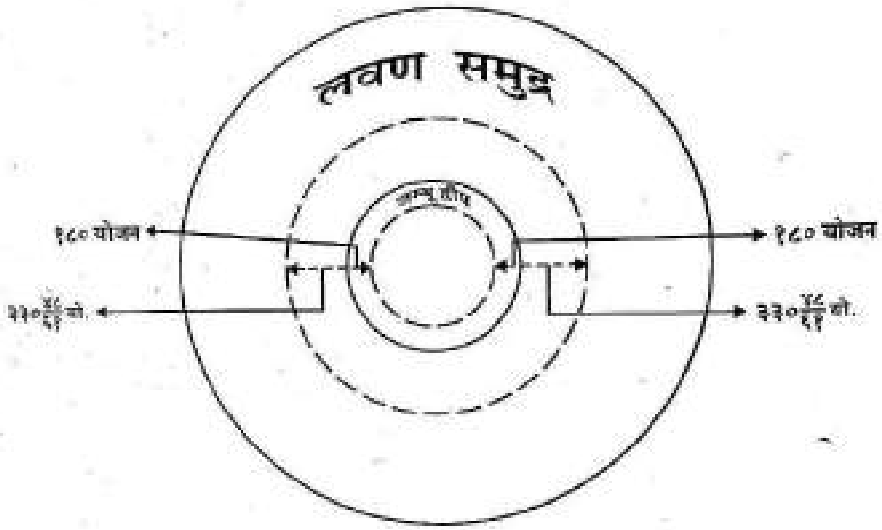

अत: एक गली से दूसरी गली का अन्तर 2 योजन है।

सूर्य के प्रतिदिन गमन का क्षेत्र = सूर्य बिम्ब का प्रमाण + एक गली से दूसरी गली अन्तर

$$= \frac{48}{61} + \frac{48}{61} = \frac{48+122}{61}$$

$$\frac{170}{61} = 2\frac{48}{61} \text{ योजन}$$

चन्द्रमा का पथ व्यास पिंड = बिम्ब का प्रमाण x विथियों का प्रमाण

$$= \frac{56}{61} \times 15 = \frac{840}{61} \text{ योजन}$$

चन्द्रमा की वीथियों का अन्तर = $\dfrac{\text{चार क्षेत्र का प्रमाण}-\text{पथ व्यास पिंड}}{\text{वीथियाँ}-1}$

$$= \frac{\frac{31158}{61} - \frac{840}{61}}{(15-1)} = \frac{\frac{31158-840}{61}}{14}$$

$$= \frac{30318}{61\times14} = \frac{30318}{854} = 35\frac{214}{427} \text{ योजन}$$

अत: एक गली से दूसरी गली का अन्तर 35 योजन 1002 कोस 683 धनुष व कुछ अधिक 3½ हाथ है।

चन्द्रमा के प्रतिदिन गमन का क्षेत्र = चन्द्र बिम्ब का प्रमाण + एक गली से दूसरी गली का अन्तर

$$= \frac{56}{61} + 35\frac{214}{427}$$

$$= \frac{56}{61} + \frac{15159}{427}$$

$$= \frac{392+15159}{427} = \frac{15551}{427}$$

$$= 36\frac{179}{427} \text{ योजन}$$

नोट–सूर्य को एक गली से दूसरी गली में जाने में एक दिन लगता है और एक मुहूर्त गली बदलने में लगता है। इस प्रकार एक माह में 30 मुहूर्त बढ़ जाते हैं। ऐसे बढ़ते–बढ़ते 2½ वर्ष में एक माह बढ़ जाता है इसलिए 2½ वर्ष में एक मल मास होता है।

सूर्य की 184 गलियाँ एवं एक गली से दूसरी गली का अन्तर = 2 योजन

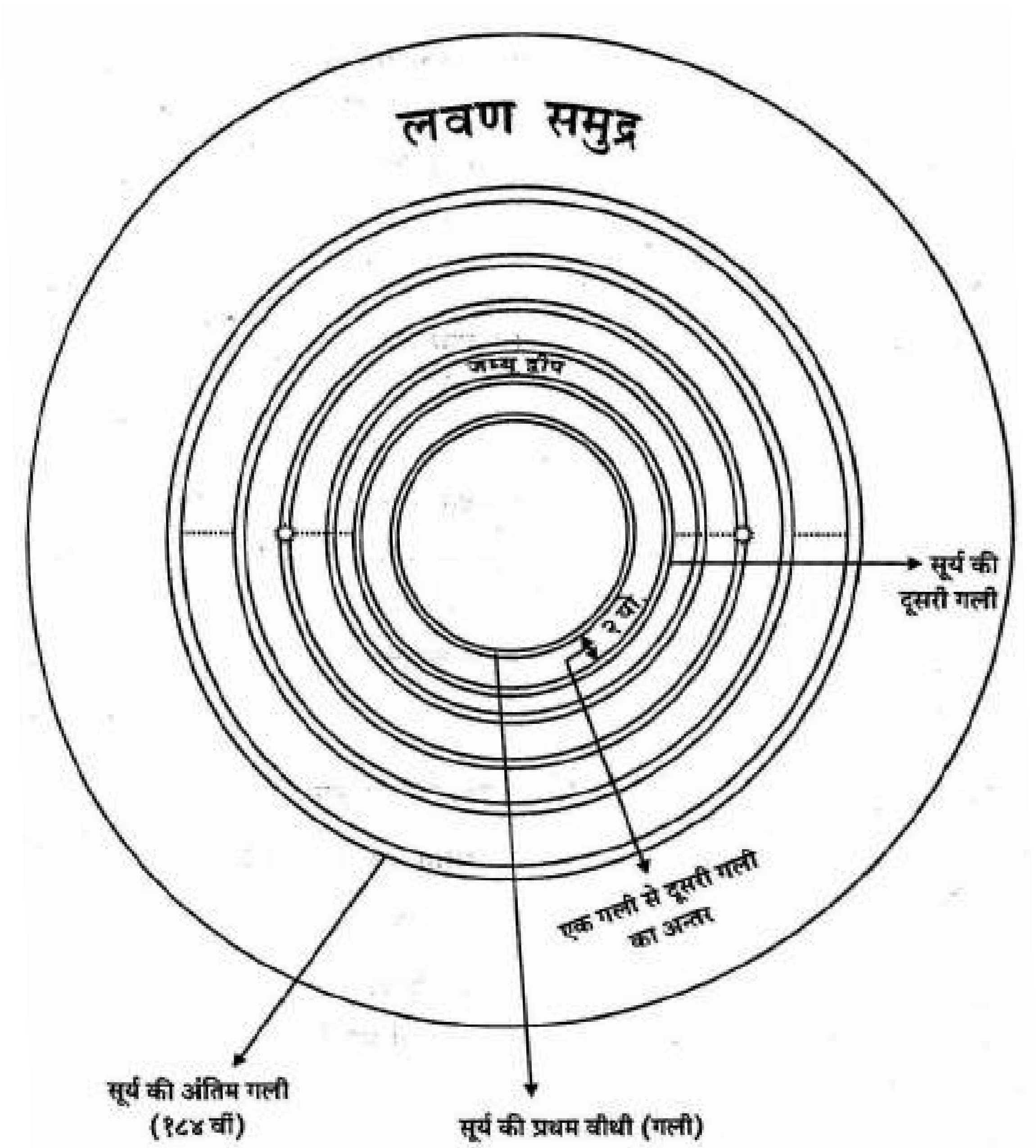

जम्बूद्वीप में दोनों सूर्यों का अन्तर

जम्बूद्वीप में दोनों सूर्यों का परस्पर अन्तर – जम्बूद्वीप का व्यास = एक लाख योजन है। जम्बूद्वीप के भीतर सूर्य का गमन क्षेत्र 180 योजन एक पार्श्व भाग में है, दूसरे पार्श्व भाग में भी 180 योजन है अत: $180 \times 2 = 360$ योजन दोनों पार्श्व भागों का गमन क्षेत्र है।

दोनों सूर्यों का अन्तर = जम्बूद्वीप का व्यास – दोनों पार्श्व भागों का गमन क्षेत्र

= 100000 – 360

= 99640 योजन (यही प्रथम गली में दोनों सूर्यों का अन्तर है।)

यही 99640 योजन अभ्यन्तर वीथी के सूची व्यास का प्रमाण है।

अभ्यन्तर वीथी में स्थित सूर्य और मेरु के बीच के अन्तर का प्रमाण – दोनों सूर्यों के अन्तर प्रमाण में से मेरु पर्वत का व्यास घटा कर आधा करने पर वीथी में स्थित सूर्य से मेरु के बीच का प्रमाण प्राप्त होता है।

$$\text{सूर्य से मेरु के बीच का अन्तर} = \frac{\text{दोनों सूर्यों का अन्तर – मेरु पर्वत का व्यास}}{2}$$

$$= \frac{99640-10000}{2} \text{ योजन} = \frac{89640}{2}$$

= 44820 योजन

अत: यह मेरु से अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में स्थित सूर्य के अन्तर का प्रमाण प्राप्त हुआ।

द्वितीय वीथीगत सूर्य और मेरु के बीच के अन्तर का प्रमाण – प्रथम वीथी में स्थित मेरु से सूर्य के अन्तर प्रमाण में सूर्य की दिवस गति का ($2\frac{48}{61}$ योजन) प्रमाण जोड़ देने से द्वितीय वीथीगत सूर्य और मेरु के बीच का अन्तर प्राप्त होता है।

द्वितीय वीथीगत सूर्य से मेरु के बीच का अन्तर = प्रथम वीथी में स्थित सूर्य से मेरु का अन्तर + सूर्य की दिवस गति

$= 44820 + 2\frac{48}{61}$ योजन

$= 44822\frac{48}{61}$ योजन

इसी प्रकार पूर्व-पूर्व गत सुमेरु और सूर्य के अन्तर प्रमाण में दिवस गति का प्रमाण मिलाते जाने पर उत्तरोत्तर वीथियों में स्थित सूर्य का मेरु से अन्तर प्राप्त हो जाता है।

अथवा

विवक्षित वीथियों का दिवसगति के प्रमाण में गुणा कर जो लब्ध प्राप्त हो उसे प्रथम वीथी में स्थित सूर्य और सुमेरु के अन्तर प्रमाण (44820 योजन) में जोड़ने से विवक्षित वीथी में स्थित सूर्य और सुमेरु का अन्तर प्राप्त हो जाता है।

जैसे–अन्तिम वीथी में स्थित सूर्य और सुमेरु का अन्तर $=44820+\left(2\frac{48}{61}\times183\right)$

$$=44820+\left(\frac{170}{61}\times183\right)$$

$$=44820+\frac{31110}{61}$$

$$=44820+510$$

= 45330 योजन

उत्तरोत्तर सूर्य से सूर्य के बीच का अन्तर – विवक्षित वीथी की संख्या से द्विगुण दिवस गति के प्रमाण को गुणित कर 99640 योजन प्रथम वीथी के विष्कम्भ में जोड़ देने से विवक्षित वीथीगत दो सूर्यों का पारस्परिक अन्तर प्राप्त हो जाता है और वही उस अपनी–अपनी वीथी के विष्कम्भ का प्रमाण होता है।

सूत्र – विवक्षित वीथीगत दो सूर्यों के बीच का अन्तर = दिवस गतिx2xविवक्षित वीथी की संख्या + प्रथम वीथी का विष्कम्भ

दूसरी वीथी के सूर्यों का अन्तर $=2\frac{48}{61}\times2\times1+99640$

$$=\frac{170}{61}\times2+99640=\frac{340}{61}+99640$$

$$=5\frac{35}{61}+99640$$

$=99645\frac{35}{61}$ योजन

मध्यम वीथी के दोनों सूर्यों का अन्तर $=2\frac{48}{61}\times2\times\frac{183}{2}+99640$

$$=\frac{170}{61}\times2\times\frac{183}{2}+99640$$

$$=\frac{340}{61}\times\frac{183}{2}+99640$$

$$=\frac{62220}{122}+\frac{99640}{1}$$

$$=\frac{62220+12156080}{122}$$

$=\frac{12218300}{122}=100150$ योजन

अन्तिम वीथी के दोनों सूर्यों का अन्तर $= 2\frac{48}{61} \times 2 \times 183 + 99640$

$= \frac{340}{61} \times 183 + 99640$

$= \frac{62220}{122} + \frac{99640}{1}$

$= \frac{62220 + 6078040}{61}$

$= \frac{6140260}{61} = 100660$ योजन

सूर्य की अभ्यन्तर (प्रथम) आदि वीथियों की परिधि – अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी के विष्कम्भ (99640 योजन) की परिधि का प्रमाण 315089 योजन है। इसमें द्विगुण दिवसगति के विष्कम्भ की परिधि का प्रमाण जोड़ देने से द्वितीय वीथी की परिधि प्राप्त होती है।

सूर्य की द्विगुण दिवस गति का विष्कम्भ $= 2\frac{48}{61} \times 2 = \frac{340}{61} = 5\frac{35}{61}$ योजन

द्विगुण दिवस गति के विष्कम्भ की परिधि = $\sqrt{(\text{व्यास})^2 \times 10}$

$= \sqrt{\frac{340}{61} \times \frac{340}{61} \times 10}$

$= \sqrt{\frac{1156000}{3721}} = \frac{1075}{61}$ योजन

अर्थात् $17\frac{38}{61}$ योजन

द्वितीय वीथी की परिधि **= प्रथम वीथी की परिधि + द्विगुण दिवस गति के विष्कम्भ की परिधि**

$= 315089 + 17\frac{38}{61}$

$= 315106\frac{38}{61}$ योजन

तृतीय वीथी की परिधि **= द्वितीय वीथी की परिधि + द्विगुण दिवस गति की विष्कम्भ की परिधि**

$= 315106\frac{38}{61} + 17\frac{38}{61}$

$= \frac{19221504}{61} + \frac{1075}{61}$

$= \frac{19221504 + 1075}{61} = \frac{19222579}{61} = 315124\frac{15}{61}$ योजन

इसी प्रकार आगे-आगे की वीथियों के परिधि प्रमाण को लाने के लिए पूर्व-पूर्व वीथी के परिधि प्रमाण में $17\frac{38}{61}$ योजनों के क्रमश: मिलाते जाना चाहिए।

अन्तिम वीथी की परिधि का प्रमाण = (प्रथम वीथी की परिधि + (द्विगुण दिवस गति की परिधि x विवक्षित वीथी की संख्या)

$$= \left\{315089+\left(17\frac{38}{61} \times 183\right)\right\}$$

$$= \left\{315089+\left(\frac{1075}{61} \times 183\right)\right\}$$

$$= \left\{\frac{315089}{1}+\frac{196725}{61}\right\}$$

$$= \frac{19220429 + 196725}{61}$$

$$= \frac{19417154}{61} = 318314 \text{ योजन}$$

इस प्रकार दिनगति ($2\frac{48}{61}$ योजन), द्विगुण दिन गति ($5\frac{35}{61}$ योजन) और द्विगुण दिन गति की परिधि ($17\frac{38}{61}$ योजन) के प्रमाण को मिलाने से क्रमश: सुमेरु और सूर्य का अन्तर, सूर्य से सूर्य का अन्तर और मार्ग की परिधि का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

जम्बूद्वीप में स्थित चन्द्रों से मेरु का अन्तर, दोनों चन्द्रमाओं का अन्तर तथा मार्ग की परिधि का प्रमाण

चन्द्रमा के चार क्षेत्र का प्रमाण $510\frac{48}{61}=\frac{31158}{61}$ योजन तथा चन्द्र बिम्ब का प्रमाण = $\frac{56}{61}$ योजन है। इसकी वीथियाँ 15 है। यह प्रतिदिन क्रमश: एक-एक गली में संचार करता है।

जम्बूद्वीप में अभ्यन्तर (पहली गली) वीथी में स्थित चन्द्रों का अन्तर = जम्बूद्वीप का व्यास

= 1 लाख योजन, जम्बूद्वीप में चन्द्रमा के दोनों पार्श्व भागों में चार क्षेत्र (गमन क्षेत्र) का प्रमाण

= (180x2) = 360 योजन प्रमाण।

दोनों चन्द्र का अन्तर = जम्बूद्वीप का व्यास – चन्द्रमा के दोनों पार्श्व भागों का गमन क्षेत्र

= 100000 – 360

= 99640 योजन

सुमेरु पर्वत से अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में स्थित चन्द्र का अन्तर =

$$= \frac{\textbf{दोनों चन्द्रों का अन्तर}-\textbf{सुमेरु का व्यास}}{2}$$

$$= \frac{99640-1000}{2} = \frac{89640}{2}$$

$$= 44820 \text{ योजन}$$

चन्द्रमा के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण =

$$= \frac{\textbf{चार क्षेत्र का प्रमाण}-15\ \textbf{वीथियों के विस्तार का प्रमाण}+\textbf{चन्द्र बिम्ब का प्रमाण}}{15-1}$$

चन्द्र की एक वीथी का विस्तार $\frac{56}{61}$ योजन है तो 15 वीथियों का विस्तार $= \frac{56}{61} \times 15 = \frac{840}{61}$ यो.

$$= \frac{\frac{31158}{61} - \frac{840}{61}}{15-1} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{\frac{31158-840}{61}}{14} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{\frac{30318}{61}}{14} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{30318}{61} \times \frac{1}{14} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{30318}{854} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{30318+784}{854} = \frac{31102}{854} = 36\frac{179}{427} \text{ योजन}$$

द्वितीय वीथी में स्थित चन्द्र से सुमेरू का अन्तर =

= प्रथम वीथी में स्थित चन्द्रमा से सुमेरु का अन्तर + दिवस गति का प्रमाण

$$= 44820+36\ \frac{179}{427} = \frac{44820}{1} + \frac{15551}{427}$$

$$= \frac{19138140+15551}{427} = \frac{19153691}{427}$$

$$= 44856\frac{179}{427} \text{ योजन}$$

तृतीय वीथी में स्थित चन्द्र से सुमेरु का अन्तर =

= द्वितीय वीथी में स्थित चन्द्र से सुमेरु का अन्तर + दिवस गति का प्रमाण

$$= \frac{19153691}{427} + \frac{15551}{427}$$

$$= \frac{19153691+15551}{427} = \frac{19169242}{427}$$

$$= 44892\frac{358}{427}$$ योजन

इसी प्रकार से पूर्व–पूर्व वीथी के अन्तर प्रमाण में उपर्युक्त चन्द्र दिवस गति का प्रमाण मिलाते जाने से चतुर्थादि वीथियों में स्थित चन्द्र और सुमेरु के बीच का अन्तर प्राप्त होगा।

बाह्य (अन्तिम वीथी) में स्थित चन्द्र और मेरू का अन्तर

= प्रथम वीथी में स्थित चन्द्र से सुमेरु का अन्तर+{दिवस गति का प्रमाणx(15−1)}

$$= 44820+\left\{36\frac{179}{427}\times(15-1)\right\}$$

$$= 44820+\left\{\frac{15551}{427}\times 14\right\}$$

$$= \frac{44820}{1} + \frac{217714}{427}$$

$$= \frac{19138140+217714}{427} = \frac{19355854}{427} = \frac{2765122}{61}$$

$$= 45329\frac{53}{61}$$ योजन

द्वितीय वीथियों में स्थित चन्द्रों से चन्द्रों का अन्तर –

= प्रथम वीथी में स्थित दोनों चन्द्रों के अन्तर का प्रमाण+द्विगुण दिवस गति

$$= 99640+\left\{36\frac{179}{427}\times 2\right\}$$

$$= 99640+\left\{\frac{15551}{427}\times 2\right\}$$

$$= \frac{99640}{1} + \frac{31102}{427}$$

$$= \frac{42546280+31102}{427} = \frac{42577382}{427}$$

$$= 99712\frac{358}{427}$$ योजन

तृतीय वीथियों में स्थित युगल चन्द्रों का अन्तर

= द्वितीय वीथी में स्थित चन्द्रों का अन्तर+द्विगुण दिवस गति

$$= 99712\frac{358}{427} + \left\{36\frac{179}{427} \times 2\right\}$$

$$= \frac{42577382}{427} + \left\{\frac{15551}{427} \times 2\right\}$$

$$= \frac{42577382}{427} + \frac{31102}{427} = \frac{42577382+31102}{427} = \frac{42608484}{427}$$

$= 99785\frac{289}{427}$ योजन

इसी प्रकार आगे भी जान लेना चाहिए।

15वीं (अन्तिम) वीथी में स्थित युगल चन्द्रों का अन्तर=

= प्रथम वीथी के चन्द्रों का अन्तर+द्विगुण दिवस गति x (15−1)

$$= 99640+\left\{36\frac{179}{427} \times 2\ (15-1)\right\}$$

$$= 99640+\left\{\frac{15551}{427} \times 2 \times 14\right\}$$

$$= \frac{99640}{1} + \frac{435428}{427} = \frac{42546280+435428}{427}$$

$= \frac{42981708}{427} = 100659\frac{45}{61}$ योजन

चन्द्र की द्विगुण दिवस गति का विष्कम्भ $= 36\frac{179}{427} \times 2 = \frac{15551}{427} \times 2$

$= \frac{31102}{427} = 72\frac{358}{427}$ योजन

चन्द्र की द्विगुण दिवस गति का परिधि= $\sqrt{(\text{व्यास})^2 \times 10}$

$$= \sqrt{\frac{31102}{427} \times \frac{31102}{427} \times 10}$$

$= \sqrt{\frac{9673344040}{182329}} = 230\frac{143}{427}$ योजन

चन्द्र की प्रथम वीथी की परिधि का प्रमाण = 315089 योजन है।

चन्द्र की द्वितीय वीथी की परिधि का प्रमाण =

= प्रथम वीथी की परिधि + द्विगुण दिवसगति के विष्कम्भ की परिधि

$= 315089 + 230\frac{143}{427}$

$= 315319\ \frac{143}{427}$ योजन

चन्द्र की अन्तिम (15वीं) वीथी की परिधि =

= प्रथम वीथी की परिधि + द्विगुण दिवसगति के विष्कम्भ की परिधि x(15−1)

$= 315089 + 230\frac{143}{427} \times 14 = \frac{315089}{1} + \frac{1376942}{427}$

$= \frac{134543003+1376942}{427} = \frac{135919945}{427}$

$= 318313\ \frac{294}{427}$ योजन

नोट– ❊ अभी चन्द्र-सूर्यों के अन्तरों को जाना, अब आगे भ्रमण करते हुए सूर्य के दिन-रात्रि व गति प्रमाण को जानेंगे.....

बाहर की चीज छोड़कर और
अन्दर की चीज ठहरकर प्राप्त की जाती है।

अध्याय–5

भ्रमण करते हुए सूर्य के दिन–रात्रि व गति का प्रमाण

जम्बूद्वीप की वेदी के पास 180 योजन की अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में जब सूर्य भ्रमण करता है तब दिन 18 मुहूर्त (14घं. 24 मिनट) का और रात्रि 12 मुहूर्त (9 घंटे 36 मिनट) की होती है। किन्तु जब वही सूर्य लवण समुद्र की बाह्य (अन्तिम) परिधि में भ्रमण करता है, तब दिन 12 मुहूर्त का और रात्रि 18 मुहूर्त की होती है।

कर्कट (कर्क) राशि पर स्थित सूर्य अभ्यन्तर परिधि में भ्रमण करता है और मकर राशि पर स्थित सूर्य बाह्य परिधि में भ्रमण करता है।

शंका–राशि की समाप्ति पर्यन्त दिन एवं रात्रि का प्रमाण उतना (18, 12) ही रहता है या घटता है?

समाधान–घटता है।

अब प्रतिदिन होने वाले हानिचय को कहते है– $\text{हानिचय} = \frac{\text{भूमि}-\text{मुख}}{\text{पद}-1}$

यहाँ भूमि=18 मुहूर्त, मुख=12 मुहूर्त, सूर्य की 184 वीथियाँ है, किन्तु अन्तराल 183 में ही

$$= \frac{18-12}{184-1} = \frac{6}{183} \text{ मुहूर्त} = \frac{2}{61} \text{ मुहूर्त (3 से अपवर्तित करने पर)}$$

जिस दिन सूर्य अभ्यन्तर वीथी में भ्रमण करता है, उस दिन 18 मुहूर्त का दिन होता है किन्तु जिस दिन दूसरी वीथी में भ्रमण करता है, उस दिन $\frac{2}{61}$ मूहूर्त घट जाता है।

अर्थात् $\frac{18}{1} - \frac{2}{61}$

$$\frac{1098-2}{61} = \frac{1096}{61} = 17\frac{59}{61} \text{ मुहूर्त का दिन}$$

तीसरी वीथी में भ्रमण करता है उस दिन $\frac{2}{61}$ मुहूर्त और घट जाता है।

अर्थात्- $\frac{1096}{61} - \frac{2}{61}$

$$\frac{1096-2}{61} = \frac{1094}{61} = 17\frac{57}{61} \text{ मुहूर्त का दिन}$$

इसी प्रकार प्रत्येक वीथी में $\frac{2}{61}$, $\frac{2}{61}$ घटते-घटते जिस दिन अन्तिम वीथी में पहुँचता है, उस दिन 12 मुहूर्त का दिन होता है।

इसी प्रकार अभ्यन्तर वीथी की ओर बढ़ते हुए प्रत्येक वीथी में $\frac{2}{61}$ मुहूर्त बढ़ते हैं। तब दिनमान $12\frac{2}{61}$, $12\frac{4}{61}$ इत्यादि क्रम से बढ़ते हुए अभ्यन्तर वीथी में 18 मुहूर्त का दिन हो जाता है।

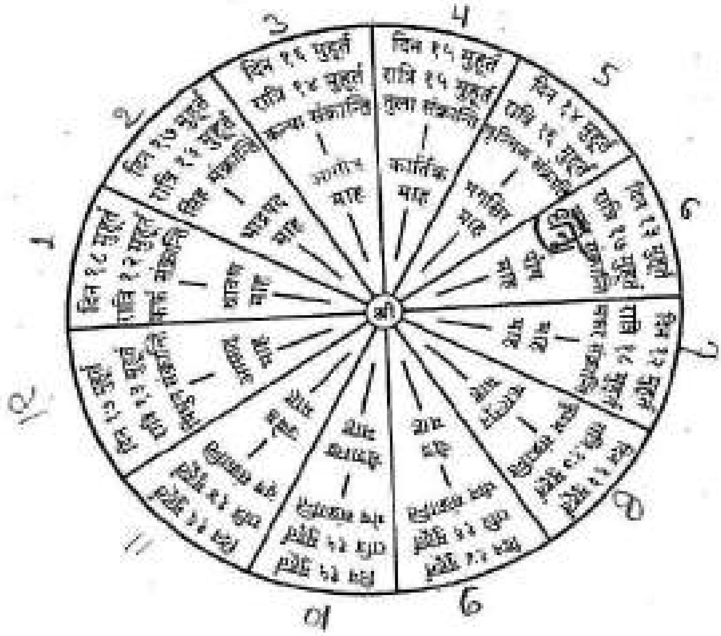

नोट– ✻ दिन और रात का भेद मनुष्य लोक अर्थात् अढाई द्वीप में ही होता है क्योंकि मनुष्य लोक के ही सूर्य–चन्द्रमा भ्रमण करते हैं, मेरु पर्वतों के चक्कर लगाते है, मनुष्य लोक के बाहर के सूर्य–चन्द्रमा स्थिर रहते हैं।

✻ सूर्य श्रावण माह में सबसे अभ्यन्तर परिधि में और माघ मास में सबसे बाह्य परिधि में रहता है। शेष महीनों में मध्यम परिधियों में रहता है।

प्रत्येक माह में दिनों की संख्या

जब छह माहों में 183 दिन होते है तब एक माह मे कितने दिन होंगे। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर प्रत्येक माह की दिन संख्या निम्न रुप से प्राप्त होती है–

1) श्रावण माह में $= \frac{183}{6} = \frac{61}{2} = 30\frac{1}{2}$ दिन

2) भाद्रपद माह तक $= \frac{61}{2} + \frac{61}{2} = \frac{61+61}{2} = \frac{122}{2} = 61$ दिन

3) आसोज माह तक $= \frac{61}{1} + \frac{61}{2} = \frac{122+61}{2} = \frac{183}{2}$ दिन

4) कार्तिक माह तक $= \frac{183}{2} + \frac{61}{2} = \frac{183+61}{2} = \frac{244}{2} = 122$ दिन

5) मार्गशीर्ष माह तक $= \frac{122}{1} + \frac{61}{2} = \frac{244+61}{2} = \frac{305}{2}$ दिन

6) पौष माह तक $= \frac{305}{2} + \frac{61}{2} = \frac{305+61}{2} = \frac{366}{2} = 183$ दिन

7) पुन: माघ माह में $= \frac{183}{6} = \frac{61}{2} = 30\frac{1}{2}$ दिन

8) फाल्गुन माह तक $= \frac{61}{2} + \frac{61}{2} = \frac{61+61}{2} = \frac{122}{2}$ =61 दिन

9) चैत्र माह तक $= \frac{61}{1} + \frac{61}{2} = \frac{122+61}{2} = \frac{183}{2}$ दिन

10) वैशाख माह तक $= \frac{183}{2} + \frac{61}{2} = \frac{183+61}{2} = \frac{244}{2}$ =122 दिन

11) ज्येष्ठ माह तक $= \frac{122}{1} + \frac{61}{2} = \frac{244+61}{2} = \frac{305}{2}$ दिन

12) आषाढ़ माह तक $= \frac{305}{2} + \frac{61}{2} = \frac{305+61}{2} = \frac{366}{2}$ =183 दिन

यही दिन क्रम से सूर्य के दक्षिणायन और उत्तरायण के हैं। अर्थात् श्रावण माह से पौष माह तक (183 दिन) सूर्य दक्षिणायन तथा माघ माह तक (183 दिन) उत्तरायण रहता है।

सर्व परिधियाँ

सुमेरु पर्वत की परिधि, अभ्यन्तर वीथी की, मध्यम वीथी की, बाह्य वीथी की और जल में लवण समुद्र के व्यास के छठे भाग की (पाँच) परिधियों का प्रमाण निम्न है–

सुमेरु पर्वत का विष्कम्भ = 10,000 योजन

सुमेरु पर्वत की परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 \times 10}$

$= \sqrt{(10,000)^2 \times 10}$

= 31622 योजन

अभ्यन्तर वीथी का विष्कम्भ = जम्बूद्वीप का प्रमाण –(180x2=360)

= 100000–360=99640 योजन

अभ्यन्तर वीथी की परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 \times 10}$

$= \sqrt{(99640)^2 \times 10}$

= 315089 योजन

मध्यम वीथ का विष्कम्भ= चार क्षेत्र 510÷2=255 योजन अर्ध चार क्षेत्र। 255–180 (जम्बूद्वीप का चार क्षेत्र) =75x2 = 150 योजन (यह उभय पार्श्व भागों का प्रमाण है। अत: 100000+150 =100150 योजन (यह मध्यम वीथी का सूची व्यास प्राप्त हुआ।)

मध्यम वीथी की परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 x 10}$

$= \sqrt{(100150)^2 x 10}$

$= \sqrt{100300225}$

= 316702 योजन

बाह्य वीथी का विष्कम्भ = लवण समुद्र संबंधी चार क्षेत्र 330x2 =660 योजन (उभय पार्श्व भागों का), अत: 100000+660=100660 योजन।

बाह्य वीथी की परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 x 10}$

$= \sqrt{(100660)^2 x 10}$

= 318314 योजन

जलषष्ठ भाग का विष्कम्भ = लवण समुद्र का वलय व्यास 200000 योजन है। छठे भाग का विष्कम्भ प्राप्त करने के लिए इसमें 6 का भाग देंगे $\frac{200000}{6} = \frac{100000}{3}$ (2 से अपवर्तित करने पर) उभय पार्श्व भागों का ग्रहण करने पर $\frac{100000}{3} x 2 = \frac{200000}{3}$ योजन प्राप्त हुआ।

जलषष्ठ भाग का विष्कम्भ = **जम्बूद्वीप का व्यास+जलषष्ठ भाग के उभय पार्श्व भागों का विष्कम्भ**

$= \frac{100000}{1} + \frac{200000}{3}$

$= \frac{300000+200000}{3} = \frac{500000}{3} = 166666\frac{2}{3}$ योजन

जलषष्ठ भाग की परिधि $= \sqrt{(\text{व्यास})^2 x 10}$

$= \sqrt{\left(\frac{500000}{3}\right)^2 x 10}$

$= \sqrt{\frac{2500000000000}{9}}$

= 527046 योजन

अभ्यन्तर आदि वीथियों की परिधियों का प्रमाण समान नहीं है। अर्थात् वे हीनाधिक प्रमाण को लिए हुए हैं। दो सूर्य प्रत्येक वीथी को 60 मुहूर्त में अपने संचार द्वारा समाप्त कर लेते हैं, अत: प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

प्रश्न–समान काल में हीनाधिक प्रमाण वाली परिधियों को सूर्य कैसे पूरा करते हैं ?

उत्तर– सूर्य–चन्द्र का गमन अभ्यन्तर वीथी में अत्यन्त मन्द है किन्तु जैसे–जैसे वे द्वितीयादि वीथियों में पहुँचते जाते हैं, वैसे–वैसे उनकी गति क्रमशः तेज होती जाती है। इसी प्रकार बाह्य वीथी में सबसे तेजगति है। वहाँ से वे जैसे–जैसे भीतर प्रवेश करते जाते हैं, वैसे–वैसे उनकी चाल क्रमशः मन्द होती जाती है। इस प्रकार समान समय में वे दोनों विसदृश वीथी के प्रमाण को पूरा करते है।

सूर्य–चन्द्रमा के गमन प्रकार को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं–

प्रथम भाग में सूर्य चन्द्र की गमन की गति गज सदृश (अतिमन्द) है, मध्यम मार्ग में घोड़े की चाल सदृश (मध्यम गति) और अन्तिम मार्ग में दोनों की चाल सिंह सदृश (तेजगति) है।

अभ्यन्तर वीथी में सूर्य का एक मुहूर्त का गति–प्रमाण –

जब 60 मुहूर्त में सूर्य 315089 योजन क्षेत्र में संचार करता है तब एक मुहूर्त में कितने योजन संचार करेगा ? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{315089}{60} = 5251\frac{29}{60} \text{ योजन}$$

अभ्यन्तर वीथी में सूर्य का एक मिनट में गति–प्रमाण–जब सूर्य 48 मिनिट (एक मुहूर्त) में $5251\frac{29}{60}$ योजन चलता है तो एक मिनिट में कितना चलेगा ? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{315089}{60} \div 48 = \frac{315089}{60} \times \frac{1}{48} = \frac{315089}{2880} = 109\frac{1169}{2880} \text{ योजन}$$

अर्थात् सूर्य अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में एक मिनट में $109\frac{1169}{2880}$ योजन चलता है।

मध्यम वीथी में सूर्य का एक मुहूर्त का गति प्रमाण – मध्यम वीथी की परिधि = 316702 योजन

जब 60 मुहूर्त में सूर्य 316702 योजन क्षेत्र में संचार करता है तब एक मुहूर्त में कितने योजन संचार करेगा ? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{316702}{60} = 5278\frac{11}{30} \text{ योजन}$$

मध्यम वीथी में सूर्य का एक मिनिट में गति प्रमाण = जब सूर्य 48 मिनिट में (1 मुहूर्त) $= 5278\frac{11}{30}$ योजन जाता है, तब 1 मिनिट में कितने योजन जायेगा ? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{316702}{60} \div 48 = \frac{316702}{60} \times \frac{1}{48} = \frac{316702}{2880} = 109\frac{1391}{1440} \text{ योजन}$$

अर्थात् सूर्य मध्यम वीथी में एक मिनट में $109\frac{1391}{1440}$ योजन चलता है।

बाह्य वीथी में सूर्य का एक मुहूर्त का गति प्रमाण = बाह्य वीथी की परिधि=318314 योजन

जब 60 मुहूर्त में सूर्य 318314 योजन क्षेत्र में संचार करता है तब एक मूहूर्त में कितने योजन संचार करेगा? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{318314}{60} = 5305\frac{7}{30} \text{ योजन}$$

नोट–यदि दूरी कोस में निकालना हो तो 2000 का गुणा करें यदि मील में निकालना हो तो 3000 का गुणा करें यदि किलोमीटर में निकालना है तो 6000 का गुणा करें जैसे आभ्यन्तर परिधि में सूर्य एक मिनिट में $109\frac{1169}{2880}$ योजन चलता है।

अथवा $109\frac{1169}{2880}$x2000= कुछ अधिक 218019 कोस प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार सभी परिधि या व्यास प्राप्त करना चाहे वह कर सकते हैं।

बाह्य वीथी में सूर्य का एक मिनिट में गति–प्रमाण = जब सूर्य 48 मिनिट में (1 मुहूर्त) $=5305\frac{7}{30}$ योजन जाता है, तब 1 मिनिट में कितना योजन जायेगा? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{318314}{60} \div 48 = \frac{318314}{60} \times \frac{1}{48} = \frac{318314}{2880} = 110\frac{1514}{2880} \text{ या } 110\frac{757}{1440} \text{ योजन}$$

अर्थात् सूर्य बाह्य (अन्तिम) वीथी में एक मिनट में $110\frac{757}{1440}$ योजन चलता है।

इसको कि.मी. में प्राप्त करना हो तो $110\frac{757}{1440}$x6000= 6631541667 कि.मी.

अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में चन्द्रमा का एक मुहूर्त का गति–प्रमाण–सूर्य को अपनी परिधि पूर्ण करने में कुल 60 मुहूर्त (48 घंटे) लगते हैं किन्तु चन्द्रमा को उसी प्रमाण वाली अपनी परिधि पूर्ण करने में $62\frac{23}{221}$ मुहूर्त (कुछ कम 50 घंटे) लगते है।

जब $\frac{13725}{221}$ मुहूर्तों में 315089 योजन चलता है तब एक मुहूर्त में कितने योजन चलेगा? (त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{315089}{1} \div \frac{13725}{221} = \frac{315089}{1} \times \frac{221}{13725} = \frac{69634669}{13725} = 5073\frac{7744}{13725} \text{ योजन}$$

अभ्यन्तर वीथी में चन्द्रमा का एक मिनिट में गति–प्रमाण = जब चन्द्रमा 48 मिनिट में (1 मुहूर्त) $=5073\frac{7744}{13725}$ योजन गमन करता है, तब 1 मिनिट में कितना योजन चलेगा?(त्रैराशिक)

$$\frac{69634669}{13725} \div 48 = \frac{69634669}{13725} \times \frac{1}{48} = \frac{69634669}{658800} = 105\frac{460669}{658800} \text{ योजन}$$

अर्थात् चन्द्रमा अभ्यन्तर वीथी में एक मिनट में $105\frac{460669}{658800}$ योजन चलता है।

बाह्य वीथी में चन्द्रमा का एक मुहूर्त का गति–प्रमाण = बाह्य वीथी की परिधि=318314 योजन है।

जब $\frac{13725}{221}$ मुहूर्त में 318314 योजन चलता है तब एक मुहूर्त में कितने योजन चलेगा?
(त्रैराशिक करने पर)

$$\frac{318314}{1} \div \frac{13725}{221} = \frac{318314}{1} \times \frac{221}{13725} = \frac{70347394}{13725} = 5125\frac{6769}{13725} \text{ योजन}$$

नोट–अगर कोस में निकलना है तो 2000 से, यदि मील में निकालना है तो 4000 से और यदि किलोमीटर में निकालना है तो कुछ अधिक 6000 से गुणा करें।

बाह्य वीथी में चन्द्रमा का एक मिनिट में गति–प्रमाण = जब चन्द्रमा 48 मिनिट में (1 मुहूर्त) $=5125\frac{6769}{13725}$ योजन गमन करता है, तब 1 मिनिट में कितना योजन चलेगा? (त्रैराशिक)

$$\frac{70347394}{13725} \div 48 = \frac{70347394}{13725} \times \frac{1}{48} = \frac{70347394}{658800} = 106\frac{514594}{658800} \text{ योजन}$$

अर्थात् चन्द्रमा बाह्य वीथी में एक मिनट में $106\frac{514594}{658800}$ योजन चलता है।

नोट– यहाँ हमने भ्रमण करते हुए सूर्य के दिन रात्रि का प्रमाण व गति का प्रमाण जाना, अब आगे भरत क्षेत्र की अपेक्षा सूर्य उदय व सूर्य अस्त कब होता है इसे जानते हैं....

सौ अंकल की अपेक्षा एक पिता श्रेष्ठ है,
वैसे ही सौ संतों की अपेक्षा एक गुरुश्रेष्ठ है क्योंकि
संत से दर्शन और गुरु से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

अध्याय–6
सूर्य उदय व सूर्य अस्त कब?

भरत क्षेत्र की अपेक्षा सूर्य उदय व सूर्य अस्त कब होता है, उसे कहते हैं–

अभ्यन्तर वीथी में स्थित सूर्य के चक्षु इन्द्रिय के स्पर्श का मार्ग निकालने के लिए कहते हैं–

चक्षु इन्द्रिय के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण = प्रथम (अभ्यन्तर) परिधि के प्रमाण को 60 से भाजित करके प्राप्त लब्ध को 9 से गुणित करने पर चक्षु इन्द्रिय के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है।

यथा– $= \dfrac{\text{अभ्यन्तर परिधि}}{60} \times 9$

$$= \frac{315089}{60} \times 9$$

$$= \frac{315089 \times 3}{20} \text{ (3 से अपवर्तित करने पर)}$$

$$= \frac{945267}{20} = 47263\frac{7}{20} \text{ योजन}$$

अर्थात् चक्षु इन्द्रिय के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र $47263\frac{7}{20}$ योजन प्रमाण प्राप्त होता है।

अयोध्या नगरी के मध्य में स्थित चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य कब देखा जाता है इसका प्रमाण कहते हैं–

निषधाचल पर्वत का चाप $=123768\frac{18}{19}$ योजन है। इस चाप प्रमाण के अर्ध भाग में से चक्षु इन्द्रिय के उत्कृष्ट क्षेत्र को घटाने पर इसका प्रमाण प्राप्त होता है।

यथा– $\dfrac{\text{निषधाचल पर्वत का चाप}}{2}$ **– चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट क्षेत्र**

$$= \frac{123768\frac{18}{19}}{2} - 47263\frac{7}{20}$$

$$= \frac{2351610}{19} \times \frac{1}{2} - \frac{945267}{20}$$

$$= \frac{2351610}{38} - \frac{945267}{20}$$

$$= \frac{1175805}{19} - \frac{945267}{20}$$

$$= \frac{23516100-17960073}{380} = \frac{5556027}{380}$$

$$= 14621\frac{47}{380} \text{ योजन}$$

अर्थात् प्रथम वीथी में भ्रमण करता हुआ सूर्य जब निषध कुलाचल के उत्तर तट से $14621\frac{47}{380}$ योजन ऊपर आता है तब अयोध्या नगरी के मध्य में स्थित महापुरुषों (चक्रवर्ती) के द्वारा देखा जाता है। इसी को भरत क्षेत्र की अपेक्षा सूर्य उदय कहते हैं।

इस उपर्युक्त प्रमाण को निषधाचल की पार्श्व भुजा में से घटा देने पर सूर्य अस्त कब होता है इसका प्रमाण प्राप्त होता है।

निषधाचल पर्वत की पार्श्व भुजा = 20196 योजन

भरत क्षेत्र की अपेक्षा अस्त का प्रमाण = निषधाचल की पार्श्वभुजा – सूर्य उदय का प्रमाण

$$= \frac{20196}{1} - \frac{5556027}{380}$$

$$= \frac{7674480-5556027}{380} = \frac{2118453}{380}$$

$$= 5574\frac{333}{380}$$ अर्थात् (कुछ कम 5575 योजन)

अत: प्रथम परिधि में भ्रमण करता हुआ सूर्य जब निषधाचल पर्वत के दक्षिण तट पर कुछ कम 5575 योजन जाता है तब सूर्य अस्त हो जाता है।

(चित्र देखिये)

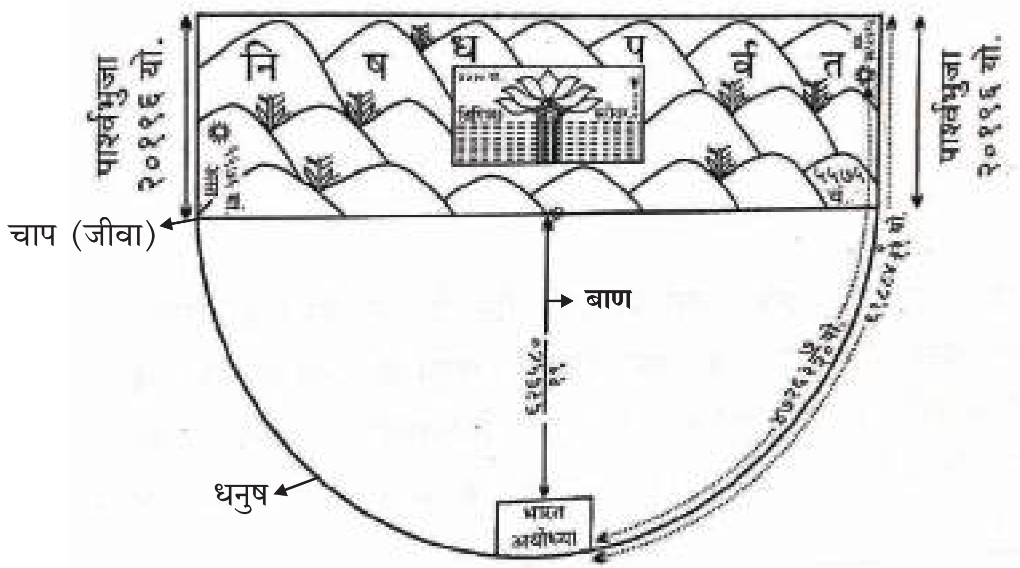

नोट– श्रावण कृष्णा प्रतिपदा तिथि से युग का प्रारंभ होता है इसमें अलग–अलग दो युग संबंधी आवृत्तियाँ होती है जिनका विवेचन लोक विज्ञान ग्रंथ में अर्थात् इस ग्रंथ के दूसरे भाग में करेंगे कृपया वहाँ से जानने का प्रयास करें।

हरि क्षेत्र व निषधाचल पर्वत के बाण, चाप व पार्श्वभुजा को प्राप्त करने का विधान कहते है–

निषधाचल पर्वत के बाण का प्रमाण – जम्बूद्वीप की वेदी तथा हरि वर्ष क्षेत्र और निषधाचल के बीच धनुषाकार है अत: हरिक्षेत्र व निषध पर्वत से लेकर जम्बूद्वीप की वेदी पर्यन्त के अन्तराल क्षेत्र को बाण कहते है। उसका प्रमाण लाते है–

भरत क्षेत्र की शलाका	= 1	नील पर्वत की शलाका	=32
हिमवान की शलाका	= 2	रम्यक क्षेत्र की शलाका	=16
हैमवत क्षेत्र की शलाका	= 4	रुक्मी पर्वत की शलाका	= 8
महाहिमवान की शलाका	= 8	हैरण्यवत क्षेत्र की शलाका	=4
हरिक्षेत्र की शलाका	= 16	शिखरी पर्वत की शलाका	=2
निषधाचल की शलाका	= 32	ऐरावत क्षेत्र की शलाका	=1
विदेह क्षेत्र की शलाका	= 64		

इस प्रकार कुल शलाकाओं का योग 190 है। इसमें भरत क्षेत्र से हरिवर्ष क्षेत्र पर्यन्त की शलाकाओं का प्रमाण (1+2+4+8+16)=31 है इन्हीं 31 शलाकाओं का प्रमाण प्राप्त करने के लिए "**अन्तधणं गुणगुणियं, आदि–विहीणं रुऊणुत्तर भजियं।**"

इस सूत्र के अनुसार

$$\text{शलाकाओं का प्रमाण} = \frac{(\text{अन्तधन} \times \text{गुणकार}) - \text{आदिधन}}{\text{गुणकार}-1}$$

यहाँ अन्तधनं = हरिवर्ष क्षेत्र की 16 शलाका, गुणकार = प्रत्येक शलाका दूनी–दूनी होती गई है, अत: गुणकार = 2 है, आदिधन = भरतक्षेत्र की 1 शलाका।

$$\text{हरिक्षेत्र की शलाकाओं का प्रमाण} = \frac{(16 \times 2) - 1}{2-1}$$

$$= \frac{32-1}{1} = 31 \text{ शलाकाऐं।}$$

$$\text{इसी प्रकार निषधाचल की शलाकाऐं} = \frac{(32 \times 2) - 1}{2-1}$$

$$= \frac{64-1}{1} = 63 \text{ शलाकाऐं।}$$

जम्बूद्वीप का विस्तार 100000 योजन का एवं इसकी कुल शलाकाऐं 190 है।

जब 190 शलाकाओं का क्षेत्र = 100000 योजन

$$\text{तब 31 शलाकाओं का क्षेत्र होगा} = \frac{100000}{190} \times 31 = \frac{310000}{19} \text{ योजन}$$

$$\text{अत: हरिक्षेत्र का बाण} = \frac{310000}{19} \text{ या } 16315\frac{15}{19} \text{ योजन}$$

प्रश्न – वाण किसे कहते हैं?

उत्तर – सीधी पंक्ति में जो स्थित रहता है उसे वाण कहते है।

तब 63 शलाकाओं का क्षेत्र होगा $= \frac{100000}{190} \times 63 = \frac{6300000}{190}$ योजन

अत: निषधाचल का बाण = $\frac{630000}{19}$ या $33157\frac{17}{19}$ योजन प्राप्त होता है।

चक्षु अध्वान क्षेत्र – यह चक्षु अध्वान क्षेत्र हरिवर्ष एवं निषधाचल के बाण प्रमाण में से जम्बूद्वीप का चारक्षेत्र (180 योजन) घटाने पर प्राप्त होता है।

हरिवर्ष क्षेत्र का चक्षु अध्वान क्षेत्र = हरिवर्ष के बाण का प्रमाण – जम्बूद्वीप का चार क्षेत्र प्रमाण

$$= \frac{310000}{19} - \frac{180}{1}$$

$$= \frac{310000-3420}{19} = \frac{306580}{19} \text{ योजन}$$

निषधाचल का चक्षु अध्वान क्षेत्र = निषधाचल के बाण का प्रमाण–जम्बूद्वीप का चारक्षेत्र प्रमाण

$$= \frac{630000}{19} - \frac{180}{1}$$

$$= \frac{630000-3420}{19} = \frac{626580}{19} \text{ योजन}$$

नोट– भरत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्व में सूर्य उदय का प्रमाण निकालने में निषधाचल के चाप का प्रयोग किया था उसी चाप प्रमाण को प्राप्त करने के लिए यहाँ निषधाचल का बाण प्राप्त किया गया है। अब इनकी सहायता से चाप का प्रमाण प्राप्त करेंगे।

प्रश्न – चाप किसे कहते हैं?

उत्तर – धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) को यहाँ चाप कहा गया है।

हरिवर्ष क्षेत्र के चाप (धनुष) का प्रमाण= $\sqrt{(6 \text{ बाण}^2 + \text{जीवा}^2)}$

इसके लिए पहले जीवा का प्रमाण जानना आवश्यक है।

अत: जीवा का प्रमाण = $\sqrt{(\text{व्यास}-\text{बाण}) \times 4 \times \text{बाण}}$

यहाँ व्यास = जम्बूद्वीप का विस्तार–चारक्षेत्र के दोनो पार्श्व भागों का प्रमाण

$$= 100000-180\times2$$

$$= 100000-360 = 99640 \text{ योजन}$$

$$\text{बाण} = \frac{306580}{19} \text{ योजन}$$

हरिवर्ष क्षेत्र की जीवा का प्रमाण $= \sqrt{\left(\frac{99640}{1} - \frac{306580}{19}\right) 4 \times \frac{306580}{19}}$

$= \sqrt{\left(\frac{1893160 - 306580}{19}\right) \times \frac{1226320}{19}}$

$= \sqrt{\frac{1586580}{19} \times \frac{1226320}{19}}$

$= \sqrt{\frac{1945654785600}{361}} = \frac{1394867}{19}$

$= 73414 \frac{1}{19}$ योजन

हरिवर्ष क्षेत्र के चाप का प्रमाण $= \sqrt{6 \times \left(\frac{306580}{19}\right)^2 + \left(\frac{1394867}{19}\right)^2}$

$= \sqrt{6 \times \frac{93991296400}{361} + \frac{1945654785600}{361}}$

$= \sqrt{\frac{563947778400 + 1945654785600}{361}}$

$= \sqrt{\frac{2509602564000}{361}}$

$= \frac{1584172}{19} = 83377 \frac{9}{19}$ योजन

निषध पर्वत के चाप का प्रमाण $= \sqrt{(6 \times \text{बाण}^2 + \text{जीवा}^2)}$

इसके लिए पहले जीवा का प्रमाण ज्ञात करना चाहिए।

अतः निषध पर्वत की जीवा का प्रमाण $= \sqrt{(\text{व्यास} - \text{बाण})\, 4 \times \text{बाण}}$

यहाँ व्यास पूर्वोक्त = 99640 योजन, बाण $= \frac{626580}{19}$ योजन

निषध पर्वत की जीवा का प्रमाण $= \sqrt{\left(\frac{99640}{1} - \frac{626580}{19}\right) 4 \times \frac{626580}{19}}$

$= \sqrt{\left(\frac{1893160 - 626580}{19}\right) 4 \times \frac{626580}{19}}$

$= \sqrt{\frac{1266580}{19} \times \frac{2506320}{19}}$

$= \sqrt{\frac{3174454785600}{361}}$

$= \frac{1781699}{19} = 93773 \frac{10}{19}$ योजन

अतः यह जीवा का प्रमाण प्राप्त हुआ।

निषध पर्वत के चाप का प्रमाण $= \sqrt{6 \times \left(\frac{626580}{19}\right)^2 + \left(\frac{1781699}{19}\right)^2}$

$$= \sqrt{6 \times \frac{392602496400}{361} + \frac{3174454785600}{361}}$$

$$= \sqrt{\frac{2355614978400}{361} + \frac{3174454785600}{361}}$$

$$= \sqrt{\frac{2355614978400+3174454785600}{361}}$$

$$= \sqrt{\frac{5530069764000}{361}}$$

$= \frac{2351610}{19} = 123768\frac{18}{19}$ योजन

निषधाचल की पार्श्वभुजा का प्रमाण = $\frac{\text{निषधाचल के चाप का प्रमाण}-\text{हरिवर्ष क्षेत्र के चाप का प्रमाण}}{2}$

$$= \frac{\frac{2351610}{19} - \frac{1584172}{19}}{2}$$

$$= \frac{2351610-1584172}{19} \times \frac{1}{2}$$

$= \frac{767438}{38} = 20195\frac{28}{38}$ अथवा 20196 योजन (लगभग)

नोट– दक्षिण तट के उत्तर तट पर्यन्त चाप का जो प्रमाण है, उसे जीवा कहते हैं।

✻ यहाँ हमने सूर्य उदय व सूर्य अस्त के बारे में जाना, आगे हम सूर्य–चन्द्रमा के उदय स्थान व सूर्य के आताप क्षेत्र को जानने का प्रयास करते हैं...

प्रथमानुयोग–कषायों को मंद करता है,
करणानुयोग–परिणामों को मजबूत करता है
चरणानुयोग–परिणामों को निर्मल करता है और
द्रव्यानुयोग–आत्मा का आस्वाद कराता है।

अध्याय–7
सूर्य व चन्द्रमा के उदय स्थान व सूर्य के आताप क्षेत्र

एक–एक वीथी में सूर्य–चन्द्रमा के दिखाई देने का नाम उदय है।

सूर्य के प्रथम वीथी (गली) में होने से दक्षिणायन का और अंतिम वीथी (गली) में होने से उत्तरायण का प्रारम्भ होता है।

दक्षिणायन सूर्य के उदय स्थान – सूर्य का सम्पूर्ण गमन क्षेत्र 510 योजन है। इसमें सूर्य के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण $2\frac{48}{61}$ या $\frac{170}{61}$ योजन है। उपर्युक्त चार क्षेत्र के प्रमाण में प्रतिदिन गमन क्षेत्र का भाग देने से उदय स्थानों की प्राप्ति होती है।

यदि $\frac{170}{61}$ योजन गतिमान क्षेत्र में सूर्य का एक उदय है तो 510 योजन क्षेत्र में कितने उदय होंगे? (त्रैराशिक करने पर) - $\frac{510 \times 61}{170} = \frac{31110}{170} = 183$ उदय स्थान

चार क्षेत्र के अन्त तक शेष क्षेत्र में सूर्य बिम्ब के $\frac{48}{61}$ योजन द्वारा रुद्ध क्षेत्र का एक एक उदय स्थान है अर्थात् सम्पूर्ण चार क्षेत्र में कुल 184 उदय स्थान प्राप्त हुए।

चार क्षेत्र में सूर्य की वीथियाँ भी 184 ही है। अत: यह सिद्ध हुआ कि एक वीथी में एक ही उदय स्थान होता है।

भरत क्षेत्र की अपेक्षा निषधाचल पर 63, हरिवर्ष क्षेत्र में 2, लवणसमुद्र में 119 उदय स्थान होते है। (63+2+199=184 उदय स्थान)।

प्रथम वीथी का प्रथम उदय स्थान उत्तरायण संबंधी है इसलिए 63–1=62 उदय स्थान निषधाचल पर हुए अत: दक्षिणायण संबंधी उदय स्थान 183 होते हैं।

अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी से 63वीं वीथी तक स्थित रहने वाला सूर्य निषधाचल के ऊपर उदय होता है। जो भरतक्षेत्र के निवासियों द्वारा दृश्यमान है। 64वीं और 65वीं वीथी में रहने वाला सूर्य हरिक्षेत्र में उदय होता है तथा 66वीं वीथी से अन्तिम वीथी पर्यन्त रहने वाला सूर्य लवण समुद्र के ऊपर उदित होता है।

इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा 63 उदय स्थान नील पर्वत पर, 2 रम्यक् क्षेत्र में और 119 उदय स्थान लवण समुद्र पर है।

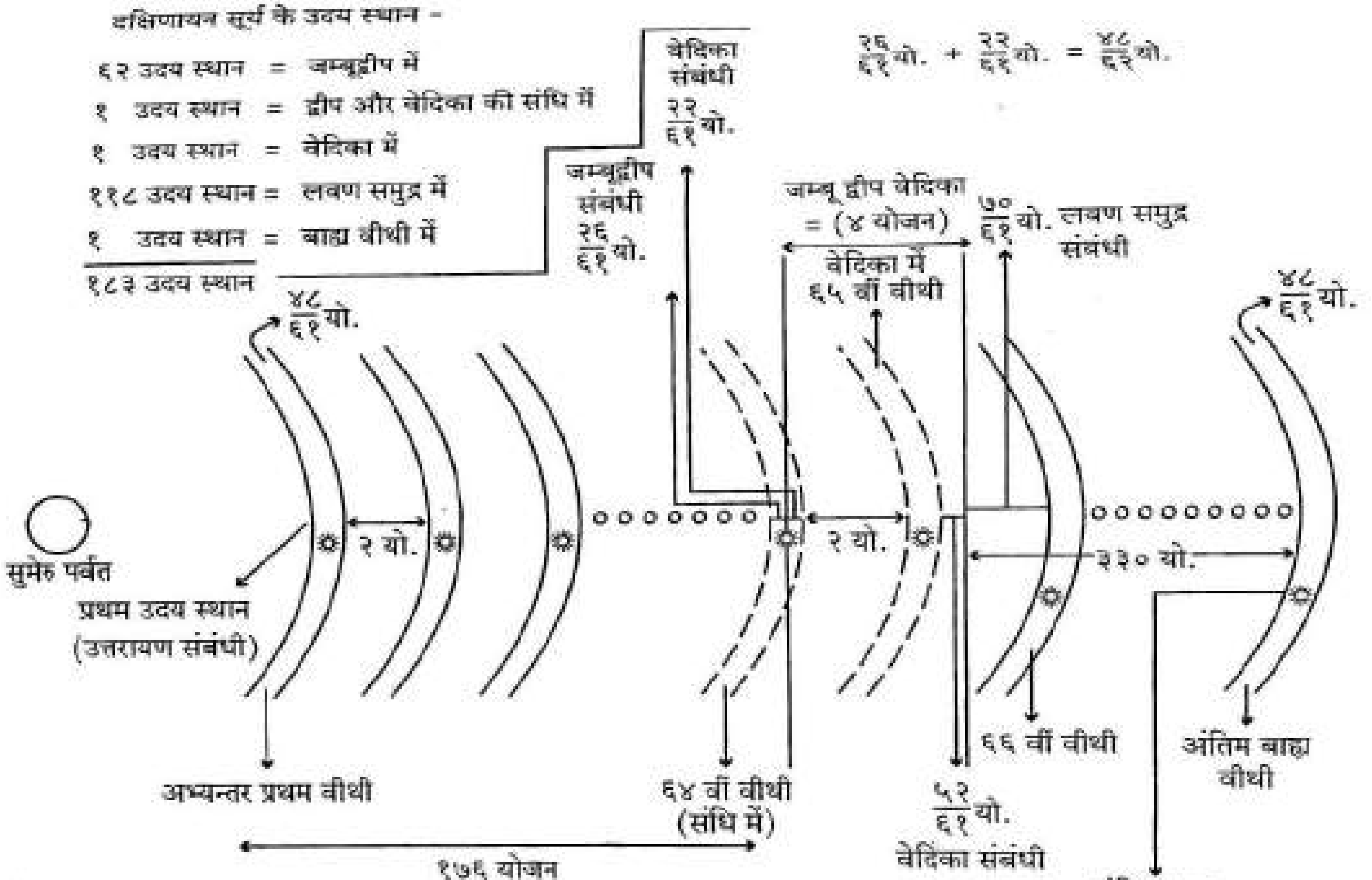

६३ उदय स्थान - प्रथम उदय स्थान (उत्तरायण संबंधी)
= ६२ उदय स्थान

सुमेरु पर्वत के चारों ओर इसी प्रकार की रचना है।

दक्षिणायन चन्द्रमा के उदय स्थान – चन्द्रमा का सम्पूर्ण गमन क्षेत्र $510\frac{48}{61}$ योजन है।

इतने क्षेत्र में चन्द्रमा की 15 वीथियाँ है। इन वीथियों में चन्द्रमा का दृश्यमान होना ही उनका उदय कहलाता है। वीथियों में चन्द्र बिम्ब के द्वारा रूद्ध $\frac{56}{61}$ योजन क्षेत्र का नाम पथ व्यास है। वीथियों के बीच–बीच में $35\frac{214}{427}$ योजनों का अन्तराल है, इसी का नाम अन्तर है।

चन्द्रमा के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण = पथव्यास + अन्तर

$$= 35\frac{214}{427} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{15159}{427} + \frac{56}{61}$$

$$= \frac{15159+392}{427} = \frac{15551}{427} = 36\frac{172}{427} \text{ योजन}$$

यदि $36\frac{172}{427}$ योजन गतिमान क्षेत्र में चन्द्रमा का एक उदय स्थान है तो $510\frac{48}{61}$ योजन वाले क्षेत्र में कितने उदय स्थान होंगे ? (त्रैराशिक करने पर)

$$510\frac{48}{61} \div 36\frac{172}{427} = \frac{31158}{61} \div \frac{15551}{427}$$

$$\frac{31158}{61} \times \frac{427}{15551} = \frac{13304466}{948611} \text{ योजन} = 14 \text{ उदय स्थान}$$

चार क्षेत्र के अन्त तक शेष क्षेत्र में चन्द्र बिम्ब के $\frac{56}{61}$ योजन द्वारा रूद्ध क्षेत्र का एक उदय स्थान है अर्थात् सम्पूर्ण चार क्षेत्र में कुल 15 उदय स्थान प्राप्त हुए है।

सम्पूर्ण चार क्षेत्र में चन्द्रमा की वीथियाँ भी 15 ही है। अत: सिद्ध हुआ कि एक वीथी में एक ही उदय स्थान होता है।

अत: लवण समुद्र संबंधी चार क्षेत्र में 10 उदय स्थान व जम्बूद्वीप संबंधी चार क्षेत्र में 5 उदय स्थान है अर्थात् कुल 15 उदय स्थान है।

उत्तरायण में चन्द्र के उदयस्थान –
जम्बूद्वीप में – ५ उदयस्थान
लवणसमुद्र में – ९ ,,

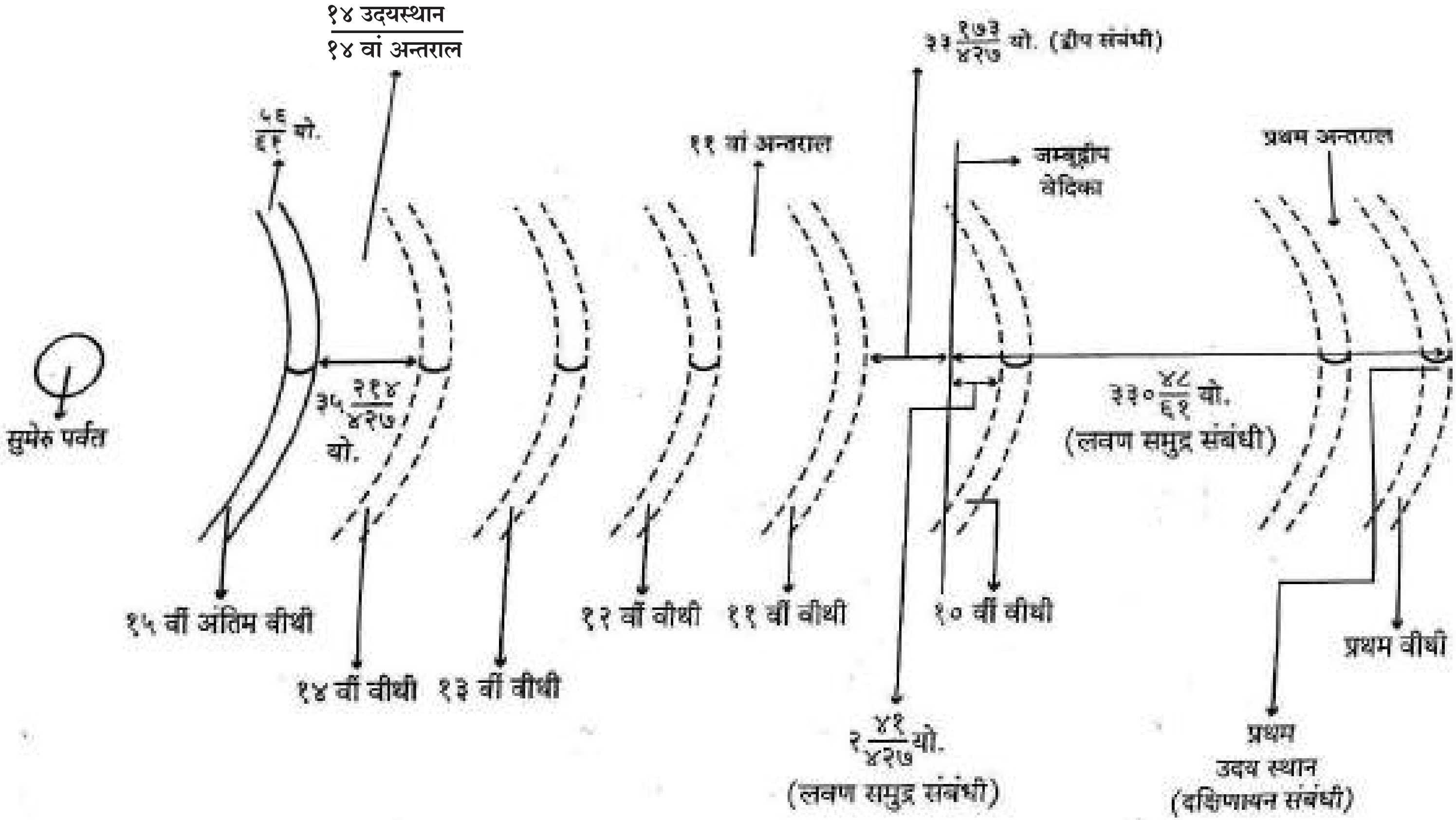

सुमेरु पर्वत के चारों ओर इसी प्रकार की रचना है।

दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अध: स्थानों में सूर्य के आताप क्षेत्र को कहते है–

अभ्यंतर वीथी में स्थित सूर्य की अपेक्षा कथन – जम्बूद्वीप के व्यास का अर्ध भाग 50 हजार योजन है। इसमें से द्वीप संबंधी चार क्षेत्र का प्रमाण 180 योजन घटा देने पर (50,000–180)= 49820 योजन अवशेष रहा, अत: मेरु पर्वत के मध्य से लगाकर अभ्यन्तर वीथी पर्यन्त उत्तर दिशा से सूर्य का आताप 49820 योजन दूर तक फैलता है। अत: उत्तर दिशा में सूर्य का आताप 49820 योजन दूर तक फैलता है।

लवण समुद्र का व्यास 2 लाख योजन है। इसका छठा भाग $\frac{200000}{6}=33333\frac{1}{3}$ योजन होता है। इसमें द्वीप संबंधी चार क्षेत्र का प्रमाण 180 योजन मिलाने पर $\left(33333\frac{1}{3}+180\right)33513\frac{1}{3}$ योजन हुआ अत: सूर्य का आताप अभ्यन्तर वीथी से प्रारम्भ कर लवण समुद्र के छठे भाग पर्यन्त $35513\frac{1}{3}$ योजन दूर तक दक्षिण दिशा में फैलता है। इसी प्रकार अन्य वीथियों में लगा लेना चाहिए।

सूर्य बिम्ब से चित्रा पृथ्वी 800 योजन नीचे है और 1000 योजन चित्रा पृथ्वी की जड़ है। कुल योग (1000+800) = 1800 योजन हुआ। अत: सूर्य का आताप नीचे की ओर 1800 योजन तक फैलता है।

सूर्य बिम्ब से ऊपर 100 योजन पर्यन्त ज्योतिर्लोक है। अत: सूर्य का आताप ऊपर की ओर 100 योजन दूर तक फैलता है।

ज्योतिषी देवों के गमन की गति – चन्द्रमा सबसे मन्द गति वाला है, इससे शीघ्र गति सूर्य की, उससे शीघ्र ग्रहों की, इनसे शीघ्र गति नक्षत्रों की और उससे भी अधिक शीघ्रगति ताराओं की है। अर्थात् चन्द्रमा अभ्यन्तर वीथी में एक मिनिट में $105\frac{460669}{658800}$ योजन चलता है। इसी अभ्यन्तर वीथी में सूर्य एक मिनिट में $109\frac{1169}{2880}$ योजन चलता है। अर्थात् चन्द्रमा की अपेक्षा सूर्य ने 1 मिनिट में कुछ अधिक 4 योजन अधिक गमन किया। उसी अभ्यन्तर वीथी में नक्षत्र 1 मिनिट में $109\frac{742923}{1054080}$ योजन चलता है। अर्थात् सूर्य की अपेक्षा नक्षत्र ने 1 मिनिट में कुछ अधिक गमन किया।

नोट– यहाँ हमने सूर्य–चन्द्र के गमन स्थान और आताप क्षेत्र को जाना, आगे ज्योतिषी देवों के नक्षत्र, नक्षत्रों के गगन खण्ड व भुक्तिकाल को जानेंगे...

शिक्षक जीवन को साक्षर बनाते हैं और
गुरु जीवन को सरल और सार्थक बनाते हैं।

अध्याय–8

ज्योतिषी देवों के नक्षत्र, नक्षत्रों के गगन खण्ड व नक्षत्रों का भुक्ति काल

नक्षत्र 28 होते हैं। वे हैं– 1. कृतिका, 2. रोहिणी, 3. मृगशीर्षा, 4. आर्द्रा, 5. पुनर्वसु, 6. पुष्य, 7. आश्लेषा, 8. मघा, 9. पूर्वाफाल्गुनी, 10. उत्तराफाल्गुनी, 11. हस्त, 12. चित्रा, 13. स्वाति, 14. विशाखा, 15. अनुराधा, 16 ज्येष्ठा, 17. मूल, 18. पूर्वाषाढ़ा, 19. उत्तराषाढ़ा, 20. अभिजित, 21. श्रवण, 22. धनिष्ठा, 23. शतभिषा, 24. पूर्वाभाद्रपद, 25. उत्तराभाद्रपद, 26. रेवती, 27. अश्विनी, 28. भरणी नक्षत्र।

इनमें से जघन्य संज्ञा वाले नक्षत्र 6 हैं, वे हैं– शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा, और ज्येष्ठा।

मध्यम संज्ञा वाले नक्षत्र 15 हैं, वे हैं– अश्विनी, कृतिका, मृगशीर्षा, पुष्य, मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वत्रिक अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती।

उत्कृष्ट संज्ञा वाले नक्षत्र 6 हैं, वे हैं– रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद।

एक–एक नक्षत्र संबंधी मर्यादा रूप गगन खण्डों का निरूपण करते हैं – परिधि रूप आकाश के कुल 109800 गगन खण्ड हैं। गगन खण्ड अर्थात् 'आकाश का उतना भाग जितने भाग में ज्योतिर्बिम्बों का अपना–अपना भ्रमण होता है। इनमें एक चन्द्रमा संबंधी अभिजित नक्षत्र के कुल 630 गगन खण्ड हैं। इसी प्रकार जघन्य संज्ञा वाले 6 नक्षत्रों में से प्रत्येक के 1005–1005 गगन खण्ड हैं। मध्यम संज्ञा वाले 15 नक्षत्रों में से प्रत्येक के 2010–2010 गगन खण्ड हैं। और उत्कृष्ट संज्ञा वाले 6 नक्षत्रों में से प्रत्येक के 3015–3015 गगन खण्ड हैं।

चन्द्रमा संबंधी गगन खण्डों का प्रमाण – जघन्य नक्षत्रों के गगन खण्ड = 1005 x 6 = 6030 गगन खण्ड, मध्यम नक्षत्रों के गगन खण्ड = 2010 x 15 = 30150 गगन खण्ड, उत्कृष्ट नक्षत्रों के गगन खण्ड = 3015 x 6 = 18090 गगन खण्ड और अभिजित नक्षत्र के 630 गगन खण्ड हैं, इन सबको मिलाने पर (6030 + 30150 + 18090 + 630) = 54900 गगन खण्ड हुये। ये एक चन्द्रमा संबंधी गगन खण्ड हैं। और परिधि में दो चन्द्रमा है, अत: इस प्रमाण को दुगुना करने पर गगन खण्डों का कुल प्रमाण (54900 x 2) = 109800 प्राप्त होता है।

सूर्य, चन्द्रमा व नक्षत्र के एक मुहूर्त में गमन करने के गगन खण्डों का प्रमाण – चन्द्रमा एक मुहूर्त में 1768 गगन खण्डों में भ्रमण करता है। सूर्य 1830 गगन खण्डों में और नक्षत्र 1835 गगन खण्डों में एक मुहूर्त में भ्रमण करते हैं।

चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों की परिधि में भ्रमण काल का प्रमाण कहते हैं – कुल गगन खण्डों के प्रमाण में

अपने–अपने एक मुहूर्त गमन प्रमाण गगन खण्डों का भाग देने से परिधि भ्रमण का काल प्राप्त हो जाता है। वह कैसे आता है ? उसे कहते हैं –

चन्द्रमा को सम्पूर्ण गगन खण्डों में भ्रमण करने में कितना काल लगेगा ?

जब चन्द्रमा को 1798 गगन खण्डों के भ्रमण में समय लगता है = 1 मुहूर्त

तब चन्द्रमा को 109800 गगन खण्डों के भ्रमण में समय लगेगा $= 1/1768 \times 109800$

$$62\frac{184}{1768} = 62\frac{23}{221}$$ मुहूर्त (8 से अपवर्तित करने पर)

अतः चन्द्रमा को सम्पूर्ण गगन खण्डों के भ्रमण में लगने वाला समय $62\frac{23}{221}$ मुहूर्त

सूर्य को सम्पूर्ण गगन खण्डों में भ्रमण करने में कितना काल लगगा ?

जब सूर्य को 1830 गगन खण्डों के भ्रमण में समय लगता है = 1 मुहूर्त

तब सूर्य को 109800 गगन खण्डों के भ्रमण में समय लगेगा = $\frac{1}{1830} \times 10980$

$$= \frac{109800}{1830} = 60$$ मुहूर्त

नक्षत्रों की सम्पूर्ण गगन खण्डों में भ्रमण करने में कितना काल लगेगा ?

जब नक्षत्रों को 1835 गगन खण्डों के भ्रमण में समय लगता है = 1 मुहूर्त

तब नक्षत्रों को 109800 गगन खण्डों के भ्रमण में समय लगेगा = $\frac{1}{1835} \times 109800 = \frac{109800}{1835}$

$$59\frac{1535}{1835} = 59\frac{307}{367}$$ मुहूर्त (5 से अपवर्तित करने पर)

अतः इस प्रकार चन्द्र का $62\frac{23}{221}$ मुहूर्त, सूर्य का 60 मुहूर्त, नक्षत्रों का $59\frac{307}{367}$ मुहूर्त है।

परिधि भ्रमण काल प्राप्त होता है।

चन्द्रमा के द्वारा नक्षत्र भुक्ति काल को कहते हैं – चन्द्रमा अभिजित् नक्षत्र के ऊपर है और अभिजित् नक्षत्र के 630 गगन खण्ड हैं। चन्द्रमा नक्षत्र से 67 गगन खण्ड पीछे रहता है।

जब 67 गगन खण्ड छोड़ने में चन्द्रमा को समय लगा = 1 मुहूर्त

तब 630 गगन खण्ड छोड़ने में चन्द्रमा को समय लगेगा = $\frac{1}{67} \times 630 = \frac{630}{67}$

$$= 9\frac{27}{67}$$ मुहूर्त

यही अभिजित् और चन्द्रमा के आसन्न मुहूर्तों का प्रमाण है। अर्थात् $9\frac{27}{67}$ मुहूर्त तक चन्द्रमा अभिजित् नक्षत्र के निकट रहता है। इसे ही नक्षत्र भुक्ति कहते हैं। अथवा इन दोनों की निकटता को चन्द्रमा द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भोग कहते हैं। अथवा इसी को चन्द्रमा और अभिजित् नक्षत्र का योग कहते हैं। अभिजित् नक्षत्र सीमा रूप गगन खण्ड 630 है। $9\frac{27}{67}$ मुहूर्त के ऊपर के काल में चन्द्रमा और नक्षत्र के गगन खण्ड का अंतर 630 से अधिक हो जायेगा, अत: इस काल में दोनों का योग नहीं माना जायेगा।

इसी प्रकार जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों के आसन्न मुहूर्त का प्रमाण अर्थात् नक्षत्र भुक्ति का प्रमाण प्राप्त करते हैं–

जघन्य नक्षत्रों के गगन खण्ड 1005 हैं अत: $\frac{1005}{67} = 15$ मुहूर्त अर्थात् 6 जघन्य नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा की 15 मुहूर्त निकटता रहती है।

मध्यम नक्षत्रों के गगन खण्ड 2010 हैं, अत: $\frac{2010}{67} = 30$ मुहूर्त अर्थात् 15 मध्यम नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा की 30 मुहूर्त निकटता रहती है।

उत्कृष्ट नक्षत्रों के गगन खण्ड 3015 है, अत: $\frac{3015}{67} = 45$ मुहूर्त अर्थात् 6 उत्कृष्ट नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा की 45 मुहूर्त निकटता रहती है।

30 मुहूर्त का एक दिन होता है। अत: उपर्युक्त मुहूर्तों के दिन निकालने पर

क्रम से $\frac{15}{30} = \frac{1}{2}$ अर्थात् आधा दिन, $\frac{30}{30} = 1$ अर्थात् 1 दिन, $\frac{45}{30} = 1\frac{1}{2}$ अर्थात् डेढ़ दिन प्राप्त हुये, यही चन्द्रमा के द्वारा जघन्यादि नक्षत्रों के भुक्ति दिन (भुक्ति काल) हैं।

सूर्य के द्वारा नक्षत्र भुक्ति काल को कहते हैं – सूर्य नक्षत्र से 5 गगन खण्ड पीछे रहता है

जब 5 गगन खण्ड छोड़ने में सूर्य को लगा समय = 1 मुहूर्त

तब 630 गगन खण्ड छोड़ने में सूर्य को समय लगेगा $= \frac{1}{5} \times 630 = \frac{630}{5} = 126$ मुहूर्त

मुहूर्त के दिन बनाने पर $\frac{126}{30} = 4\frac{1}{5}$ दिन या 4 दिन 6 मुहूर्त प्राप्त होता है। यह सूर्य के द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्ति काल है।

जघन्य नक्षत्र के गगन खण्ड 1005 हैं, अत: $\frac{1005}{5} = 201$ मुहूर्त

(एक दिन = 30 दिन मुहूर्त) मुहूर्त के दिन बनाने पर $\frac{201}{30} = 6\frac{7}{10}$ दिन या 6 दिन 21 मुहूर्त प्राप्त होते हैं। यह सूर्य के द्वारा जघन्य नक्षत्र का भुक्ति काल है।

मध्यम नक्षत्र के गगन खण्ड 2010 हैं, अत: $\frac{2010}{5} = 402$ मुहूर्त

मुहूर्त के दिन बनाने पर $\frac{402}{30} = 13\frac{2}{5}$ दिन या 13 दिन 12 मुहूर्त प्राप्त होते हैं। यह सूर्य के द्वारा मध्यम नक्षत्र का भुक्ति काल है।

उत्कृष्ट नक्षत्र के गगन खण्ड 3015 है अत: $\frac{3015}{5} = 603$ मुहूर्त।

मुहूर्त के दिन बनाने पर $\frac{603}{30} = 20\frac{1}{30}$ या 20 दिन 3 मुहूर्त प्राप्त होते हैं। यह सूर्य के द्वारा उत्कृष्ट नक्षत्र का भुक्ति काल है।

राहु के द्वारा नक्षत्रों का भुक्ति काल कहते हैं – सूर्य के गगनखण्डों से $\frac{1}{12}$ भागहीन गगनखण्डों पर राहु एक मुहूर्त में गमन करता है।

सूर्य के गगनखण्ड 1830 हैं इनमें $\frac{1}{12}$ भाग हीन राहु के गगनखण्ड हैं अर्थात् $\frac{1830}{1} - \frac{1}{12}$

$\frac{21960-1}{12} = \frac{21959}{12} = 1829\frac{11}{12}$ गगनखण्ड।

नक्षत्रों के 1835 गगनखण्ड हैं और राहु के $1829\frac{11}{12}$ गगनखण्ड हैं, इनमें कितना अन्तर सो कहते हैं–

$$\frac{1835}{1} - \frac{21959}{12} = \frac{22020-21959}{12} = \frac{61}{12} \text{ भाग}$$

जब $\frac{61}{12}$ भाग गगनखण्ड छोड़ने में राहु को समय लगा = 1 मुहूर्त

तब 630 गगनखण्ड (अभिजित् नक्षत्र के) छोड़ने में राहु को समय लगेगा = $\frac{1}{\frac{61}{12}} \text{x } 630 =$

$$\frac{1\text{x}630\text{x}12}{61} = \frac{7560}{61} \text{ मुहूर्त}$$

मुहूर्त के दिन बनाने पर = $\frac{7560}{61} \div \frac{30}{1} = \frac{7560}{61} \text{ x } \frac{1}{30} = \frac{7560}{1830} = \frac{252}{61}$ (30 से अपवर्तित करने पर)

अर्थात् $4\frac{8}{61}$ दिन प्राप्त हुए। अत: राहु $4\frac{8}{61}$ दिनों तक अभिजित नक्षत्र का भोग करता है।

अन्य प्रकार से राहु द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्ति काल प्राप्त करते हैं – सूर्य द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्ति काल 4 दिन 6 मुहूर्त है। अर्थात् 126 मुहूर्त है। सूर्य जितने मुहूर्त तक नक्षत्र को भोगता है उन मुहूर्तों के प्रमाण में 2 का गुणा कर 61 का भाग देने से राहु द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्तिकाल प्राप्त होता है।

अत: $\frac{126\text{x}2}{61} = \frac{252}{61} = 4\frac{8}{61}$ दिन प्राप्त होते हैं। यही राहु द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्ति काल है।

जघन्य नक्षत्र के गगन खण्ड 1005 हैं, अत: 1005/61/12=1005x12/61=6 $\frac{12090}{61}$ मुहूर्त।

मुहूर्त के दिन बनाने पर 12060/61÷30/1=12060/61x1/30=12060/1830=$6\frac{36}{61}$ दिन

अत: राहु द्वारा जघन्य नक्षत्र का भुक्ति काल $6\frac{36}{61}$ दिन है।

मध्यम नक्षत्र के गगन खण्ड 2010 है, अत: 2010/61/12 = 2010 x12/61 = 24120/61 मुहूर्त।

मुहूर्त के दिन बनाने पर 24120/61÷30/1=24120/61x1/30=24120/1830=$13\frac{11}{61}$ दिन

अत: राहु द्वारा मध्यम नक्षत्र का भुक्ति काल $13\frac{11}{61}$ दिन है।

उत्कृष्ट नक्षत्र के गगनखण्ड 3015 हैं अत: 3015/61/12=3015x12/61=36180/61 मुहूर्त।

मुहूर्त के दिन बनाने पर 36180/61 ÷ 30/1 = 36180/61 x 1/30 = 36180/1830 = $19\frac{47}{61}$ दिन।

अत: राहु द्वारा उत्कृष्ट नक्षत्र का भुक्ति काल $19\frac{47}{61}$ दिन है।

नोट–इस प्रकार यहाँ हमने गगनखण्डों के माध्यम से चन्द्र सूर्य राहु केतु के द्वारा नक्षत्र भुक्तिकाल जाना चन्द्र का नक्षत्र भुक्तिकाल जाना चन्द्र का नक्षत्र भुक्ति काल से तात्पर्य है जिस दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र को भोगता है अर्थात् जिस नक्षत्र के गगनखण्डों पर विचरण होता है वह उसका भुक्तिकाल है। उस दिन वही नक्षत्र होता है। आगे अयनों के माध्यम से सूर्य द्वारा नक्षत्र भुक्तिकाल देखेंगे साथ ही सूर्य उत्तरायण दक्षिणायन किस प्रकार और क्यों होता है ? इस विषय को जानेंगे।

मेहनत करने पर भी सफलता नहीं मिले तो इरादे नहीं, तरीके बदल देना चाहिए तब तरीके सफलता दिलायेंगे और इरादे हमें मजबूत बनायेंगे।

अध्याय–9

अयनों में सूर्य, चन्द्र व राहु द्वारा नक्षत्रों के भुक्तिकाल

उत्तरायण में सूर्य द्वारा नक्षत्र भुक्ति के दिनों का प्रमाण –

प्रश्न–अयन किसे कहते हैं ?

उत्तर–6 महीनों के समूह को अयन कहते हैं। अयन के दो भेद हैं – 1.) दक्षिणायन 2.) उत्तरायन।

अभिजित् आदि नक्षत्रों के उत्तरायन में 183 दिन होते हैं। इनसे अतिरिक्त अन्य अधिक दिन कितने होते हैं ? एक अयन में तीन गत दिवस होते हैं।

इन अधिक दिनों की उत्पत्ति को कहते हैं –

जब सूर्य द्वारा एक पथ उल्लंघन करने में समय लगता है = 1/61 दिन

तब सूर्य द्वारा 183 वीथियाँ उल्लंघन करने में समय लगेगा = 1/61 x 183 = 183/61 = 3 दिन अर्थात् 3 दिन अधिक

एक अयन में 183 दिन ही कैसे होते हैं, सो कहते हैं – सूर्य के उत्तरायण में सर्वप्रथम अभिजित् नक्षत्र की भुक्ति होती है। इसके आगे क्रम से श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र की भुक्ति होती है।

✻ इनमें से अभिजित् नक्षत्र का भुक्ति काल सूर्य द्वारा 21/5 दिन है।

✻ शेष नक्षत्रों में से शतभिषा, भरणी और आर्द्रा ये तीन जघन्य नक्षत्र हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = 67/10 दिन तो तीनों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा = 67x3/10 = 201/10 दिन अथवा 20 दिन 1 मुहूर्त

✻ श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृतिका और मृगशीर्षा ये सात मध्यम नक्षत्र हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = 67/5 दिन तो सातों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा = $\frac{67 \times 7}{5}$ दिन

=469/5 दिन अथवा 93 दिन 24 मुहूर्त।

✻ उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु ये तीन उत्कृष्ट नक्षत्र हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = 201/10 दिन तो तीनों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा = $\frac{201 \times 3}{10}$ = 603/10 दिन अथवा 60 दिन 3 मुहूर्त।

✻ पुष्य नक्षत्र का भुक्ति काल 67/5 दिन है, किन्तु उत्तरायण में पुष्य नक्षत्र का भुक्ति काल मात्र $\frac{23}{5}$ दिन है।

अत: इन सब दिनों को जोड़ने पर = 21/5 + 201/10 + 469/5 + 603/10 + 23/5

$\frac{42+201+938+603+46}{10} = \frac{1830}{10}$ = 183 दिन

अर्थात् अभिजित् आदि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट नक्षत्रों के उत्तरायण में 183 दिन होते हैं। अत: उत्तरायण में सूर्य द्वारा नक्षत्रों (अभिजित् नक्षत्र से पुष्य नक्षत्र तक) का भुक्ति काल 183 दिन है। इनसे अतिरिक्त एक अयन में तीन गत दिवस अधिक होने से एक अयन में कुल (183 + 3) = 186 दिन होते हैं, अत: दो अयन संबंधी कुल (186 + 186) = 372 दिन होते हैं जो कि एक वर्ष संबंधी 360 दिन की अपेक्षा से 12 दिन अधिक घटित होते हैं।

दक्षिणायन में सूर्य द्वारा नक्षत्रों (पुष्य नक्षत्र से उत्तराषाढ़ा तक) का भुक्ति काल – पुष्य नक्षत्र मध्यम है, इसका भुक्ति काल 67/5 दिन है। इसमें से पाँच भागों में से तीन भाग सहित चार दिन अर्थात् 23/5 भाग को उत्तरायण में देना चाहिए अत: 67/5 – 23/5 = 44/5 इस शेष भाग में से फिर से 23/5 भाग को दक्षिणायन के प्रथम कोष्ठ में देना चाहिए अत: 44/5 – 23/5 = 21/5 शेष बचे इसको दक्षिणायन के द्वितीय कोष्ठ में देना चाहिए।

जब सूर्य श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में होता है तब दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है। दक्षिणायन पुष्य नक्षत्र से ही प्रारम्भ होता है। इसके बाद क्रम से आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा इन नक्षत्रों को भोगता है।

✻ इनमें से पुष्य नक्षत्र का भुक्तिकाल सूर्य द्वारा= $\frac{44}{5}$ दिन

✻ इनमें से आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा ये तीन नक्षत्र जघन्य हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है =67/10 दिन तो तीनों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा= $\frac{67x3}{10}$ =201/10 दिन अथवा 20 दिन 1 मुहूर्त

✻ मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढ़ा ये सात नक्षत्र मध्यम हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = $\frac{67x7}{5}$ = 469/5 दिन

✻ उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढ़ा ये तीन नक्षत्र उत्कृष्ट है, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = $\frac{201x3}{10}$ = 603/10 दिन

इन सब भुक्ति काल को जोड़ने पर $\frac{44}{5}+\frac{201}{10}+\frac{469}{5}+\frac{603}{10} = \frac{88+201+938+603}{10}$

$$= \frac{1830}{10} = 183 \text{ दिन}$$

अत: पुष्य नक्षत्र से उत्तराषाढ़ा तक दक्षिणायन में सूर्य के कुल 183 दिन होते हैं।

उत्तरायण में चन्द्र द्वारा नक्षत्र भुक्ति के दिनों का प्रमाण – चन्द्रमा के उत्तरायण में सर्वप्रथम अभिजित् नक्षत्र की भुक्ति होती है।

✻ अभिजित् नक्षत्र का चन्द्र द्वारा भुक्ति काल = 21/67 दिन।

✻ शतभिषा, भरणी और आर्द्रा ये तीन जघन्य नक्षत्र हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = 1/2 दिन है, अत: तीनों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा = $\frac{1x3}{2}$ = 3/2 दिन।

✻ श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृतिका और मृगशीर्षा ये सात मध्यम नक्षत्र हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है = 1 दिन, अत: सातों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा = 1x7 = 7 दिन।

✲ उत्तराभाद्रपद, रोहणी और पुनर्वसु ये तीन उत्कृष्ट नक्षत्र हैं, इनमें से प्रत्येक का भुक्ति काल है – $1\frac{1}{2}$ दिन अर्थात् 3/2 दिन, अत: तीनों नक्षत्रों का भुक्ति काल होगा $= \frac{3 \times 3}{2} = \frac{9}{2}$ अथवा $4\frac{1}{2}$ दिन।

✲ पुष्य नक्षत्र का भुक्ति काल है = 23/67 दिन। क्योंकि जब पुष्य नक्षत्र को सूर्य 67/5 दिन में भोगता है, तब चन्द्रमा उसे 1 दिन में भोगता है तो जब सूर्य 23/5 दिन में भोगता है, तो चन्द्र कितने दिनों में भोगेगा? (त्रैराशिक करने पर)

1/67/5 x 23/5 = 1 x 5/67 x 23/5 = 23/67 दिन प्राप्त होता है।

इन सब भुक्ति कालों को जोड़ने पर 21/67 + 3/2 + 7/1 + 9/2 + 23/67

$$\frac{42+201+1938+603+46}{134} = \frac{1830}{134} = 13\ \frac{44}{67}$$ दिन

अत: अभिजित् नक्षत्र से पुष्य नक्षत्र तक उत्तरायन में चन्द्रमा का नक्षत्र भुक्ति काल $13\frac{44}{67}$ दिन है।

दक्षिणायन में चन्द्र द्वारा नक्षत्र भुक्ति के दिनों का प्रमाण – दक्षिणायन में चन्द्रमा सर्वप्रथम पुष्य नक्षत्र को भोगता है। पुष्य नक्षत्र का 23/67 भाग उत्तरायण में भोगा जा चुका है, अत: अवशेष बचा 44/67 भाग ही यहाँ भुक्ति काल है। पुष्य नक्षत्र का भोग समाप्त हो जाने के बाद आश्लेषा से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त नक्षत्रों को भोगता है।

✲ इनमें से तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्ति काल = 1/2 x 3 = 3/2 = $1\frac{1}{2}$ दिन।

✲ सात मध्यम नक्षत्रों का भुक्ति काल = 1 x 7 = 7 दिन।

✲ तीन उत्कृष्ट नक्षत्रों का भुक्ति काल = 3/2 x 3 = 9/2 = $4\frac{1}{2}$ दिन।

इन सब भुक्ति कालों को जोड़ने पर = 44/67 + 3/2 + 7/1 + 9/2 =

$$\frac{88+201+938+603}{134} = \frac{1830}{134} = 13\ \frac{44}{67}$$ दिन

अत: पुष्य नक्षत्र से उत्तराषाढ़ा तक दक्षिणायन में चन्द्रमा के कुल $13\frac{44}{67}$ दिन होते हैं।

उत्तरायण में राहु द्वारा नक्षत्र भुक्ति काल – उत्तरायण में राहु सर्वप्रथम अभिजित् नक्षत्र को भोगता है।

✲ अभिजित् नक्षत्र का राहु द्वारा भुक्ति काल है = 252/61 दिन, इसके आगे श्रवण नक्षत्र से पुष्य नक्षत्र पर्यन्त नक्षत्रों को भोगता है।

✲ इनमें से तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्ति काल = 402/61 x 3 = 1206/61 दिन।

✲ सात मध्यम नक्षत्रों का भुक्ति काल = 804/61 x 7 = 5628/61 दिन।

✲ तीन उत्कृष्ट नक्षत्रों का भुक्ति काल = 1206/61 x 3 = 3618/61 दिन।

✲ पुष्य नक्षत्र का राहु द्वारा भुक्ति काल = जब पुष्य नक्षत्र पर सूर्य का 67/5 दिन का भोग होता है तब राहु उसे 804/61 दिन भोगता है, तो जब सूर्य 23/5 दिन भोगता है तब राहु कितने दिन भोगेगा?

(त्रैराशिक करने पर) 804/61 ÷ 67/5 x 23/5 = 804/61 x 5/67 x 23/5 = 92,460/20435 = 276/61 दिन (335 से अपवर्तित करने पर) अर्थात् 276/61 दिन में उत्तरायण राहु, पुष्य नक्षत्र को भोगता है, तब उत्तरायण की समाप्ति होती है।

इन सब भुक्ति काल को जोड़ने पर 252/61+1206/61+5628/61+3618/61+276/61

$$\frac{252+1206+5628+3618+276}{61} = \frac{10980}{61} = 180 \text{ दिन}$$

अत: अभिजित् नक्षत्र से पुष्य नक्षत्र तक उत्तरायण में राहु द्वारा नक्षत्रों का भुक्ति काल 180 दिन है।

दक्षिणायन में राहु द्वारा नक्षत्र भुक्ति काल – दक्षिणायन में सर्वप्रथम पुष्य नक्षत्र के भुक्ति काल में अवशेष रहे 528/61 दिन प्रमाण काल तक तो पुष्य नक्षत्र की भुक्ति होती है।

इसके आगे आश्लेषा से उत्तराषाढ़ा पर्यंत नक्षत्रों की भुक्ति क्रम से होती है।

इनमें से तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्ति काल = $\frac{402 \times 3}{61}$ = 1206/61 दिन।

इनमें से सात मध्यम नक्षत्रों का भुक्ति काल = $\frac{804 \times 7}{61}$ = 5628/61 दिन।

इनमें से तीन उत्कृष्ट नक्षत्रों का भुक्ति काल = $\frac{1206 \times 3}{61} = \frac{3618}{61}$ दिन।

इस सब भुक्ति काल को जोड़ने पर 528/61 + 1206/61 + 5628/61 + 3618/61

$$\frac{528+1206+5628+3618}{61} = \frac{10980}{61} = 180 \text{ दिन}$$

अत: पुष्य नक्षत्र से उत्तराषाढ़ा नक्षत्र तक दक्षिणायन में राहु द्वारा नक्षत्रों का भुक्ति काल 180 दिन है।

* चन्द्रमा एक अयन में $13\frac{44}{67}$ दिन नक्षत्रों का भोग करता है, अत: दोनों अयनों को मिलाकर चन्द्रमा का एक वर्ष का भुक्ति काल = 915/67 x 2 = 1830/67 = $27\frac{21}{67}$ दिन।

* सूर्य एक अयन में 183 दिन नक्षत्रों का भोग करता है, अत: दोनों अयनों को मिलाकर सूर्य का एक वर्ष का भुक्ति काल = 183 x 2 = 366 दिन है।

* राहु एक अयन में 180 दिन नक्षत्रों का भोग करता है, अत: दोनों अयनों को मिलाकर राहु का एक वर्ष का भुक्ति काल = 180 x 2 = 360 दिन है।

राहु, रवि और शशि के एक अयन के भुक्ति कालों का संकलन –

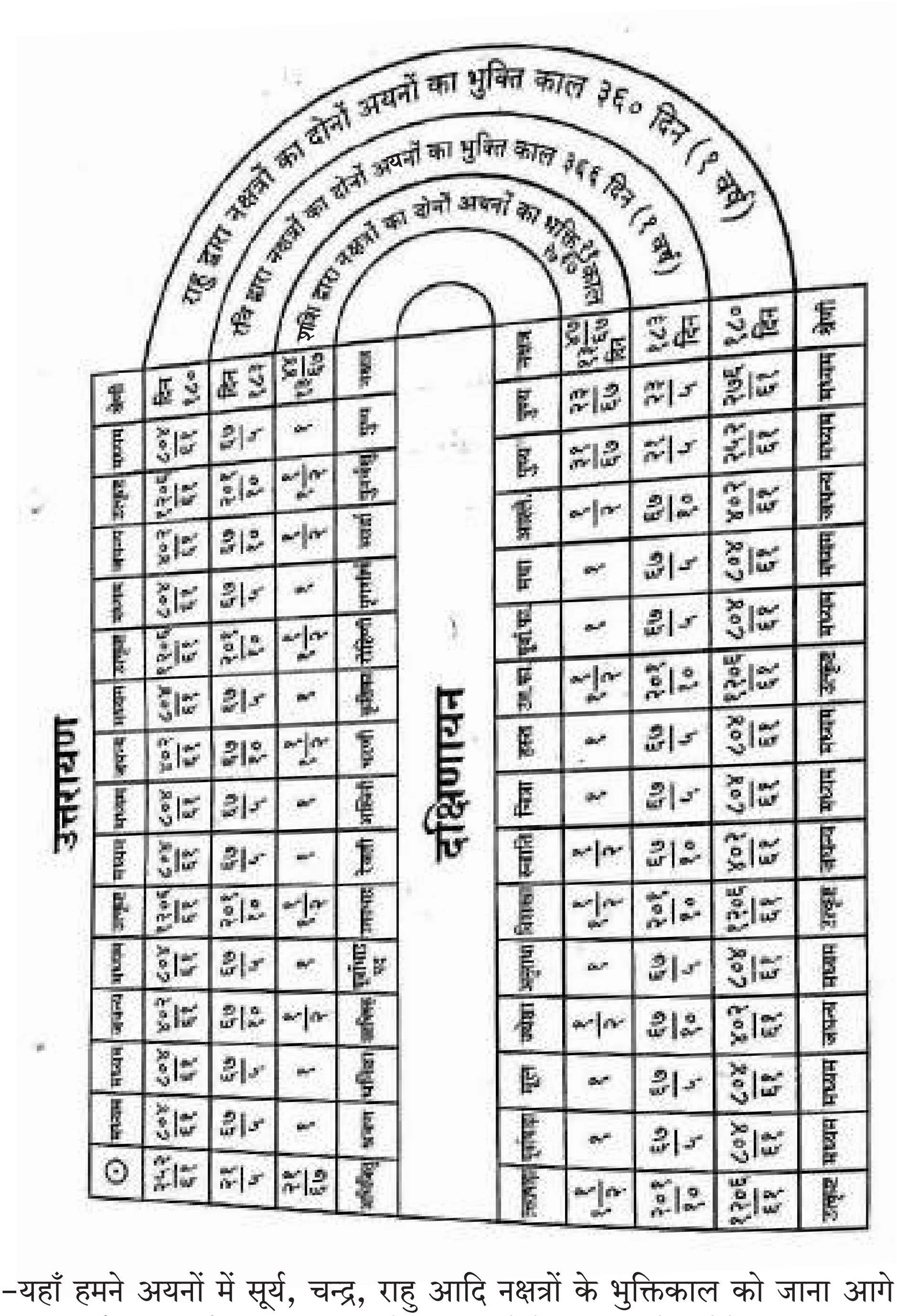

नोट–यहाँ हमने अयनों में सूर्य, चन्द्र, राहु आदि नक्षत्रों के भुक्तिकाल को जाना आगे अयनों में आवृत्ति, नक्षत्र, पर्व, तिथि और विषुप आदि को प्राप्त करने के विधान को जानेंगे...।

अध्याय–10

अयनों में आवृत्ति, नक्षत्र, पर्व, तिथि और विषुप आदि को प्राप्त करने का विधान

अधिक मास का प्रतिपादन कैसे होता है ? उसे कहते हैं – सूर्य गमन की 184 गलियाँ हैं। एक गली से दूसरी गली दो–दो योजन की दूरी पर है। एक गली से दूसरी गली में प्रवेश करता हुआ सूर्य उस मध्य के दो योजन अन्तराल को पार करता हुआ जाता है। इन पूरे अन्तरालों को पार करने का काल 6 दिन है, क्योंकि उसका एक दिन में एक अन्तराल पार करने का काल एक मुहूर्त (48 मिनिट) है, अत: एक दिन में एक मुहूर्त की, तीस दिन (एक मास) में 30 मुहूर्त अर्थात् एक दिन की, बारह मास में 12 दिन की, अढ़ाई वर्ष में 30 दिन (एक मास) की और 5 वर्ष स्वरूप एक युग में 2 माह की वृद्धि होती है।

प्रकारान्तरे – एक वर्ष में 12 माह और एक माह में 30 दिन होते हैं। प्रत्येक 61वें दिन एक तिथि घटती है अत: एक वर्ष के 354 दिन होने चाहिये किन्तु सूर्य के (183 x 2) = 366 दिन होते हैं अत: एक वर्ष में (366–354) = 12 दिन की दो वर्ष में 24 दिन की, अढ़ाई वर्ष में 30 दिन की (अढाई वर्ष में 13 मास का वर्ष होता है) और पाँच वर्ष में दो मास की वृद्धि होती है।

युग का प्रारम्भ व अंत – श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन चन्द्रमा का अभिजित् नक्षत्र के साथ योग होने पर दक्षिणायन के प्रारम्भ के साथ पंचवर्षात्मक युग का प्रारम्भ होता है। तथा आषाढ़ मास की पूर्णिमा के अपराह्न में उत्तरायन की समाप्ति पर पञ्चवर्षात्मक युग की सम्पूर्णता होती है।

अयनों का प्रारम्भ – सूर्य भ्रमण की 184 गलियाँ हैं। इनमें से जब सूर्य प्रथम वीथी में स्थित होता है तब दक्षिणायन का और जब अन्तिम वीथी में होता है, तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। इसी को दक्षिणायन उत्तरायन की प्रथम आवृत्ति कहते हैं। दक्षिण आवृत्ति एक को आदि लेकर दो से अधिक (1,3,5,7...) होती जाती है।

अयनों में आवृत्तियाँ

आवृत्ति की परिभाषा – पूर्व अयन की समाप्ति और नवीन अयन के प्रारम्भ को आवृत्ति कहते हैं। ये आवृत्तियाँ पञ्चवर्षात्मक एक युग में दस बार होती है। इनमें 1,3,5,7 और 9वीं आवृत्ति तो दक्षिणायन सम्बन्धी है तथा 2,4,6,8 और 10वीं आवृत्ति उत्तरायन संबंधी है।

दक्षिणायन में आवृत्तियाँ

उत्तरायण की समाप्ति के बाद जब दक्षिणायन संबंधी आवृत्ति प्रारम्भ होती है तब प्रथम आवृत्ति श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से ही होती है। दूसरी आवृत्ति श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को मृगशीर्षा नक्षत्र में प्रारम्भ होती है। इसी श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि में विशाखा नक्षत्र का योग होने पर तीसरी आवृत्ति होती है तथा श्रावण कृष्णा सप्तमी की रेवती नक्षत्र का योग होने पर चौथी और श्रावण शुक्ला चतुर्थी की पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में पाँचवीं आवृत्ति होती है।

अत: इस प्रकार पाँच वर्षों तक प्रत्येक श्रावण मास में दक्षिणायन संबंधी एक आवृत्ति होती है तो पाँच वर्षों में पाँच आवृत्तियाँ होती हैं।

उत्तरायण में आवृत्तियाँ

माघ कृष्णा सप्तमी को हस्त नक्षत्र के योग में सूर्य दक्षिणायन को छोड़कर उत्तरायण में आता है, वह प्रथम आवृत्ति है। माघ शुक्ला चतुर्थी को शतभिषा नक्षत्र के योग में दूसरी आवृत्ति होती है तथा तीसरी आवृत्ति माघ कृष्णा प्रतिपदा को पुष्य नक्षत्र के रहने पर होती है। चौथी आवृत्ति माघ कृष्णा त्रयोदशी को मूल नक्षत्र में और पाँचवीं आवृत्ति माघ शुक्ला दशमी को कृतिका नक्षत्र के योग में होती है।

दक्षिणायन व उत्तरायन की आवृत्तियों का चार्ट

दक्षिणायन - सूर्य					उत्तरायण - सूर्य				
आवृत्ति क्रम	वर्ष	मास	तिथि	नक्षत्र	आवृत्ति क्रम	वर्ष	मास	तिथि	नक्षत्र
१ ली आवृत्ति	प्रथम वर्ष	श्रावण कृष्णा	प्रतिपदा	अभिजित्	२ री	प्रथम	माघ कृष्णा	सप्तमी	हस्त
३ री आवृत्ति	द्वितीय	श्रा० कृ०	त्रयोदशी	मृग०	४ थी	द्वितीय	मा० शु०	चतुर्थी	शतभिषा
५ वीं आवृत्ति	तृतीय	श्रा० शु०	दशमी	विशाखा	६ ठी	तृतीय	मा० कृ०	प्रतिपदा	पुष्य
७ वीं आवृत्ति	चतुर्थ	श्रा० कृ०	सप्तमी	रेवती	८ वीं	चतुर्थ	मा० कृ०	त्रयोदशी	मूल
९ वीं आवृत्ति	पञ्चम	श्रा० शु०	चतुर्थी	पूर्वाफाल्गुनी	१०वीं	पञ्चम	मा० शु०	दशमी	कृतिका

उपर्युक्त पाँच वर्षों में युग समाप्त हो जाता है तथा छठें वर्ष से पूर्वोक्त ही व्यवस्था पुन: प्रारम्भ हो जाती है। हमेशा दक्षिणायन का प्रारम्भ प्रथम वीथी से और उत्तरायण का प्रारम्भ अन्तिम वीथी से होता है।

पाँच वर्षों के समुदाय को युग कहते हैं। प्रथम युग के प्रारम्भ से युग की समाप्ति पर्यन्त तिथि आदि की जिस प्रकार की रचना है, वैसी ही रचना दूसरे, तीसरे आदि युगों में भी है। पंचवर्षात्मक युग में प्रत्येक दक्षिणायन का प्रारम्भ पाँचों श्रावण मासों से और प्रत्येक उत्तरायण का प्रारम्भ पाँचों माघ मासों से ही होता है।

दक्षिणायन में श्रावण, भाद्र, आसोज, कार्तिक, मगशिर और पौष ये छ: मास आते हैं, उत्तरायन में माघ, फाल्गुण, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ ये छ: मास आते हैं। इन प्रत्येक मासों की 31–31 तिथियाँ स्थापित करनी चाहिये क्योंकि वैसे तो एक मास में 30 ही दिन होते हैं, किन्तु **''इगिमासे दिणवड्डी'' गाथा सूत्र 410 (त्रिलोकसार ग्रंथ) के अनुसार** एक दिन में एक मुहूर्त की वृद्धि होती है, अत: एक माह (30 दिन) में एक दिन की वृद्धि हो जाती है। इसलिए प्रत्येक माह में $30 + 1 = 31$ दिन की स्थापना की गई। इस प्रकार एक मास में 1 दिन की वृद्धि होने से बारह मासों में 12 दिनों की और पाँच वर्षों में 60 दिन अर्थात् 2 माह की वृद्धि होती है।

पंचवर्षात्मक युग में दक्षिणायन व उत्तरायन आवृत्तियाँ व तिथियाँ

पञ्च वर्षात्मक युग में दक्षिणायन-उत्तरायण आवृत्तियाँ

दक्षिणायन	आवृत्ति-१			आवृत्ति-२			आवृत्ति-३			आवृत्ति-४			आवृत्ति-५		
मास	कृ.	शु.	कृ.	कृ.	शु.	कृ.	शु.	कृ.	शु.	कृ.	शु.	कृ.	शु.	कृ.	शु.
श्रावण	१५	१५	१	३	१५	१३	६	१५	१०	९	१५	७	१२	१५	४
भाद्र	१४	१५	२	२	१५	१४	५	१५	११	८	१५	८	११	१५	५
आसोज	१३	१५	३	१	१५	१५	४	१५	१२	७	१५	९	१०	१५	६
				शु.	कृ.	शु.									
कार्तिक	१२	१५	४	१५	१५	१	३	१५	१३	६	१५	१०	९	१५	७
मगसिर	११	१५	५	१४	१५	२	२	१५	१४	५	१५	११	८	१५	८
पौष	१०	१५	६	१३	१५	३	१	१५	१५	४	१५	१२	७	१५	९

उत्तरायण	आवृत्ति-१			आवृत्ति-२			आवृत्ति-३			आवृत्ति-४			आवृत्ति-५		
							कृ.	शु.	कृ.						
माघ	९	१५	७	१२	१५	४	१५	१५	१	३	१५	१३	६	१५	१०
फाल्गुन	८	१५	८	११	१५	५	१४	१५	२	२	१५	१४	५	१५	११
चैत्र	७	१५	९	१०	१५	६	१३	१५	३	१	१५	१५	४	१५	१२
										शु.	कृ.	शु.			
वैशाख	६	१५	१०	९	१५	७	१२	१५	४	१५	१५	१	३	१५	१३
ज्येष्ठ	५	१५	११	८	१५	८	११	१५	५	१४	१५	२	२	१५	१४
आषाढ़	४	१५	१२	७	१५	९	१०	१५	६	१३	१५	३	१	१५	१५

दक्षिणायन तथा उत्तरायण के प्रारम्भ में नक्षत्र प्राप्त करने का विधान

एक सौ इक्यासी को एक कम विवक्षित आवृत्ति से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें इक्कीस मिलाकर तीन के घन (27) का भाग देने पर जो शेष रहे, अश्विनी को आदि लेकर उतने ही नम्बर का नक्षत्र होता है।

सूत्र – नक्षत्र संख्या = $\frac{(\text{इष्ट आवृत्ति}-1)181+21}{(3)^3}$ अश्विनी नक्षत्र से लेकर यह संख्या जानना।

उदाहरण (1) – जैसे माना कि प्रथम आवृत्ति विवक्षित है तब

नक्षत्र संख्या = $\frac{(\text{इष्ट आवृत्ति} - 1)\ 181 + 21}{27}$

$= \frac{(1-1)\ 181 + 21}{27}$

$= \frac{0 \times 181 + 21}{27}$ = 0+21/27=21/27 (यहाँ 21 में 27 का भाग जाता नहीं है तब 21 ही शेष रहे।)

इस प्रकार प्रथम आवृत्ति में अश्विनी से लेकर 21वाँ नक्षत्र उत्तराषाढ़ा समझना चाहिये किन्तु यहाँ उत्तराषाढ़ा के स्थान पर अभिजित् नक्षत्र ग्रहण करना चाहिये क्योंकि यद्यपि नक्षत्र 28 है तथापि जहाँ नक्षत्रों की गणना आदि करते हैं, वहाँ 27 का ही ग्रहण किया जाता है, अभिजित् का नहीं क्योंकि अभिजित् का साधन सूक्ष्म है। यहाँ प्रथम आवृत्ति में स्थूल रूप से उत्तराषाढ़ा प्राप्त होता है किन्तु सूक्ष्मता से अभिजित् नक्षत्र ही बतलाया गया है। आगे कहीं इसका ग्रहण नहीं करना। इस प्रकार दक्षिणायन के प्रारम्भ में प्रथम श्रावण मास में नक्षत्र प्राप्त करने का विधान किया है।

उदाहरण (2) – माना कि दूसरी आवृत्ति विवक्षित है तब

नक्षत्र संख्या = $\frac{(\text{इष्ट आवृत्ति} - 1)\ 181 + 21}{27}$

$= \frac{(2-1)\ 181 + 21}{27} \quad = \frac{1 \times 181 + 21}{27}$

$= \frac{202}{27} = 7\frac{13}{27}$ (अर्थात् 13 अवशेष रहे।)

इस प्रकार द्वितीय आवृत्ति में अश्विनी से लेकर 13वाँ नक्षत्र हस्त नक्षत्र है। अत: उत्तरायण के प्रारम्भ में प्रथम माघ मास में हस्त नक्षत्र प्राप्त होता है।

इसी प्रकार 3री, 5वीं, 7वीं और 9वीं आवृत्तियों में दक्षिणायन के प्रारम्भ श्रावण मास में और 4थी, 6ठी, 8वीं और 10वीं आवृत्तियों में उत्तरायण के प्रारम्भक माघ मास में नक्षत्रों का साधन करना चाहिए।

7वीं आवृत्ति में शेष 0 आता है, अत: अश्विनी नक्षत्र से 27वाँ रेवती नक्षत्र समझना चाहिये, अभिजित् नक्षत्र को नहीं गिनना चाहिये।

दक्षिणायन व उत्तरायन के पर्व और तिथि प्राप्त करने का विधान

एक सौ तेरासी को एक कम विवक्षित आवृत्तियों से गुणित कर पश्चात् उसमें तिगुणा गुणकार और एक अंक मिलाकर पन्द्रह का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो वह वर्तमान अयन के पर्व तथा जो अवशेष रहे वह तिथियों का प्रमाण होता है।

सूत्र – 1.) आवृत्ति में पर्व संख्या = $\dfrac{\{(\text{आवृत्ति} - 1)\ 183 + (\text{आवृत्ति} - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

2.) आवृत्ति की प्रारम्भ तिथि = शेष संख्या।

उदाहरण – 1.) माना कि विवक्षित आवृत्ति प्रथम है, तब

आवृत्ति में पर्व संख्या = $\dfrac{\{(\text{आवृत्ति} - 1)\ 183 + (\text{आवृत्ति} - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

$= \dfrac{\{1 - 1)\ 183 + (1 - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

$= \dfrac{0 \text{ x } 183 + 0 \text{ x } 3 + 1}{15}$

$= \dfrac{0+1}{15}$ =15 (1 में 15 का भाग जाता नहीं इसलिये पर्व का अभाव रहा।)

आवृत्ति की प्रारम्भ तिथि = शेष संख्या

= 1

अर्थात् कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा की प्राप्ति हुई। यह प्रथम आवृत्ति दक्षिणायन के प्रारम्भक प्रथम श्रावण मास में कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के समय होती है। यहाँ युग का प्रारम्भ ही है, अत: पर्व का अभाव है।

पर्व की परिभाषा – पक्ष के पूर्ण होने पर जो पूर्णिमा और अमावस्या होती है, उसका नाम पर्व है।

उदाहरण – 2.) माना कि विवक्षित आवृत्ति द्वितीय है, तब

आवृत्ति में पर्व संख्या = $\dfrac{\{(\text{आवृत्ति} - 1)\ 183 + (\text{आवृत्ति} - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

$= \dfrac{\{2 - 1)\ 183 + (2 - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

$= \dfrac{1 \text{ x } 183 + 1 \text{ x } 3 + 1}{15}$

$= \dfrac{183+4}{15} = \dfrac{187}{15}$ = 12 लब्ध और अवशेष 7

आवृत्ति की प्रारम्भ तिथि = शेष संख्या

= 7

अर्थात् द्वितीय आवृत्ति में 12 पर्व और सप्तमी तिथि प्राप्त होती है। (एक आवृत्ति में 6 मास होते हैं, एक मास में 2 पर्व होते हैं, अत: 6 मास में 12 पर्व होते हैं)

यह द्वितीय आवृत्ति उत्तरायण का प्रारम्भ हो जाने पर प्रथम माघ मास में कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के समय होती है, तब तक युग के प्रारम्भ से 12 पर्व व्यतीत हो जाते हैं।

उदाहरण – 3.) माना कि विवक्षित आवृत्ति तृतीय है, तब

आवृत्ति में पर्व संख्या = $\dfrac{\{(\text{आवृत्ति} - 1)\ 183 + (\text{आवृत्ति} - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

$= \dfrac{\{(3 - 1)\ 183 + (3 - 1)\ 3 + 1\}}{15}$

$= \dfrac{2 \times 183 + 2 \times 3 + 1}{15}$

$= \dfrac{366+7}{15} = \dfrac{373}{15}$ = 24 लब्ध और अवशेष 13

आवृत्ति की प्रारम्भ तिथि = शेष संख्या

= 13

अर्थात् तृतीय आवृत्ति दक्षिणायन के प्रारम्भक द्वितीय श्रावण मास में कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि के समय होती है, तब तक युग के प्रारम्भ से 24 पर्व व्यतीत हो जाते हैं।

इसी क्रम से अन्य आवृत्तियों में भी पर्व और तिथि की साधना कर लेना चाहिये।

आवृत्तियों में पर्व संख्या

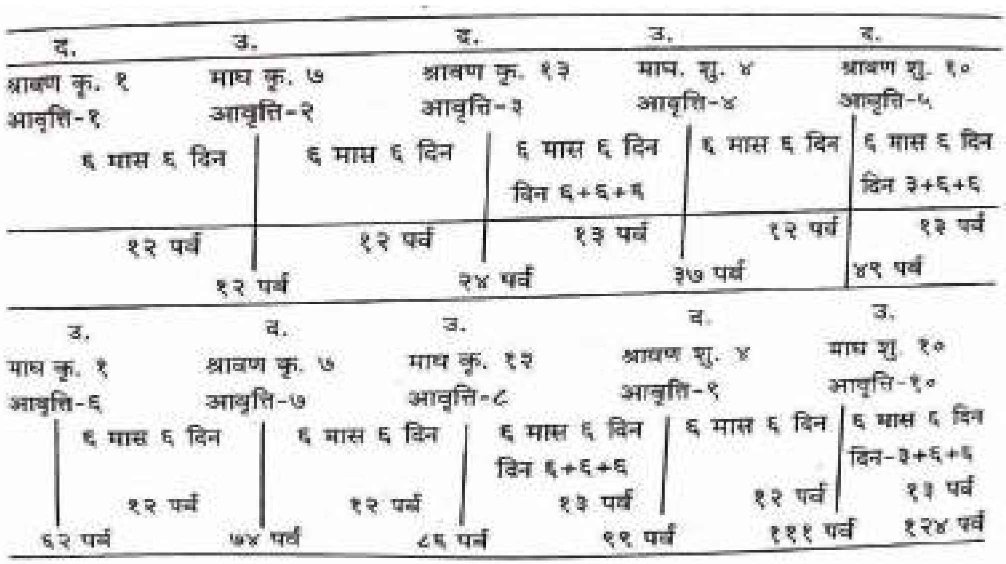

इस प्रकार पञ्च वर्षात्मक 1 युग में 60 मास और 60 अधिक दिन की अपेक्षा 62 मास होते हैं। 1 मास में 2 पर्व होते हैं, अत: 62 मास में 62 x 2 = 124 पर्व होते हैं।

युग के 10 अयनों में विषुप तथा विषुप में पर्व, तिथि और नक्षत्रों को प्राप्त करने का विधान

विषुप की परिभाषा – एक अयन छह मास का होता है और प्रत्येक अयन का अर्धभाग व्यतीत होने पर दिन और रात्रि का प्रमाण बराबर होता है। यह दिन रात्रि के प्रमाण का बराबर होना ही विषुप है अर्थात् विषुप का लक्षण है।

पाँच विषुप दक्षिणायन के अर्धकाल में और पाँच विषुप उत्तरायण के अर्धकाल में इस प्रकार एक युग में कुल 10 विषुप होते हैं।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक पञ्चवर्षात्मक युगों में सूर्यों के दक्षिण व उत्तर अयन होते रहते हैं तथा प्रत्येक अयन का अर्धभाग व्यतीत होने पर विषुप होता है।

ये विषुप कितने, कब और कौन–कौन मास एवं नक्षत्रों में होते हैं, यह जानते हैं–पंचवर्षात्मक युग में प्रथम विषुप 6 पर्व बीत जाने के बाद आता है। 1 मास में 2 पर्व होते हैं, अत: 3 मास में 6 पर्व होते हैं। 1 मास में 1 दिन की वृद्धि होने से 3 मास में 3 दिन की वृद्धि हुई। इस प्रकार प्रथम विषुप 3 मास 3 दिन के समय में आता है अर्थात् युग प्रारम्भ श्रावण कृष्णा एकम् से 3 मास 3 दिन होने पर कार्तिक कृष्णा तृतीया के समय में यह प्रथम विषुप आता है।

दूसरे विषुप से लेकर दसवें विषुप तक प्रत्येक विषुप 12 पर्व बीत जाने के बाद आता है। 6 मास में 12 पर्व होते हैं। 6 मास में 6 दिन की वृद्धि होती है, अत: प्रत्येक विषुप 6 मास 6 दिन के समय में आता है।

Note – ✻ विषुप की प्राप्ति के समय 15 दिन अथवा 15 दिन से अधिक दिनों की प्राप्ति होने पर उस विषुप के समय में 1 पर्व बढ़ाना चाहिए। शेष दिनों को अगले विषुप में गिनना चाहिये। पूर्व–पूर्व विषुप के पर्वों को उत्तर–उत्तर के विषुप में जोड़ने से विषुपों में पर्व संख्या प्राप्त होती है।

✻ प्रत्येक विषुप के समय जो दिनों की संख्या है, वही उसकी विषुप तिथि मानी जाती है।

विषुप के पर्व संख्या एवं विषुप तिथि

दक्षिणायन	द.	द.	द.	द.	द.
प्रारम्भ	विषुप–१	विषुप–२	विषुप–३	विषुप–४	विषुप–५
श्रा.कृ.१	३ मास ३ दिन	३ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन
	६ पर्व	१२ पर्व	दिन.–(३+६+६) १३ पर्व	१२ पर्व	१२ पर्व
	६ पर्व	१८ पर्व	३१ पर्व	४३ पर्व	५५ पर्व
	का.कृ.तृतीया	वै.कृ.नवमी	का.कृ.अमावस्या	वै.शु.षष्ठी	का.शु.द्वादशी

द. विषुप-६	द. विषुप-७	द. विषुप-८	द. विषुप-९	द. विषुप-१०
६ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन	६ मास ६ दिन
दिन.-(३+६+६) १३ पर्व	१२ पर्व	दिन.-(३+६+६) १३ पर्व	१२ पर्व	१२ पर्व
६८ पर्व	८० पर्व	९३ पर्व	१०५ पर्व	११७ पर्व
वै.कृ.तृतीया	का.कृ.नवमी	वै.कृ.अमावस्या	का.शु.षष्ठी	वै.शु.द्वादशी

विषुप की संख्या, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र का चार्ट

वर्ष संख्या	विषुप संख्या	गतपर्व संख्या	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र
प्रथम वर्ष	१ ला.	६ पर्वों के व्यतीत होने पर	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	तृतीया	रोहिणी के योग में
	२ रा.	१८ पर्वों के व्यतीत होने पर	वैशाख	कृष्ण पक्ष	नवमी	घनिष्ठा ,, ,, ,,
द्वितीय वर्ष	३ रा.	३१ पर्वों के व्यतीत होने पर	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	अमावस्या	स्वाति ,, ,, ,,
	४ था.	४३ पर्वों के व्यतीत होने पर	वैशाख	शुक्ल पक्ष	षष्ठी	पुनर्वसु ,, ,, ,,
तृतीय वर्ष	५ वाँ	५५ पर्वों के व्यतीत होने पर	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	द्वादशी	उत्तराभाद्रपद के ,,
	६ वाँ	६८ पर्वों के व्यतीत होने पर	वैशाख	शुक्ल पक्ष	तृतीया	अनुराधा ,, ,, ,,
चतुर्थ वर्ष	७ वाँ	८० पर्वों के व्यतीत होने पर	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	नवमी	मघा ,, ,, ,,
	८ वाँ	९३ पर्वों के व्यतीत होने पर	वैशाख	कृष्ण पक्ष	अमावस्या	अश्विनी ,, ,, ,,
पञ्चम वर्ष	९ वाँ	१०५ पर्वों के व्यतीत होने पर	कार्तिक	शुक्ल पक्ष	षष्ठी	उत्तराषाढाके योग में
	१० वाँ	११७ पर्वों के व्यतीत होने पर	वैशाख	शुक्ल पक्ष	द्वादशी	उत्तराफाल्गुनी ,, ,,

विषुप में पर्व और तिथि प्राप्त करने के लिए विधान

जो विषुप इष्ट हो उसे दूना करके एक अंक कम करके शेष को छह से गुणित करने पर पर्व का प्रमाण प्राप्त होता है तथा पर्व के प्रमाण को आधा करने से वर्तमान विषुप की तिथि संख्या प्राप्त होती है। (यदि पर्व का आधा भाग 15 से अधिक हो तो उसमें 15 का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे पर्व संख्या में जोड़ कर शेष को तिथि का प्रमाण समझना चाहिए।)

सूत्र – 1.) विषुप पर्व संख्या = {(विषुप x 2) – 1}x 6

सूत्र – 2.) विषुप तिथि = $\frac{\text{पर्व संख्या}}{2}$

उदा. (1) माना कि विवक्षित विषुप प्रथम है, तब

विषुप पर्व संख्या = {(विषुप x 2) -1}x 6

= {1 x 2) –1} x 6

= {2 – 1}x 6

= 1 x 6 = 6

अर्थात् 6 पर्व बीत जाने पर प्रथम विषुप आता है।

विषुप तिथि = $\frac{\text{पूर्व संख्या}}{2}$

= 6/2 = 3 अर्थात् प्रथम विषुप तृतीया को होता है।

उदा. (2) माना कि विवक्षित विषुप पाँचवाँ है, तब

विषुप पर्व संख्या = {(विषुप x 2) – 1}x 6

= {(5 x 2) – 1}x 6

= (10 – 1) x 6

= 9 x 6 = 54 **+** 1 = 55

अर्थात् 55 पर्व बीत जाने पर पाँचवाँ विषुप आता है।

विषुप तिथि = $\frac{\textbf{पर्व संख्या}}{\mathbf{2}}$

=54/2 = 27 (यहाँ पर्व का आधा करने पर 15 से अधिक प्राप्त हुआ है, इसलिये 15 का भाग देने पर 27/15 = 1 लब्ध 12 अवशेष रहते हैं।) अत: 54 पर्वों में 1 लब्ध जोड़ने पर (54 **+** 1) = 55 पर्व पाँचवें विषुप के बीते हुये पर्वों की संख्या प्राप्त होती है और अवशेष 12 अर्थात् पाँचवें विषुप की तिथि द्वादशी प्राप्त होती है अन्यत्र भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

आवृत्ति और विषुप में तिथि संख्या लाने का विधान

एक कम आवृत्ति के पद को छह से गुणित करके उसमें एक अंक मिलाने पर आवृत्ति की तिथि संख्या और उसी लब्ध में तीन मिलाने से विषुप की तिथि संख्या का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। इनमें तिथि संख्या के विषम होने पर कृष्ण पक्ष और सम होने पर शुक्ल पक्ष होता है।

सूत्र – 1.) आवृत्ति तिथि संख्या = {(आवृत्ति संख्या – 1) x 6} + 1

सूत्र – 2.) विषुप तिथि संख्या = {(आवृत्ति संख्या – 1) x 6} + 3

उदाहरण – 1.) प्रथम आवृत्ति विवक्षित है, तब

आवृत्ति तिथि संख्या = {(आवृत्ति संख्या – 1) x 6} + 1

= {(1 – 1) x 6} + 1

= 0 x 6 + 1

= 0 + 1

= 1 अर्थात् प्रथम आवृत्ति की संख्या विषम है इसलिए कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा यह तिथि प्रथम आवृत्ति की प्राप्त हुई।

विषुप तिथि संख्या = {(आवृत्ति संख्या – 1) x 6} + 3

= {(1 – 1) x 6} + 3

= 0 x 6 + 3

= 0 + 3

= 3 अर्थात् यह संख्या विषम होने से कृष्ण पक्ष की है अर्थात् प्रथम विषुप तिथि कृष्ण पक्ष की तृतीया प्राप्त हुई।

उदाहरण – 2.) 10वीं आवृत्ति विवक्षित है, तब

आवृत्ति तिथि संख्या = {(आवृत्ति संख्या – 1) x 6} + 1

= {(10 – 1) x 6} + 1

= (9 x 6) + 1

= 54 + 1

= 55 (यह राशि 15 से अधिक है, इसलिये 15 का भाग देना चाहिये), अत: 55/15 = 3 लब्ध, 10 अवशेष अर्थात् यह संख्या सम है, अत: 10वीं आवृत्ति शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि को होगी।

विषुप तिथि संख्या = {(आवृत्ति संख्या – 1) x 6} + 3

= {(10 – 1) x 6} + 3

= (9 x 6) + 3

= 54 + 3

= 57 (यह राशि 15 से अधिक है, इसलिये 15 का भाग देना चाहिये) अत: 57/15 = 3 लब्ध 12 अवशेष। यह संख्या सम है, अत: 10वाँ विषुप शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को होगा।

इस प्रकार अन्य आवृत्ति एवं विषुपों में तिथि एवं पक्ष का साधन कर लेना चाहिये।

विषुप में नक्षत्रों की संख्या और सम्पूर्ण दिन प्राप्त करने का विधान

जिस आवृत्ति का जो नक्षत्र प्राप्त हो उसमें दस मिलाने से उसी नम्बर के विषुप का नक्षत्र प्राप्त होता है तथा छठी, आठवीं और दसवीं आवृत्तियों में जो-जो नक्षत्र प्राप्त हैं, उनमें एक अंक कम अर्थात् 9 मिलाने से छठे, 8वें और 10वें विषुपों के नक्षत्र क्रमश: प्राप्त होते हैं।

आवृत्ति के पर्वों में 15 का गुणा कर उसी आवृत्ति की तिथि संख्या जोड़ने से युग के प्रारम्भ से विवक्षित आवृत्ति तक के समस्त दिनों की संख्या प्राप्त होती है।

इसी प्रकार विषुप के पर्वों को 15 से गुणित कर तिथि संख्या जोड़ने से विषुप के समस्त दिनों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

उदाहरण – 1.) प्रथम आवृत्ति का 20वाँ अभिजित् नक्षत्र है। तब इसी नंबर के विषुप का नक्षत्र क्या होगा ?

प्रथम विषुप का नक्षत्र = प्रथम आवृत्ति का नक्षत्र नम्बर + 10

= 20 + 10

= 30 अर्थात् प्रथम विषुप का दूसरा रोहिणी नक्षत्र प्राप्त हुआ।

उदाहरण – 2.) दूसरी आवृत्ति का 11वाँ हस्त नक्षत्र है। तब इसी नम्बर के विषुप का नक्षत्र क्या होगा ?

द्वितीय विषुप का नक्षत्र = दूसरी आवृत्ति का नक्षत्र नम्बर + 10

= 11 + 10

= 21अर्थात् द्वितीय विषुप का धनिष्ठा नक्षत्र प्राप्त होता है। (अभिजित् नक्षत्र को गिनती में नहीं लिया है।)

उदाहरण – 3.) छठी आवृत्ति का पुष्य नक्षत्र छठवाँ है, तब छठवें विषुप का नक्षत्र क्या होगा ?

छठवें विषुप का नक्षत्र = छठवीं आवृत्ति का नक्षत्र नं. + (10 – 1)

= 6 + 9

= 15 अर्थात् छठवें विषुप का 15वाँ अनुराधा नक्षत्र प्राप्त होता है।

उदाहरण – 4.) 10वीं आवृत्ति का पहला कृतिका नक्षत्र है तब 10वें विषुप का नक्षत्र होगा =

10वें विषुप का नक्षत्र = 10वीं आवृत्ति का नक्षत्र नं. + (10 – 1)

= 1 + 9

= 10 अर्थात् 10वें विषुप का 10वाँ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र प्राप्त होता है।

उदाहरण – 5.) 2री आवृत्ति विवक्षित है और इस आवृत्ति की तिथि तेरस है और पर्व की संख्या 24 है तब युग के प्रारम्भ से विवक्षित आवृत्ति तक के समस्त दिनों की संख्या होगी =

युग के प्रारम्भ से विवक्षित आवृत्ति तक के समस्त दिनों की संख्या = विवक्षित आवृत्ति की पर्व संख्या x 15 + उसी आवृत्ति की तिथि

= 24 x 15 + 13

= 360 + 13

= 373 दिन

अर्थात् युग के प्रारम्भ से 373वें दिन दूसरी आवृत्ति हुई।

उदाहरण – 6.) 7वाँ विषुप विवक्षित है, और इसमें पर्व की संख्या 80 है और इस विषुप की तिथि नवमी है, तब युग के प्रारम्भ से विवक्षित आवृत्ति तक के समस्त दिनों की संख्या होगी =

= विवक्षित विषुप में पर्व संख्या x 15 + उसी विषुप की तिथि

= 80 x 15 + 9

= 1200 + 9

= 1209 दिन

अर्थात् युग के प्रारम्भ से 1209 दिन बाद 7वाँ विषुप हुआ है।

विषुप में नक्षत्र प्राप्ति को और अन्य तरीके से कहते हैं–

विवक्षित आवृत्ति के नक्षत्र को अश्विनी नक्षत्र से गिने, जो संख्या प्राप्त हो उसमें 8 मिलाकर कृतिका नक्षत्र से गिनने पर विषुप का उसी नम्बर का नक्षत्र प्राप्त होता है।

उदाहरण – यहाँ विवक्षित आवृत्ति तीसरी है, इसका मृगशीर्षा नक्षत्र है, जो कि अश्विनी से गिनने पर 5वाँ है, अत: 5 + 8 = 13, कृतिका नक्षत्र से 13वाँ नक्षत्र स्वाति है, अत: तीसरे विषुप का स्वाति नक्षत्र प्राप्त होता है।

यदि आवृत्ति नक्षत्र के प्रमाण में 8 मिलाने पर लब्धराशि नक्षत्र प्रमाण (28) से अधिक हो जावे तो क्या करना है? आगे कहते हैं–

* योगफल के अधिक अंकों में से 28 घटाकर शेषांकों को कृतिका नक्षत्र से गिनना चाहिये। जो नक्षत्र प्राप्त हो, वही विषुप का नक्षत्र होगा।

उदाहरण – विवक्षित आवृत्ति चौथी है, इसका नक्षत्र शतभिषा है, जो कि अश्विनी से गिनने पर 25वाँ है, अत: 25 + 8 = 33 प्राप्त हुये जो कि 28 से अधिक है इसलिये 33 – 28 = 5, कृतिका नक्षत्र से 5वाँ नक्षत्र पुनर्वसु है। अत: चतुर्थ विषुप का पुनर्वसु नक्षत्र प्राप्त होता है।

* दूसरी और पाँचवीं आवृत्ति में कुछ विशेषता है, वह यह है – इन आवृत्तियों के नक्षत्रों को अश्विनी से गिनने पर जो–जो लब्ध प्राप्त हो उसमें 8 जोड़कर, एक–एक अंक और जोड़कर कृतिका नक्षत्र से गिनना चाहिये। जो नक्षत्र प्राप्त हो वे ही दूसरे और पाँचवें विषुप के नक्षत्र होंगे।

उदाहरण – दूसरी आवृत्ति में हस्त नक्षत्र है, जो कि अश्विनी से गिनने पर 13वाँ है, अत: 13 + 8 = 21 + 1 = 22 हुये। कृतिका नक्षत्र से 22वाँ नक्षत्र धनिष्ठा है। अत: दूसरे विषुप का धनिष्ठा नक्षत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार 5वीं आवृत्ति में जानना चाहिये।

✻ छठवीं और दसवीं आवृत्ति में भी कुछ विशेषता है, वह है – इन आवृत्तियों के नक्षत्रों को अश्विनी से गिनने पर जो–जो लब्ध प्राप्त हो उसमें 8 जोड़कर प्राप्त लब्ध में से एक–एक अंक घटा देने पर जो प्राप्त हो उसे कृतिका नक्षत्र से गिनना चाहिये जो नक्षत्र प्राप्त हो वे ही छठवें और दसवें विषुप के नक्षत्र होंगे।

उदाहरण – छठवीं आवृत्ति में पुष्य नक्षत्र है, जो कि अश्विनी से गिनने पर 8वाँ है, अत: 8 + 8 = 16 – 1 = 15 हुये। कृतिका नक्षत्र से 15वाँ नक्षत्र अनुराधा है। अत: छठवें विषुप का अनुराधा नक्षत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार 10वीं आवृत्ति में जानना चाहिये।

भरत क्षेत्र की अपेक्षा नक्षत्रों का उदय–मध्याह्न–अस्त

नक्षत्र जब विदेह क्षेत्र से निषध पर्वत पर आयेगा तब उदय होता है। और निषध पर्वत से जब विदेह क्षेत्र में जायेगा तब अस्त होता है।

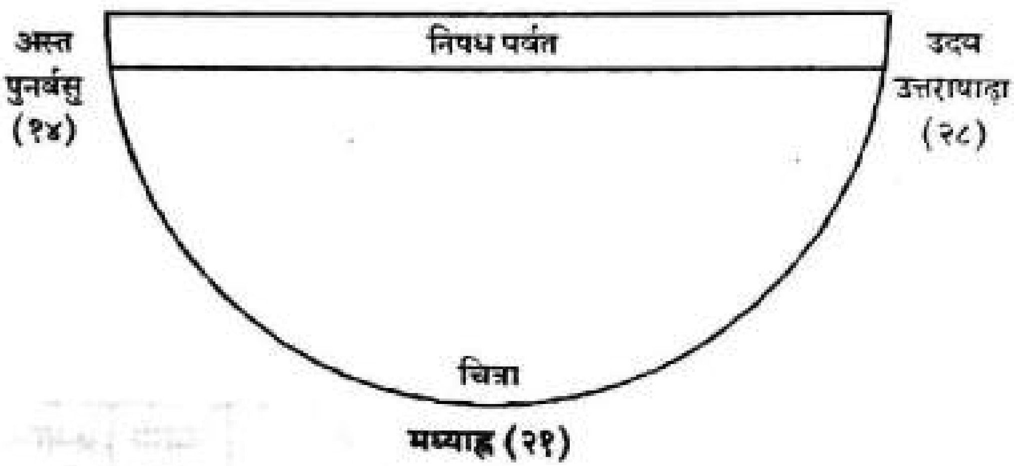

कृतिका नक्षत्र के पतन अर्थात् अस्त होने के समय में कृतिका से आठवाँ मघा नक्षत्र मध्याह्न को और मघा से 8वाँ अनुराधा नक्षत्र उदय को प्राप्त होता है। इसी प्रकार शेष रोहिणी आदि में अस्त नक्षत्र से 8वाँ नक्षत्र मध्याह्न में और इससे 8वाँ नक्षत्र उदय को प्राप्त होता है।

जैसे – ✻ जब रोहिणी नक्षत्र का अस्त तब पूर्वाफाल्गुनी का मध्याह्न और ज्येष्ठा का उदय।

✻ जब मृगशीर्षा नक्षत्र का अस्त तब उत्तराफाल्गुनी का मध्याह्न और मूल नक्षत्र का उदय।

✻ जब पुनर्वसु नक्षत्र का अस्त तब चित्रा नक्षत्र का मध्याह्न और उत्तराषाढ़ा का उदय होता है इत्यादि आगे ऐसा ही जानना चाहिये।

नक्षत्रों का भ्रमण कहाँ–कहाँ

चन्द्रमा की 15 गलियाँ हैं, उनके मध्य में 28 नक्षत्रों की 8 ही गलियाँ हैं, सभी नक्षत्र अपनी–अपनी वीथियों में ही भ्रमण करते हैं। चन्द्र–सूर्य के सदृश्य अन्य–अन्य वीथियों में भ्रमण नहीं करते हैं।

1.) चन्द्रमा की प्रथम वीथी में 12 नक्षत्र भ्रमण करते हैं, वे हैं – अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी।

2.) तृतीय वीथी में दो नक्षत्र भ्रमण करते हैं, वे हैं – पुनर्वसु और मघा।

3.) छठवीं वीथी में एक नक्षत्र ही भ्रमण करता है, वह है – कृतिका नक्षत्र।

4.) सातवीं वीथी में दो नक्षत्र भ्रमण करते हैं, वे हैं – रोहिणी और चित्रा नक्षत्र।

5.) आठवीं वीथी में एक नक्षत्र भ्रमण करता है, वह है – विशाखा।

6.) दसवीं वीथी में एक नक्षत्र भ्रमण करता है, वह है – अनुराधा।

7.) ग्यारहवीं वीथी में एक नक्षत्र भ्रमण करता है, वह है – ज्येष्ठा।

8.) पन्द्रहवीं (अन्तिम) वीथी में आठ नक्षत्र भ्रमण करते हैं, वह है – हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्प तथा आश्लेषा।

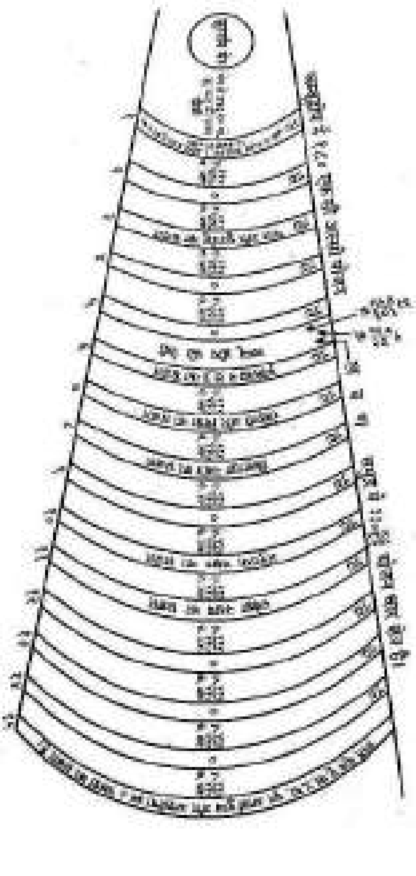

प्रशस्ति

इस प्रकार इस ग्रंथ का प्रवचन अर्थात् अध्यापन का कार्य नन्दी संघ परम्परा में कुन्दकुन्दाचार्य आम्नाय के आचार्य 108 श्री आदिसागर (अंकलीकर) परम्परा में उनके शिष्य आचार्य 108 श्री महावीरकीर्ति जी उनके महाप्रभावक शिष्य निमित्तज्ञान शिरोमणि आचार्य 108 श्री विमलसागर जी उनके प्ररम प्रभावक महायोगी शिष्य प.पू. गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी गुरुदेव के आशीर्वाद व अनुकम्पा से परम पूज्य उच्चारणाचार्य श्री विनम्रसागर जी गुरुदेव के मुखकमल से प्राप्त करके मुनि श्री विज्ञसागर जी महाराज के कुशल निर्देशानुसार संकलन का कार्य श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सोनागिर बीसपंथी कोठी में आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज के बिम्ब सम्मुख श्रावण कृष्णा एकम् वी.नि. सं. 2548 अर्थात् वीर शासन जयन्ति के अवसर पर वि.सं. 2079 सन् 2022 चातुर्मास काल में प्रारम्भ हुआ। पश्चात् वी.नि.सं. 2549 वि.सं. 2080 सन् 2023 में ललितपुर वर्षायोग प्रवास में लेखन/संकलन कार्य पूर्ण हुआ।

अत: इस प्रकार यहाँ संक्षेप में ज्योतिर्लोक का विवेचन पूर्ण हुआ विस्तार से जानने के लिए मूलग्रंथ अवश्य देखना चाहिए। इस ग्रंथ में अज्ञानतावशात् भूल से प्रमादवश कर्मों की गुरुता के भार से जो भी त्रुटियाँ रही हो तो सुधीजन हमें क्षमा करें और सुझाव प्रेषित अवश्य करें क्योंकि श्रुतसागर अगाध है। अत: पार पाना संभव नहीं है।

परिशिष्ट–1

क्षेत्र प्रमाण

1. एक अंगुल में = 8 यव
2. एक हाथ = 24 अंगुल
3. एक धनुष = 4 हाथ
4. एक कोस = 2,000 धनुष या 8000 हाथ अथवा 1,92,000 अंगुल
5. एक योजन = 4 कोस या 8,000 धनुष या 32,000 हाथ या 7,68,000 अंगुल
6. एक राजू = असंख्यात योजन या असंख्यात कोस, असंख्यात अंगुल
7. एक जगत् श्रेणी = 7 राजू, असंख्यात कोस, असंख्यात अंगुल
8. एक जगत् प्रतर = असंख्यात जगत् श्रेणी, अथवा जगत् श्रेणी $\times$ जगत् श्रेणी $(\text{जगत् श्रेणी})^2$
9. एक लोक = असंख्यात जगत् प्रतर अथवा जगत् श्रेणी $\times$ जगत् श्रेणी $\times$ जगत् श्रेणी $(\text{जगत् श्रेणी})^3$
10. एक प्रतरांगुल = असंख्यात सूच्यंगुल अथवा सूच्यंगुल $\times$ सूच्यंगुल $(\text{सूच्यंगुल})^2$
11. एक घनांगुल = असंख्यात प्रतरांगुल अथवा सूच्यंगुल $\times$ सूच्यंगुल $\times$ सूच्यंगुल $(\text{सूच्यंगुल})^3$
12. एक अंगुल = असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी के काल के समयों के बराबर आकाश प्रदेश।
13. एक प्रमाणांगुल = 500 सूच्यंगुल या 375 इंच या 31.25 फीट अथवा 31 फीट 3 इंच
14. एक महायोजन = 500 लघु योजन अथवा 2000 कोस या 1,60,00000 हाथ अथवा 38,40,00,000 सूच्यंगुल
15. एक जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भाग में = असंख्यात घनांगुल
16. एक घनांगुल के असंख्यातवें भाग में = असंख्यात प्रतरांगुल
17. एक प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग में = असंख्यात सूच्यंगुल
18. एक सूचंगुल के असंख्यातवें भाग में आकाश प्रदेश = असंख्यात कल्प काल के समयों के बराबर आकाश प्रदेश

काल प्रमाण

व्यवहार में काल की सबसे छोटी इकाई सैकण्ड है किन्तु आधुनिक विज्ञान के अनुसार 1 सैकेण्ड में एक अरब नैनो सैकण्ड होते हैं और एक नैनो सैकेण्ड में एक हजार पीको सैकेण्ड होते है। इस प्रकार पीको सैकेण्ड काल की बहुत ही छोटी इकाई होती है। मगर जैन दर्शन में काल की सबसे छोटी इकाई ''समय'' है असंख्यात समयों की एक आवली होती है जो पीको सैकेण्ड से भी छोटी होती है।

1 समय = जघन्य गति से एक परमाणु के एक प्रदेश से सटे हुए दूसरे प्रदेश के जितने काल में जाता है, वह समय है।

1. एक आवली = जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय।

2. एक उत्सर्पिणी = 10 कोड़ाकोड़ी सागर या (1,0000000000000000000000000000000) (1 नील शंख/) (31 अंक प्रमाण पल्य)

3. एक अवसर्पिणी = 10 कोड़ाकोड़ी सागर या 10000000000000000000000000000000 1 नील शंख/ (31 अंक प्रमाण पल्य)

4. एक जगत्प्रत्तर में जगत् श्रेणी प्रमाण ही जगत् श्रेणियाँ होती हैं।

विशेषार्थ– लोक में जगत् श्रेणी प्रमाण ही जगत् प्रत्तर होते हैं। एक प्रतरांगुल में सूच्यंगुल प्रमाण ही सूच्यगुल होते हैं। एक घनांगुल में सूच्यंगुल प्रमाण प्रतरांगुल होते हैं।

5. एक कल्प काल = 20 कोड़ाकोड़ी सागर या 20000000000000000000000000000000 (2 नील शंख) / (31 अंक प्रमाण पल्य)

6. एक पूर्व = 70560000000000 (7 नील, 5 खरब, 60 अरब) वर्ष/84 लाख x 84 लाख

एक कोटि पूर्व = 705600000000000000000 (सात हजार छप्पन (56) शंख वर्ष) (84 ला. x 84 ला. x 1 करोड़ अथवा 8400000 x 8400000 x10000000)

7. एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग में = असंख्यात पूर्व कोटियाँ होती हैं।

8. एक वर्ष = 360 दिन या 10,800 मुहूर्त अथवा 8640 घण्टे या 518, 400 मिनिट

9. एक दिन = 30 मुहूर्त या 8 प्रहर या 24 घण्टे या 1440 मिनिट अथवा 1,03680 स्वासोच्छ्वास (नाड़ी की धड़कन) अथवा 86,400 सैकेण्ड)

10. एक मुहूर्त = 48 मिनिट या 120 पल या 7200 विपल या 3737 श्वासोच्छवास (स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी की धड़कन

11. एक मिनिट = 60 सैकेण्ड या 2.5 पल या 150 विपल

12. एक घड़ी = 24 मिनिट या 60 पल या 3600 विपल

13. एक भिन्न मुहूर्त = एक मुहूर्त – एक समय अथवा 48 मिनट – 1 समय

14. एक अन्तर्मुहूर्त[*1] = भिन्न मुहूर्त –1 समय

जघन्य अन्तर्मुहूर्त = एक आवली + एक समय[*2]

मध्यम अन्तर्मूहूर्त = एक आवली + दो समय से लेकर भिन्न मुहूर्त—दो समय तक

15. एक पहर = 3 घण्टे या साढ़े सात घड़ी या $3\frac{3}{4}$ मुहूर्त होते हैं।

16. एक पक्ष = 15 दिन

17. एक माह = 30 दिन (720 घन्टे या 43200 मिनिट अथवा 2592000 सैकेण्ड))

[*1] मतान्तर से भिन्न मुहूर्त को भी अन्तर्मुहूर्त कह देते हैं।

[*2] आवली के असंख्यातवें भाग में भी जघन्य परीता संख्यात समय जैसी संख्याऐं असंख्या होती हैं

18. एक युग = 5 वर्ष

19. एक श्वासोच्छवास = 2000 कोड़ाकोड़ी आवलियाँ

20. एक आवली के असंख्यातवें भाग में = असंख्यात जघन्य परितासंख्यात अर्थात् जघन्य परितासंख्यात × असंख्यात*2

21. एक कल्प काल = 20 कोड़ाकोड़ी सागर (20,0000000000000 सागर)

22. एक सागरोपम = 10 कोड़ाकोड़ी पल्य

व्यवहार पल्य में रोमों की संख्या - 41 अरब, 34 करोड़ 52 लाख, 63 हजार, 30 शंख, 82 पद्म, 3 नील, 17 खरब, 77 अरब, 49 करोड़ 51 लाख 21 हजार 920 शंख अर्थात् 413452630308203177749512192000000000000000000 अर्थात् 45 अंक प्रमाण (2000 घन कोस के गड्ढे में रोमों का प्रमाण)

हम इंसान हैं तो धनवान बनें, धनवान हैं तो बुद्धिमान बनें,
बुद्धिमान हैं तो विवेकवान बनें, विवेकवान हैं तो ज्ञानवान बनें,
ज्ञानवान हैं तो पुण्यवान बनें, पुण्यवान हैं तो गुणवान बनें,
गुणवान बन गए तो भगवान बनने में देर नहीं है।

*3 मतान्तर से आवली के असंख्यातवें भाग को भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते है।

परिशिष्ट–2

जीवों की संख्या

गुणस्थानों में जीवों की संख्या

क्र.सं.	गुणस्थान	इनमें मनुष्यों की संख्या	सम्पूर्ण जीवों की संख्या
1.	मिथ्यात्व	अपर्याप्त–असंख्यात व पर्याप्त–29 अंक प्रमाण	अनंतानंत
2.	सासादन	52 करोड़	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग
3.	सम्यग्मिथ्यात्व	104 करोड़	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग
4.	असंयत सम्यग्दृष्टि	700 करोड़	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग
5.	संयतासंयत	13 करोड़	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग
6.	प्रमत्त संयत	–	5,93,98,206
7.	अप्रमत्त संयत	–	2,96,99,103
8.	अपूर्वकरण	–	897/उपशामक 299, क्षपक 598
9.	अनिवृत्तिकरण	–	897/उपशामक 299, क्षपक 598
10.	सूक्ष्म साम्पराय	–	897/उपशामक 299, क्षपक 598
11.	उपशांत मोह	–	299
12.	क्षीण मोह	–	598
13.	सयोग केवली	–	8,98,502
14.	अयोग केवली	–	598
	गुणस्थानातीत	–	अनंतानंत

✲ सम्पूर्ण पर्याप्तंक मनुष्यों की संख्या – 7 खरब, 92 अरब, 28 करोड़, 16 लाख, 25 हजार, 142 शंख, 64 पद्म, 33 नील, 75 खरब, 93 अरब, 54 करोड़, 39 लाख, 50 हजार 336 अर्थात् 79228162514264337593543950336 यह 29 अंक प्रमाण संख्या सम्पूर्ण पर्याप्तक मनुष्यों की है।

Note – ✲ इस संख्या के चार भाग करने पर तीन भाग प्रमाण मनुष्यनी है और एक भाग प्रमाण मनुष्य हैं। तथा मनुष्यों में भी नपुंसक वेदी पर्याप्तक मनुष्य भी गर्भित हैं।

❊ इतना होने पर भी प्रत्येक (पुरुष वेदी, स्त्री वेदी, नपुंसक वेदी) की संख्या भी 29 अंक प्रमाण ही है।

❊ सम्यग्दृष्टि मनुष्यों की संख्या = 7 अरब या (700 करोड़)

सम्पूर्ण संयत मनुष्यों की संख्या = 8 करोड़, 99 लाख, 99 हजार, 997

परिहार विशुद्धि संयतों की संख्या = 6997

सूक्ष्म सांपराय संयतों की संख्या = 897

आहारक शरीर वालों की संख्या = 54

आहारक मिश्र वालों की संख्या = 27

मार्गणाओं में जीवों की संख्या

मार्गणाएँ	संख्या
1.) गति मार्गणा	
❊ नरक गति (सम्पूर्ण नारकी)	असंख्यात जगत् श्रेणी प्रमाण अथवा जगत् प्रतर का असंख्यातवाँ भाग अथवा घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणित जगत् श्रेणी (जगत् श्रेणी $\times \sqrt[\frac{2}{3}]{\text{घनांगुल}}$)
प्रथम नरक	सम्पूर्ण नारकियों से कुछ कम
द्वितीय नरक	जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् जगत् श्रेणी/ जगत् श्रेणी का बारहवाँ वर्गमूल / जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\frac{12}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$
तीसरे नरक	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 10वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\frac{10}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
चतुर्थ नरक	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 8वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\frac{8}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
पंचम नरक	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 6वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\frac{6}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
षष्ठम् नरक	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का तीसरा वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\frac{3}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
सप्तम् नरक	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का दूसरा वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\frac{2}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]

नोट–सबसे अधिक नारकी प्रथम नरक में पाये जाते हैं, अथवा यूँ कहो माना सम्पूर्ण नारकी दस लाख है तो प्रथम नरक में नौ लाख निन्यानवें हजार है और शेष छ: नरकों में एक हजार हैं। यह केवल मानक (अंक संदृष्टि) है अर्थ संदृष्टि की अपेक्षा सभी नरकों में असंख्यात ही हैं फिर भी अल्पबहुत्व कहने पर प्रथम नरक से कम दूसरे नरक में, दूसरे से कम तीसरे नरक में, तीसरे से कम चौथे नरक में, चौथे से कम पाँचवें नरक में, पाँचवें से कम छठवें नरक में और सबसे कम नारकी सप्तम नरक में है।

नोट–प्रत्येक नरक के ऊपर से लेकर नीचे तक असंख्यातवें भाग हीन–हीन होते गये हैं।

✻ तिर्यंच गति (सम्पूर्ण तिर्यंच)	अनन्तानन्त
पंचेन्द्रिय तिर्यंच	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^2/आवली का असंख्यातवाँ भाग]

Note – देवों के अवहार काल को आवली के असंख्यातवें भाग से खंडित (भाजित) करने पर सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की संख्या प्राप्त होती है। अर्थात् देवों की संख्या से असंख्यात गुणें हैं।[*1]

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^2/संख्यात] देवों से संख्यात गुणे कारण सुगम है।
योनिनी तिर्यंच	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^2 × संख्यात] (देवों की संख्या से संख्यात गुणेहीन)
पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	असंख्यात [जगत् प्रतर/256 सूच्यंगुल/असंख्यात]

✻ मनुष्य गति (सम्पूर्ण मनुष्य)	असंख्यात $\left[\frac{\text{जगत् श्रेणी}-1}{\sqrt{\text{सूच्यंगुल}} \times \sqrt[\frac{3}{2}]{\text{सूच्यंगुल}}}\right]$
पर्याप्त मनुष्य (पुरुष वेदी + स्त्री वेदी)	संख्यात [29 अंक प्रमाण]
मनुष्यनी (स्त्री वेदी)	पर्याप्त मनुष्य (29 अंक प्रमाण) का ¾ भाग
मनुष्य (पुरुष वेदी)	पर्याप्त मनुष्य (29 अंक प्रमाण) का ¼ भाग

Note – द्विरूप वर्ग धारा के पंचम वर्ग के घन प्रमाण $(65536)^3$ =7,92,28,16,25,14, 26,43,37, 59,35,43,950,336

यह 29 अंक प्रमाण संख्या पर्याप्त मनुष्यों की है। (7 खरब 92 अरब 28 करोड़ 16 ला. 25 हजार 142 शंख 64 पद्म 33 नील 75 खरब 93 अरब 54 करोड़ 39 लाख 50 हजार 3 सौ 36)

✻[1] असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण या जगत् प्रतर का असंख्यातवाँ भाग अथवा देवों के भागहार को आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित कर उसका भाग जगत्प्रतर में देने पर पचेन्द्रिय तिर्यंचों की संख्या प्राप्त होती है।

शंका–यह कैसे जाना कि देवों से असंख्यातवें भाग अधिक पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं ?

समाधान–क्योंकि देवों के अवहार (भागहार) से तिर्यंचों का अवहार असंख्यात असंख्यात भागहीन है यदि भागहार हीन हो तो भाग फल अधिक होगा। यदि भागहार अधिक है तो भागफल कम होगा यह नियम है इस नियमानुसार तिर्यंच असंख्यात गुणे हैं।

※ देव गति (सम्पूर्ण देव)	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^2] से कुछ अधिक

देवियाँ —सम्पूर्ण देवों की संख्या के 33 भाग करने पर 32 भाग देवी व 1 भाग प्रमाण देव है।

भवनवासी देव	असंख्यात (जगत् श्रेणी × $\sqrt{\text{घनांगुल}}$)
व्यन्तर देव	असंख्यात [जगत् प्रतर/(300 योजन)^2]
ज्योतिषी देव	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^2]

Note – व्यन्तर देवों से ज्योतिष देव 81 हजार करोड़ गुणे अथवा 8 खरब 1 अरब गुणे हैं। (व्यन्तर देव × 81 हजार करोड़) सम्पूर्ण देव = असंख्यात

वैमानिक देवों में सौधर्म व ऐशान स्वर्ग में	असंख्यात (जगत् श्रेणीx$\sqrt[\overset{3}{2}]{\text{घनांगुल}}$)[*1] अथवा जगत् श्रेणीxघनांगुल का तीसरा वर्गमूल
सानत कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग में	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 11वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\overset{11}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 9वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\overset{9}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
लान्तव, कापिष्ठ स्वर्ग में	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 7वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\overset{7}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग में	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का 5वाँ वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\overset{5}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
शतार, सहस्रार स्वर्ग में	जगत् श्रेणी/जगत् श्रेणी का चौथा वर्गमूल [जगत् श्रेणी/ $\sqrt[\overset{4}{2}]{\text{जगत् श्रेणी}}$]
आनत, प्राणत स्वर्ग में	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
आरण, अच्युत स्वर्ग में	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
नौ ग्रैवेयक प्रत्येक में	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
नौ अनुदिश प्रत्येक में	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग) ,, ,,
विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित चारों अनुत्तरों में (प्रत्येक में)	असंख्यात
सर्वार्थसिद्धि में	संख्यात [मनुष्यनियों से तीन या सात गुणे]

2.) इन्द्रिय मार्गणा	
एकेन्द्रिय सूक्ष्म व बादर पर्याप्तक अपर्याप्तक	अनंतानंत (अनंतानंत लोक प्रमाण)
त्रस जीव सामान्य से	जगत्प्रतर/प्रतरांगुल असंख्यातवाँ भाग या जगत्प्रतर/प्रतरांगुल/असंख्यात
2,3,4,5 इन्द्रिय पर्याप्तक	असंख्यात [जगत् प्रतर/प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग]
2,3,4,5 इन्द्रिय अपर्याप्त	असंख्यात [जगत् प्रतर/प्रतरांगुल/असंख्यात]

Note– उपरोक्त संख्या प्रत्येक इन्द्रिय में अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि सभी लगा लेना चाहिये।

अथवा अपनी अपनी राशि में से पर्याप्त राशि कम करके शेष अपर्याप्त राशि अनंतानंत या अनंत लोक प्रमाण।

भवनवासी देवों से कल्पवासी देव असंख्यात गुणेहीन हैं व्यन्तरों से भवनवासी देव असंख्यात गुणे ही है। ज्योतिषियों से व्यन्तर देव संख्या हजार (81 हजार) करोड़ गुणे हीन हैं।

3.) काय मार्गणा	
स्थावर काय पर्याप्तक अपर्याप्तक	अनंतानंत या अनंत लोक प्रमाण
त्रस काय पर्याप्त अपर्याप्तक	असंख्यात [जगत् प्रतर/प्रतरांगुल/आवली का असंख्यातवाँ भाग] या जगत्प्रतर में आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित प्रतरांगुल का भाग देने पर
4.) योग मार्गणा	
पाँच मनोयोगी व पाँच वचन योग	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^{2}xसंख्यात]
औदारिक व औदारिक मिश्र काय योग	अनंतानंत या अनंतलोक प्रमाण
वैक्रियक काय योग	असंख्यात [जगत् प्रतर/(256 सूच्यंगुल)^2–संख्यात]
वैक्रियक मिश्र काययोग	असंख्यात [देव राशि/संख्यात]
आहारक काय योग	संख्यात [54]
आहारक मिश्र काय योग	संख्यात [27]
5.) वेद मार्गणा	
स्त्री वेदी	असंख्यात (देवियों से कुछ अधिक)
पुरुष वेदी	असंख्यात (देवों से कुछ अधिक)
नपुंसक वेदी	अनंतानंत या अनंत लोक प्रमाण
अपगत वेदी	अनंतानंत (सिद्ध राशि की अपेक्षा)

6.) कषाय मार्गणा	
क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय	अनंतानंत या अनंत लोक प्रमाण
अकषायी	अनंतानंत (सिद्धराशि की अपेक्षा)
7.) ज्ञान मार्गणा	
कुमति, कुश्रुत ज्ञानी	अनंतानंत या अनंतानंत लोक प्रमाण
विभंगज्ञानी	असंख्यात (देवों से कुछ अधिक) (जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग)
मति, श्रुत अवधि ज्ञानी	असंख्यात (पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग)
मन: पर्यय ज्ञानी	संख्यात
केवलज्ञानी	अनंतानंत (सिद्धराशि की अपेक्षा)
अग्निकायिक – असंख्यात	असंख्यात लोक प्रमाण
पृथ्वीकायिक – '' ''	'' '' ''
जलकायिक – '' ''	'' '' ''
वायुकायिक – '' ''	'' '' ''
वनस्पतिकायिक – अनंतानंत	अनंतानंत लोक प्रमाण
8.) संयम मार्गणा	
असंयत	अनंतानंत या अनंतलोक प्रमाण
संयतासंयत	असंख्यात (पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग)
सामायिक, छेदोपस्थापना	संख्यात (8,90,97,309) अर्थात कोटि पृथक्त्व
परिहार विशुद्धिसंयम	संख्यात (6997) अर्थात् सहस्र पृथक्त्व
सूक्ष्म साम्पराय संयम	संख्यात (897) अर्थात् शत पृथक्त्व
यथाख्यात संयम	संख्यात (8,98,502) अर्थात् लक्ष पृथक्त्व
9.) दर्शन मार्गणा	
चक्षु दर्शनी	असंख्यात [जगत् प्रतर/(सूच्यंगुल)^2/संख्यात]
अचक्षु दर्शनी	अनंतानंत या अनंतलोक प्रमाण
अवधि दर्शनी	असंख्यात (अवधि ज्ञानियों के समान)
केवल दर्शनी	अनंतानंत (केवलज्ञानियों के समान)

10.) लेश्या, मार्गणा	
कृष्ण, नील, कापोत लेश्या	अनंतानंत (असंयमियों के समान) अनंतलोक प्रमाण
पीत लेश्या	असंख्यात (ज्योतिषी देवों से कुछ अधिक)
पद्म लेश्या	असंख्यात (जगत् प्रतर/संख्यात प्रतरांगुल)
शुक्ल लेश्या	असंख्यात (पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग)
11.) भव्य मार्गणा	
भव्य सिद्धिक	अनंतानंत या अनंतलोक प्रमाण
अभव्य सिद्धिक	जघन्य युक्तानंत
12.) सम्यक्त्व मार्गणा	
मिथ्यात्व सम्यक्त्वी	अनंतानंत (असंयतों से कुछ कम) अनंतलोक प्रमाण
सासादन सम्यक्त्वी	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
मिश्र सम्यक्त्वी	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
उपशम, क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि	असंख्यात (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
क्षायिक सम्यग्दृष्टि	असंख्यात (पल्योपम के संख्या आवली)
13.) संज्ञी मार्गणा	
संज्ञी	असंख्यात (देवों से कुछ अधिक)
असंज्ञी	अनंतानंत (असंयतों के समान)
14.) आहार मार्गणा	
आहारक	अनंतानंत
अनाहारक	अनंतानंत

नोट– एक निगोद शरीर में अथवा एक आलू में अथवा एक कंद में जीवों की संख्या $(\text{सिद्धराशि})^{\text{सिद्धराशि}}$ अर्थात् सम्पूर्ण सिद्धराशि का विरलन (बिखेर) कर प्रत्येक अंक पर सिद्धराशि देय देकर गुणा करें तो एक आलू या एक निगोद शरीर के जीवों की संख्या आ जाती है इतने जीव एक आलू में पाये जाते हैं।

परिशिष्ट–3
सूत्र निर्देश

सामान्य सूत्र – 1.) हानि अथवा चय = $\frac{\text{भूमि–मुख}}{\text{ऊँचाई}}$

2.) त्रिभुज या चतुर्भुज का क्षेत्र = $\frac{\text{भूमि–मुख}}{2}$ x ऊँचाई (पद)

3.) त्रिभुज या चतुर्भुज का घनफल = क्षेत्रफल x वेद्य (मोटाई)

चतुरस्र सम्बन्धी सूत्र ❊ चतुरस्र का क्षेत्रफल = लम्बाई × चौड़ाई

❊ चतुरस्र की परिधि = 2 × [लम्बाई + चौड़ाई]

❊ चतुरस्र का घनफल = लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई

वृत्त (Circle) सम्बन्धी सूत्र ❊ बादर परिधि = 3 × व्यास अर्थात् 3 dia [त्रि.सा. – 311]

❊ सूक्ष्म परिधि = $\sqrt{\text{व्यास}^2 \times 10}$ अर्थात् $(\text{व्यास}^2 \times 10)^{1/2}$ अर्थात् $2\pi r$ [त्रि.सा.– 96, ज.प./1/23,4/34, ति.प./1/117]

❊ बादर या सूक्ष्म क्षेत्रफल = बादर या सूक्ष्म परिधि × व्यास/4 अर्थात् πr^2

❊ वृत्त का खातफल (घनफल) = क्षेत्रफल × वेध (ऊँचाई) अर्थात् $\pi r^2 h$ [(ति.प./1/117), (ज.प./1/24, 4/34), त्रि.सा./96,311]

❊ वृत्त विष्कम्भ या व्यास (diameter) = 4 वाण^2 + जीवा^{2}/4 वाण [(त्रि.सा. 761, 763), (ज.प./6/7)]

अथवा = वाण + जीवा^{2}/4 वाण [ज.प./6/12]

अथवा = $\frac{(\text{धनुष पृष्ठ}^2 \div \text{वाण}) - \text{वाण}}{2}$ [त्रि.सा./765]

धनुष (arc) सम्बन्धी सूत्र–

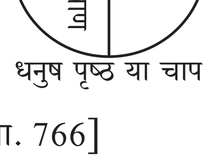

1.) जीवा (chord) = $\sqrt{(\text{व्यास} - \text{वाण})\, 4\, \text{वाण}}$ [ज.प. /6/9]

अथवा $(\text{धनुष पृष्ठ}^2 - 6\ \text{बाण}^2)^{1/2}$ [त्रि.सा. 766]

2.) वाण (depth of the arc) = $\{(\text{धनुष पृष्ठ}^2 - \text{जीवा}^2) \div 6\}^{1/2}$ [त्रि.सा. 766]

अथवा व्यास^2 + $\frac{[\text{धनुष पृष्ठ}^2]^{1/2}}{2}$ – व्यास [त्रि.सा./765]

3.) धनुष पृष्ठ (arc) = $\{$(व्यास + वाण/2) 4 वाण$\}^{½}$ [त्रि.सा./766]

अथवा (6 वाण^2 + जीवा^{2})^{½} [ज.प./6/10, त्रि.सा./760]

4.) धनुष का क्षेत्रफल = ✻ बादर क्षेत्रफल = वाण × जीवा + वाण/2 [त्रि.सा./762]

✻ सूक्ष्म क्षेत्रफल = [10$\{$जीवा × वाण/4$\}^2$]^{½} [त्रि.सा./762]

5.) क्षेत्र या पर्वत की चूलिका = $\frac{\text{बड़ी जीवा – छोटी जीवा}}{2}$ [ज.प./2/31]

वृत्त वलय [ring] सम्बन्धी सूत्र–

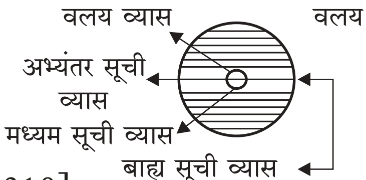

1.) अभ्यन्तर सूची का व्यास = 2 वलय व्यास – 3,00,000

2.) मध्यम सूची व्यास = 3 वलय व्यास – 3,00,000

3.) बाह्य सूची व्यास = 4 वलय व्यास – 3,00,000 [त्रि.सा. – 310]

4.) वृत्त वलय का क्षेत्रफल =

✻ बादर क्षेत्रफल = 3 [अभ्यंतर सूची + बाह्य सूची] × $\frac{\text{वलय व्यास}}{2}$

✻ सूक्ष्म क्षेत्रफल = 10 × $\{$(अभ्यंतर सूची + बाह्य सूची) × $\frac{\text{वलय व्यास}}{2}\}^2$ [त्रि.सा. – 315]

5.) वृत्त वलय की बाह्य परिधि = अभ्यंतर परिधि × बाह्य सूची/अभ्यंतर सूची

विवक्षित द्वीप सागर सम्बन्धी सूत्र

1.) जम्बूद्वीप की अपेक्षा विवक्षित द्वीप सागर की परिधि = $\frac{\text{जम्बूद्वीप की परिधि × विवक्षित सूची व्यास}}{\text{जम्बूद्वीप का व्यास}}$

[त्रि.सा./314]

2.) विवक्षित द्वीप सागर की सूची = ($2^{\text{गच्छ}+1}$ × 100000) – 300000 [त्रि.सा./309]

3.) विवक्षित द्वीप सागर का वलय व्यास = ($2^{\text{गच्छ}-1}$ × 100000) – 0 [त्रि.सा./309]

4.) विवक्षित द्वीप सागर के क्षेत्रफल में जम्बूद्वीप समान खण्ड = बाह्य सूची^{2} – अभ्यंतर सूची^{2}/जम्बूद्वीप का व्यास^2 [त्रि.सा./316]

अथवा वलय की शलाका – 12 वलय व्यास (शलाका अर्थात् जैसे 200000 की शलाका = 2) [त्रि.सा./318]

अथवा $\frac{\text{(बाह्य सूची – वलय व्यास) × 4 वलय व्यास}}{100000^2}$ [त्रि.सा./317]

5.) विवक्षित द्वीप सागर की बाह्य परिधि से घिरे हुये सर्व क्षेत्र में जम्बूद्वीप समान खण्ड = (बाह्य सूची की शलाका)^2 [शलाका अर्थात् 200000 की शलाका = 2] [त्रि.सा./317]

बेलनाकार [cylindrical] सम्बन्धी सूत्र

1.) बेलन का क्षेत्रफल = गोल परिधि × ऊँचाई

2.) बेलनाकार आकृति का घनफल=मूल क्षेत्रफल×ऊँचाई [अर्थात् area of the basex height]

मृदंगाकार का क्षेत्रफल = $\frac{\text{मुख + भूमि}}{2}$ × ऊँचाई [ति.प./1/165]

शंख का क्षेत्रफल = 2 मोटाई {(लम्बाई^2 – मुख व्यास/2) + (मुख व्यास/2)^2} [त्रि.सा. 327]

गोलाकार संबंधी सूत्र

1.) गोल वस्तु का घनफल = (व्यास/2)^3 × 1/2 × 9

2.) गोल वस्तु का शिखाफल = घनफल ÷ 3

3.) शिखा सहित कुण्ड का घनफल = (व्यास/2)^2 × 3 × {$\frac{\text{(वेध × 11) + व्यास/11}}{2}$}

सागर के अर्धच्छेद प्राप्त करने का विधान

1.) गुण्य व गुणकार राशि के अर्थच्छेदों को जोड़ने पर गुणनफल रूप राशि के अर्धच्छेद राशि की प्राप्ति का विधान–

सूत्र–गुणनफल रूप लब्धराशि के अर्धच्छेद=गुण्यमान राशि के अर्धच्छेद+गुणकार राशि के अर्धच्छेद

उदा.– माना गुण्यमान राशि 16 है और गुणकार राशि 8 है। 16 × 8 = 128 लब्धराशि प्राप्त हुई। यहाँ गुण्यमान राशि 16 के अर्धच्छेद $8^1,4^2,2^3,1^4$ = 4 और गुणकार राशि 8 के अर्धच्छेद 4^1, 2^2, 1^3, = 3 प्राप्त होते हैं।

अत: गुण्यमान राशि के अर्धच्छेद + गुणकार राशि के अर्धच्छेद = लब्ध राशि के अर्धच्छेद

4 + 3 = 7

यह 7 लब्धराशि 128 के अर्धच्छेद है।

सागर के अर्धच्छेद प्राप्त करने का विधान =

इस नियमानुसार – गुण्यमान राशि = पल्य, गुणकार राशि = 10 कोड़ाकोड़ी । अत: गुण्य को गुणकार राशि से गुणा (पल्य × 10 कोड़ाकोड़ी) करने पर सागर की उत्पत्ति होती है यहाँ गुणकार राशि 10 कोड़ाकोड़ी के अर्धच्छेद संख्यात हैं, इन्हें गुण्यमान राशि पल्य के अर्धच्छेदों में जोड़ देने से सागर के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं।

सागर के अर्धच्छेद = 10 कोड़ाकोड़ी के अर्धच्छेद (संख्याात) + पल्य के अर्धच्छेद

सागर वर्ग रूप संख्या नहीं है, इसलिए सागर की वर्गशलाका नहीं है। द्विरूप वर्गधारा में सागर की उत्पत्ति नहीं है।

2.) भाज्य व भाजक राशि के अर्धच्छेदों में भाज्य के अर्धच्छेदों में से भाजक के अर्धच्छेद घटाने पर भजनफल रूप राशि के अर्धच्छेद राशि की प्राप्ति का विधान–

सूत्र–भजनफल रूप लब्ध राशि के अर्धच्छेद=भाज्य राशि के अर्धच्छेद–भाजक राशि के अर्धच्छेद

उदा. – माना भाज्य राशि 64 और भाजक राशि 4 है। $64 \div 4 = 16$ लब्धराशि प्राप्त हुई। यहाँ भाज्य राशि के अर्धच्छेद $32^1, 16^2, 8^3, 4^4, 2^5, 1^6 = 6$ और भाजक राशि के अर्धच्छेद $2^1, 1^2 = 2$ प्राप्त होते हैं।

अत: भजनफल राशि के अर्धच्छेद = भाग्य राशि के अर्धच्छेद – भाजक राशि के अर्धच्छेद

= 6 – 2

= 4

यह 4 लब्धराशि 16 के अर्धच्छेद है।

सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों की प्राप्ति का विधान

3.) विरलन राशि में देय राशि के अर्धच्छेदों का गुणा करने से उत्पन्न (लब्ध) राशि के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं।

सूत्र – विरलन राशि x देय राशि के अर्धच्छेद = उत्पन्न राशि के अर्धच्छेद।

अर्धच्छेद व वर्गशलकाऐं प्राप्त करने के सूत्र–

1. गुणनफल रूप लब्धराशि के अर्धच्छेद =गुण्यमान राशि के अर्धच्छेद+गुणकार राशि के अर्धच्छेद इस सूत्र से सागर के अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं।

2. भजनफल रूप लब्धराशि के अर्धच्छेद = भाज्य राशि के अर्धच्छेद–भाजक राशि के अर्धच्छेद

3. उत्पन्न राशि के अर्धच्छेद= विरलन राशि x देय राशि के अर्धच्छेद

इस सूत्र में सूच्यंगुल के व जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं।

4. उत्पन्न राशि की वर्गशलाका = विरलन राशि के अर्धच्छेद+देय राशि के अर्धच्छेद

इस सूत्र से सूच्यंगुल की वर्गशलाकाऐं प्राप्त होती है।

5. प्रतरांगुल के अर्धच्छेद = सूच्यंगुल के अर्धच्छेद x 2

6. प्रतरांगुल की वर्गशलाका = सूच्यंगुल की वर्गशलका +1

7. घनांगुल के अर्धच्छेद = सूच्यंगुल के अर्धच्छेद x 3

8. घनांगुल की वर्गशलाका = सूच्यंगुल की वर्गशलाकाऐं= घनांगुल की वर्गशलाकाऐं

9. उत्पन्न राशि के अर्धच्छेद = विरलन राशि x देय राशि के अर्धच्छेद

10. उत्पन्न राशि की वर्गशलाका = विरलन राशि के अर्धच्छेद+देय राशि के अर्धच्छेद के अर्धच्छेद इस सूत्र से जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाऐं प्राप्त होती है।

11. जगत्प्रतर के अर्धच्छेद = जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद x 2

12. जगत्प्रतर की वर्गशलाकाऐं = जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाऐं +1

13. घनलोक के अर्धच्छेद = जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद x 3

14. घनलोक की वर्गशलाकाऐं = जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाऐं=घनलोक की वर्गशलाका

15. राजू = $\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{7}$

माना विरलन राशि = 4 (पल्य के अर्धच्छेद) और देय राशि = 16 (पल्य) है। इसके अर्धच्छेद (8, 4, 2, 1) अर्थात् = 4 हुये।

सूच्यंगुल – अद्धापल्य की अर्धच्छेद राशि का विरलन करके एक-एक के ऊपर अद्धापल्य की देय राशि रूप देकर परस्पर गुणा करने से सूच्यंगुल प्राप्त होता है।

अत: 16 16 16 16 = 65536 (सूच्यंगुल) लब्ध राशि।
1 1 1 1

सूच्यंगुल (लब्ध राशि) के अर्धच्छेद = विरलन राशि × देय राशि के अर्धच्छेद

= 4 × 4

= 16

यह 16 अर्धच्छेद लब्ध राशि सूच्यंगुल स्वरूप 65536 के हैं।

उपर्युक्त नियमानुसार — यहाँ पर विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद है, इसमें पल्य स्वरूप देय राशि के अर्धच्छेदों का गुणा करने पर सूच्यंगुल स्वरूप लब्ध राशि के अर्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है जो कि पल्य के अर्धच्छेदों के वर्ग प्रमाण है।

सूच्यंगुल के अर्धच्छेद = (पल्य के अर्धच्छेद) x (पल्य के अर्धच्छेद) = छेछे

सूच्यंगुल की वर्ग शलाकाओं की प्राप्ति का विधान

4.) विरलन राशि के अर्धच्छेदों को देय राशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेदों में मिलाने (जोड़ देने) से विरलन एवं देय के द्वारा उत्पन्न हुई राशि की वर्ग शलाकाओं का प्रमाण होता है।

सूत्र – विरलन राशि के अर्धच्छेद + देय राशि के अर्धच्छेद के अर्धच्छेद=उत्पन्न राशि की वर्ग शलाका

माना विरलन राशि = 4, देय राशि = 16 और विरलन, देय से उत्पन्न राशि = 65536 है। यहाँ विरलन राशि 4 के अर्धच्छेद ($2^1, 1^2$) 2 हैं, देय राशि 16 के अर्धच्छेद ($8^1, 4^2, 2^3, 1^4$) 4 है। इस 4 के भी अर्धच्छेद (2^1, 1^2) 2 है।

अत: उत्पन्न राशि की वर्गशलाका=विरलन राशि के अर्धच्छेद+देय राशि के अर्धच्छेद के अर्धच्छेद

= 2 + 2

= 4 वर्गशलाकाएँ

यह 4 उत्पन्न राशि 65536 की वर्गशलाका है।

उपर्युक्त दृष्टान्तानुसार – यहाँ विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद है, अत: विरलन राशि के अर्धच्छेद ही पल्य की वर्ग शलकाएँ हैं क्योंकि अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद वर्गशलाका है। और देय राशि पल्य है और देय राशि पल्य के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद भी पल्य की वर्गशलाकाएँ हैं।

इस प्रकार (विरलन राशि के अर्धच्छेद = पल्य की वर्गशलाकाएँ) + (देय राशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद = पल्य की वर्गशलाकाएँ) = पल्य की दो अर्थात् दुगुनी वर्ग शलाकाएँ प्राप्त हुई जो कि सूच्यंगुल की वर्ग शलाकाओं का प्रमाण है। अर्थात् **सूच्यंगुल की वर्ग शलाका = व1 + व1 = व2**

प्रतरांगुल के अर्धच्छेद प्राप्त करने का विधान – प्रतरांगुल सूच्यंगुल का वर्ग होता है।

5.) ''वग्गादुवरिमद्दिदगुणा दुगुणा हवन्ति अद्धद्दि'' अर्थात् स्वस्थान में वर्ग से ऊपर के वर्ग में अर्धच्छेद भी दुगने–दुगने होते हैं। इस नियम के अनुसार सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से प्रतरांगुल के अर्धच्छेद दूने होते हैं।

प्रतरांगुल के अर्धच्छेद = सूच्यंगुल के अर्धच्छेद x 2

= छे छे x 2

= छे छे 2

प्रतरांगुल की वर्ग शलाकाओं को प्राप्त करने का विधान –

6.) ''वग्गसलारूवहिया'' अर्थात् वर्ग स्थान से ऊपर के वर्ग स्थान की वर्ग शलाकाएँ एक अधिक होती है, ऐसा नियम है। इस नियम के अनुसार सूच्यंगुल की वर्ग शालाओं से प्रतरांगुल की वर्ग शलाकाएँ एक अधिक प्रमाण वाली होती है। अर्थात् सूच्यंगुल की वर्गशलाका + 1 = प्रतरांगुल की वर्गशलाकाएँ

प्रतरांगुल की वर्गशलाकाएँ = सूच्यंगुल की वर्गशलाका +1

= व 2 + 1

घनांगुल के अर्धच्छेद व वर्गशलाका प्राप्त करने का विधान

घनांगुल के अर्धच्छेद प्राप्त करने का विधान –

7.) सूच्यंगुल का घन घनांगुल होता है। द्विरूप वर्गधारा में जिस स्थान पर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है, द्विरूप घन धारा में उसी स्थान पर घनांगुल की उत्पत्ति होती है। ''तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे''। अर्थात् परस्थान में वर्ग से ऊपर के वर्ग में अर्धच्छेद भी तिगुने–तिगुने होते हैं। इस सूत्रानुसार सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से घनांगुल के अर्धच्छेद नियम से तिगुने होते हैं।

घनांगुल के अर्धच्छेद = सूच्यंगुल के अर्धच्छेद x 3

= छे छे x 3 = छे छे 3

घनांगुल की वर्ग शलाकाओं को प्राप्त करने का विधान –

8.) **''सपदे परसम'' अर्थात् परस्थान के अपेक्षा से अपने अर्थात् स्वस्थान सदृश ही होता है।** इस न्यायानुसार सूच्यंगुल और घनांगुल की वर्ग शलाकाएँ बराबर होती हैं। अर्थात् सूच्यंगुल की वर्ग शलाकाएँ = घनांगुल की वर्ग शलाकाएँ

व2 = व2

जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद व वर्गशलाका प्राप्त करने का विधान

जगच्छ्रेणी – अद्धापल्य की अर्धच्छेद राशि के असंख्यातवें भाग राशि का विरलन करके प्रत्येक एक–एक के ऊपर घनांगुल को देय राशि रूप देकर परस्पर में गुणा करने से जगच्छ्रेणी उत्पन्न होती है। अर्थात् घनांगुल x घनांगुल............. $\frac{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}}$ बार= जगच्छ्रेणी

9.) **''विरलिज्जभाणरासिं दिण्णस्स'' इस न्यायानुसार पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग स्वरूप विरलन राशि को, देय राशि स्वरूप घनांगुल के अर्धच्छेदों से गुणा करने पर जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं।**

सूत्र – विरलन राशि x देय राशि के अर्धच्छेद = उत्पन्न राशि के अर्धच्छेद

$$\text{जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद} = \frac{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}} \times \text{घनांगुल के अर्धच्छेद}$$

$$= \frac{\text{छे}}{g} \times \text{छे छे } 3$$

अर्थात् जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे छे छे } 3}{g}$

जगच्छ्रेणी की वर्ग शलाकाओं को प्राप्त करने का विधान–

10.) **अद्धापल्य की वर्ग शलाकाओं में जघन्य परीतासंख्यात के दुगुणे का भाग देने पर जो लब्ध उपलब्ध हो उसमें घनांगुल की वर्गशलाकाओं को जोड़ देने से जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाएँ प्राप्त होती हैं।**

सूत्र – विरलन राशि के अर्धच्छेद+देय राशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद=उत्पन्न राशि की वर्ग शलाकाएँ।

यहाँ जगत्श्रेणी की विरलन राशि = अद्धापल्य के अर्धच्छेद के असंख्यातवें भाग प्रमाण इस विरलन राशि के अर्धच्छेद करने पर दुगुने जघन्य परीतासंख्यात से भाजित पल्य की वर्गशलाका आती है।

यहाँ जगत्श्रेणी की देय राशि = घनांगुल है, इसके अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद करने पर घनांगुल की वर्ग शलाका आती है।

अर्थात् अद्धापल्य की वर्ग शलाका/2 जघन्य परीतासंख्यात + व2 = जगत्श्रेणी की वर्ग शलाका

अथवा $\left(\frac{\text{व}}{16\times2}\right)$+व2 = जगत्श्रेणी की वर्ग शलाका [यहाँ जघन्य परीतासंख्यात को 16 माना है।]

जगत्प्रतर के अर्धच्छेद व वर्गशलकाऐं प्राप्त करने का विधान

जगत्प्रतर के अर्धच्छेद प्राप्त करने का विधान– जगत् श्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं।

11.) **''वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा–दुगुणा अर्थात् स्वस्थान में वर्ग से ऊपर के वर्ग में अर्धच्छेद भी दुगुने–दुगुने होते हैं।** इस सूत्र के अनुसार जगत्छ्रेणी के अर्धच्छेदों से जगत्प्रतर के अर्धच्छेद दूने होते हैं।

जगत्प्रतर के अर्धच्छेद = जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद x 2

$= \frac{\text{छे छे छे } 3}{g} \times 2$

$= \frac{\text{छे छे छे } 6}{g}$

जगत्प्रतर की वर्गशलाका प्राप्त करने का विधान

12.)**''वग्गसलारूवहिया'' अर्थात् वर्ग स्थान से ऊपर के वर्गस्थान की वर्गशलाकाएँ एक अधिक होती हैं।** इस न्यायानुसार जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाओं से जगत्प्रतर की वर्गशलाकाएँ एक अधिक होती है।

अर्थात् जगत्श्रेणी की वर्ग शलाकाएँ + 1 = जगत्प्रतर की वर्ग शलाकाएँ

अत: जगत्प्रतर की वर्ग शलाकाएँ = $\frac{\text{व}}{16\text{x}2}$ + व2+1

घनलोक के अर्धच्छेद प्राप्त करने का विधान

जगच्छ्रेणी के घन को घनलोक कहते हैं।

13.) **''तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे'' अर्थात् परस्थान में वर्ग से ऊपर के वर्ग में अर्धच्छेद भी तिगुने–तिगुने होते हैं।** इस सूत्रानुसार जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेदों से घनलोक के अर्धच्छेद तिगुने होते हैं।

घनलोक के अर्धच्छेद = जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद × 3

$= \frac{\text{छे छे छे } 3}{g} \times 3$

अत: घनलोक के अर्धच्छेद $= \frac{\text{छे छे छे } 9}{g}$

घनलोक की वर्गशलाका प्राप्त करने का विधान

''सपदेपरसम'' अर्थात् परस्थानापेक्षा अपने अर्थात् स्वस्थान सदृश ही वर्गशलाका होती है। इस सूत्रानुसार घनलोक की वर्गशलाकाएँ जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाओं के बराबर ही होती है।

अर्थात् जगत्श्रेणी की वर्गशलाका = घनलोक की वर्गशलाका

(व/16 × 2) + व2 = (व/16 × 2) + व 2

अत: घनलोक की वर्गशलाका = $\frac{\text{व}}{16x2}$ + व 2

राजू

राजू= कोई देव प्रथम समय में एक लाख योजन गमन करकें द्वितीय समय में दो लाख योजन चले, तृतीय समय में चार लाख, चतुर्थ समय में आठ लाख इस प्रकार क्रमश: 25 कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्यों के जितने समय होते हैं उतने समयों में जितनी दूरी तय करता (चलता) है उतना बड़ा आधा राजू होता है।

इसके बाद एक बार और चलाया जाये क्योंकि वह दो गुणा चलता है तो 25 कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों के समयों में आधा राजू चलता है तो एक बार और चलाने पर पूरा एक राजू हो जाता है। अथवा कोई देव 25 कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों के समय + एक समय इतने समय में क्रमश: दो गुणा चलते हुए जितनी दूरी तय करें उतना बड़ा राजू होता है। क्योंकि मध्यलोक में मेरुपर्वत के मध्य भाग से स्वयंभूरमण समुद्र के परभाग तक आधा राजू होता है। दोनों तरफ का मिलाने पर एक राजू होता है।

देखना यह है कि एक तरफ जम्बूद्वीप के मध्य भाग से स्वंभूरमण समुद्र के परभागगत 25 कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों में जितने समय हैं उतनी ही संख्या द्वीप समुद्रों की है और वे एक दूसरे में दूने-दूने है अत: उक्त प्रमाण की सिद्धि हो जाती है।

जगच्छ्रेणी के सातवें भाग को राजू कहते हैं। अर्थात् जगच्छ्रेणी/7 = राजू

परिशिष्ट-4

पुरुषवेदी सम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण

सम्पूर्ण सम्यग्दृष्टि = पल्योपम/अन्तर्मुहूर्त = पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग

माना पल्य का प्रमाण = 1,00,000, अन्तर्मुहूर्त = 20, आवली का असंख्यातवाँ भाग = 4, आवली का संख्यातवाँ भाग = 2

सामान्य सम्यग्दृष्टि = 100000/20 = 5,000

पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टि – पुरुष वेदी सम्यग्दृष्टियों के भागहार (अवहार) में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर प्राप्त राशि को उसी भागहार में जोड़कर पल्योपम में भाग देने पर प्राप्त राशि पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टि की है।

यथा– पल्योपम/अन्तर्मुहूर्त/आवली का असंख्यातवाँ भाग = प्राप्त राशि = पल्योपम/अन्तर्मुहूर्त + प्राप्त राशि

पल्योपम/20/4 = 5 = 1,00,000/20 + 5 = 1,00,000/25 = 4,000

अत: पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टि = 4000 हुये।

पुरुष वेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि – पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टि के अवहार (भागहार) को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करके पल्योपम में भाग देने पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि पुरुष वेदी की संख्या प्राप्त होती है।

यथा–पल्योपम/पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टि का भागहार × आवली का असंख्यातवाँ भाग

1,00,000/25 × 4 = 1,00,000/100 = 1000

अत: पुरुष वेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि = 1000 हुये।

पुरुष वेदी सासादन सम्यग्दृष्टि – पुरुष वेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि के अवहार को आवली के संख्यातवें भाग से गुणा करके पल्योपम में भाग देने पर सासादन सम्यग्दृष्टि पुरुष वेदी की संख्या प्राप्त होती है।

यथा – पल्योपम/पुरुष वेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अवहार × आवली का संख्यातवाँ भाग

= 1,00,000/100 × 2 = 100000/200 = 500

अत: पुरुष वेदी सासादन सम्यग्दृष्टि = 500 हुये।

पुरुष वेदी संयतासंयत – सासादन सम्यग्दृष्टि के अवहार को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर संयतासंयतों का अवहार काल प्राप्त होता है फिर पल्योपम में इसका भाग देने पर संयतासंयतों की संख्या प्राप्त होती है।

यथा–पल्योपम/सासादन सम्यग्दृष्टि का अवहार × आवली का असंख्यातवाँ भाग

1,00,000/200 × 4 = 100000/800 = 125

अत: पुरुषवेदी संयतासंयतों की संख्या = 125

अत: सामान्य सम्यग्दृष्टियों से असंख्यात भागहीन पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टि है, पुरुष वेदी असंयत सम्यग्दृष्टियों से असंख्यात गुणे हीन सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं इनसे संख्यात गुणे हीन सासादन सम्यग्दृष्टि होते हैं, इनसे असंख्यात गुणे हीन संयतासंयत पुरुष वेदी होते हैं।

परिशिष्ट–5

संदर्भित ग्रंथ सूची

1.	तिलोय पण्णति	– आचार्य यतिवृषभ	द्वितीय शताब्दी
2.	जम्बूद्वीप पण्णति	–आचार्य यतिवृषभ	द्वितीय शताब्दी
3.	धवला जी पुस्तक –3, 4	– आचार्य वीरसेन स्वामी	आठवीं, नौवी सदी
4.	त्रिलोकसार	– आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती	9–10 वीं सदी
5.	गो. जीवकाण्ड	– आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती	9–10 वीं सदी
6.	लब्धिसार	– आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती	9–10 वीं सदी
7.	लोक विभाग	– आचार्य सर्वनन्दी सिद्धांत चक्रवर्ती	9–10 वीं सदी
8.	जैनेन्द्र सिद्धांतकोश	– जिनेन्द्र वर्णी	19वीं सदी
9.	चौतीस स्थान दर्शन	– आचार्य विनम्रसागर जी कृत	21वीं सदी
10.	जैन गणित	– डॉ. अनुपम जैन	20वीं सदी
11.	करणानुयोग प्रवेशिका	– पं. किशनलाल भाईं साहब	21वीं सदी

चेहरा उज्ज्वल हो या न हो चारित्र उज्ज्वल होना चाहिए। अत: चेहरे से ज्यादा चारित्र पर ध्यान दीजिए, चेहरा चार दिन चमकता है और चारित्र जिन्दगी भर महकता है। चरित्र की खुशबू व्यक्ति को सदैव सम्मानीय व अनुकरणीय बनाती है।

बहुचर्चित कृतियाँ

1. सचित्र भक्तामर स्तोत्र
2. सचित्र कल्याण मंदिर स्तोत्र
3. श्रुत मंथन महाकाव्य
   (जीवन है पानी की बूँद पर आधारित)
4. भक्ति प्रबोधिनी टीका (संस्कृत)
5. कल्याण प्रबोधिनी टीका (संस्कृत)
6. सर्वोदयी टीका (अंग्रेजी) भाग–1–2
7. सिद्धान्त प्रबोधिनी टीका (प्राकृत)
8. भक्तामर महामंडल विधान (वृहद्)
9. कल्याण मंदिर महामण्डल विधान
   (वृहद्)
10. श्री जिन सहस्रनाम महामण्डल विधान
    (वृहद्)
11. सिद्धान्त दिग्दर्शिका
12. उच्चारणाचार्य चरित्र
13. होनी अनहोनी
14. जीवन है पानी की बूँद
15. बूँद–बूँद में सागर
16. अंतस् का पराग
17. समंदर की लहरें
18. भक्ति की छलक
19. आस्था के स्वर
20. भक्तामर स्तोत्र
21. तन्मयता की बेला
22. श्रावक ज्ञान मंजरी
23. कल्याण मंदिर स्तोत्र
24. सामायिक पाठ
25. विराग सुमन
26. विराग वंदना (विराग शतक)
27. रत्नत्रय विधान
28. शांतिनाथ विधान
29. भक्तामर विधान
30. खजाने के मोती
31. तासीर के मंजर
32. गा लो गुरु गुणगान
33. गुनगुनाता संदेश
34. अनुभूतियों के भँवर
35. गजब की लाइनें
36. असरदार लाइनें
37. जिनसहस्रनाम स्तोत्र
38. Philosophy of Karma
39. Moral Science for Children-I
40. Moral Science for Children-II
41. Moral Science for Children-III
42. English Quotation
43. What is Truth
44. Know your future
45. What is Life
46. Moral Science
    (The Complete Book of Jainism for children)
47. ऐसा क्यों ? भाग–1
48. जिन्दगी क्या है ?
49. सच क्या है ?
50. स्वर्ग यहाँ नरक यहाँ
51. जब मिल जायें रे
52. हकीकत का पैगाम
53. जमाने का सच
54. अपना भविष्य जानो
55. जानिए सम्यक् दीपावली
56. दैनिक कर्त्तव्य
57. बोलती कविताएँ
58. सच्ची बात–1
59. सच्ची बात–2
60. सच्ची बात–3
61. सच्ची बात–3
62. सच्ची बात–5
63. मेरी पहेली का जवाब दो–1
64. मेरी पहेली का जवाब दो–2
65. तत्त्वार्थ सूत्र
    (प्राकृत,संस्कृत,अंग्रेजी,हिन्दी भाषा में अर्थ सहित)
66. गुरु महिमा (गुरु पूजन)
67. सम्मेद शिखर वंदना
68. छहढाला प्रश्नोत्तरी
69. प्रतिक्रमण हिंदी (श्रमण व श्रावक)
70. भक्तामर अखण्ड पाठ
71. ऐसा क्यों ?–2
72. ऐसा ही है
73. चंबल के चंदन (काव्यमय जीवनगाथा)
74. आचार्य परमेष्ठी विधान (हिंदी, बुंदेली)
75. Philosophy of Soul जीव विज्ञान
76. सर्वोदया टीका (English)
77. श्रुत मंथन महाकाव्य